श्री राम उवाच-34

# विदां वरः

आचार्य श्री रामलाल जी म.सा.

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन

# विदां वरः

संस्करण
प्रथम, अक्टूबर, 2023
4000 प्रतियाँ

मूल्य
₹ 125/-

प्रकाशक
**साधुमार्गी पब्लिकेशन**
अन्तर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग,
श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने,
नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर-334401 (राज.)
☎ 0151-2270261
e-mail : sahitya@sadhumargi.com

ISBN
978-93-91137-32-8

मुद्रक
**उपकार प्रिंट हाऊस** प्रा. लिमिटेड, आगरा

# जीवन गढ़ने वाली पुस्तक

ज्ञान होना एक बात है और सही ज्ञान होना दूसरी बात। ज्ञान किसी को भी हो सकता है किंतु सही ज्ञान सबको नहीं होता। सही ज्ञान उसे होता है जो विनम्र होता है। जिसका मन सदा विद्यार्थी बना रहता है। विद्यार्थी बने रहना यानी निरंतर सीखते रहना। जो निरंतर सीखता रहता है, उसका ज्ञान अनायास सर्वोच्च शिखर को स्पर्श कर लेता है।

साधना के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ आचार्यश्री रामलाल जी म. सा. ऐसे ही साधक हैं, जो निरंतर सीखने में विश्वास रखते हैं। निरंतर सीखने में विश्वास रखनेवाले आचार्यश्री निराभिमानिता, उन्मुक्त मस्तिष्क, पुरुषार्थी जीवन और प्रयोगधर्मी विचारधारा का अप्रतिम सुयोग हैं। यह सुयोग आचार्यश्री को ज्ञानियों में भी विशिष्ट दर्जा दिलाता है। ज्ञानियों में भी उत्तम स्थान पर रखता है। ज्ञानियों में उत्तम यानी विद्वां वर:।

ज्ञानियों में उत्तम आचार्यप्रवर की वाणी लोगों के जीवन की गुत्थियों को सुलझाने के लिए स्पष्ट एवं सुखद राह दर्शाती है। लोगों के जीवन को उलझने से बचाती है। उन्हें सही-गलत से परिचित कराती है। ऐसे उत्तम ज्ञानी के वचनों को आत्मसात् करने वालों का जीवन, ज्ञान से सुगंधित होता है। सदाचारमय होता है। ऐसे ज्ञानी के वचन को आत्मसात् करने वाले सहजता से सुख और शांति प्राप्त कर पाते हैं। दुनिया के तमाम लोग सुख और शांति से जीवन व्यतीत करें, समाज में समरसता व्याप्त हो, इसके लिए साधुमार्गी पब्लिकेशन आचार्यश्री रामलाल जी म. सा. की वाणी को पुस्तक के रूप में लोगों तक पहुँचाता है। उसी क्रम में '**विद्वां वर:**' नामक पुस्तक पाठकों के लिए प्रस्तुत है।

यह आचार्यश्री द्वारा ईस्वी सन् 2021 में ब्यावर चातुर्मास में फरमाए गए प्रवचनों में से कुछ का संग्रह है। यह दूसरा संग्रह है। इसके माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को उन्नत बना सकता है। अपने जीवन में ज्ञान की गंगा बहा सकता है। सदाचार से सुरभित कर सकता है। सुख एवं शांति के राजमार्ग पर गतिशील हो सकता है। इस पुस्तक के रूप में इसके पाठकों के पास सुंदर अवसर

है ज्ञान, सदाचार, सुख और शांति को प्राप्त करने का। अपने लक्ष्य को वरण करने का।

अवसर का उपयोग करना ही चाहिए। अवसर का उपयोग न करने वालों के पास बाद में पश्चात्ताप करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। आपके पास सबकुछ रहे, सिवाय पश्चात्ताप के, इसके लिए-

आपको आगे बढ़ना होगा...

इसमें लिखे शब्दों को पढ़ना होगा...

उस पर चिंतन-मनन करना होगा...

और

इसमें बताए तरीकों से अपने जीवन को गढ़ना होगा...

जीवन को गढ़ने वाली इस पुस्तक के प्रकाशन में गलतियों से बचने का तो पूरा प्रयास किया ही गया है, भाव भी वही रखने का प्रयास है, जो आचार्यश्री ने व्याख्यान फरमाते हुए व्यक्त किये थे। सारी सतर्कता के बावजूद आचार्यश्री के भावों को जस-का-तस व्यक्त करने में हमसे कोई चूक हो गयी हो तो यह हमारी कमी है। अपनी इस कमी के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। क्षमा के साथ हम यह भी चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमसे बतायें, जिससे भविष्य में हम उन गलतियों से बच सकें। हम उनके आभारी होंगे जो किसी भी प्रकार की त्रुटि से हमें अवगत करायेंगे।

**संयोजक**

साधुमार्गी पब्लिकेशन

अन्तर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

# संघ के प्रति अहोभाव

**हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!**

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छाँव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हें चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुस्तक '**विदां वर:**' के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

**- अर्थ सहयोगी -**

अनुपमा, डॉ. सुनील एम जैन,
निधि एवं यश जैन
इंदौर (मध्य प्रदेश)

# विषयानुक्रमणिका


| क्र.सं. | विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| 1. | समाधि प्राप्ति के उपाय | 07 |
| 2. | निर्वेद से निर्वाण | 18 |
| 3. | साधना का स्वराज | 30 |
| 4. | बम निष्फल करें | 35 |
| 5. | हम कहाँ खड़े हैं | 47 |
| 6. | जिन-मार्ग नयन निहार ले | 58 |
| 7. | कितना चले, चलना है कितना | 70 |
| 8. | भक्ति करें मन भाव से | 83 |
| 9. | पुरुषार्थ से सब संभव | 98 |
| 10. | फैले घट में ज्ञान प्रकाश | 110 |
| 11. | सुनो वाणी वीर की | 123 |
| 12. | भाव मंगल जानें, स्वीकारें | 134 |
| 13. | समाधि : परमात्मा का पथ | 145 |
| 14. | प्लान अपना चलना स्वयं को | 164 |
| 15. | साधना का सौरभ | 180 |

# 1

# समाधि प्राप्ति के उपाय

**पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिनतणो रे**

किसी भी वस्तु को ग्रहण करने से पहले देखा जाता है। देखने के बाद मन में वह वस्तु जम जाती है तो स्वीकार किया जाता है, ग्रहण किया जाता है। धर्म छोटी-मोटी बात नहीं है। धर्म जीवन का सौदा है। उसे एक बार स्वीकार कर लेने का मतलब जीवन भर के लिए निभाना है। ऐसा नहीं है कि वह हमारे लिए भार बनकर रहेगा। धर्म कभी भी भारभूत नहीं होता। धर्म जीवन में रम गया तो जीवन असमाधि में नहीं रहेगा और अशांति में भी नहीं रहेगा। धर्म में जीने से जीवन में कठिनाइयाँ नहीं आएंगी, ऐसी बात नहीं है। कठिनाइयाँ अवश्य आएंगी। निबिड़तम कर्म जो बँधे हुए हैं वे उदय में आएंगे। यदि हमारे कर्म बँधे हुए हैं, तो उन कर्मों का भोग हमें करना ही पड़ेगा।

धर्म को धारण करने से उन कर्मों का भोग करने की ताकत हमारे भीतर पैदा हो जाती है। इससे अच्छी भावना पैदा होगी, कुछ सीखने को मिलेगा। धर्म के साथ जुड़े रहेंगे तो हम सब जान पाएंगे। धर्म से हमारे भीतर सम्मान पैदा हो जाता है, हमारे भीतर बल पैदा हो जाता है। हम आने वाली कठिन से कठिन आपदाओं को, समस्याओं को सहने में समर्थ बन जाते हैं।

भगवान महावीर एक रात्रि में 20-20 उपसर्गों को सहन किए थे। उन्होंने भयंकर से भयंकर उपसर्ग सहे किंतु मुँह से कभी उफ् शब्द नहीं निकला। उनके मुँह से आह नहीं निकली।

उनके भीतर यह क्षमता, यह दृढ़ता, यह सहनशीलता कहाँ से आई?

जीवन में जो धर्म उतरा उसके परिणामस्वरूप उनके भीतर सहनशीलता आई। धर्म देशना से तन-मन स्फूर्त हो जाता है। मतलब ऊर्जा आ जाती है,

ताकत आ जाती है। जैसे पारणा करने से शरीर में ताकत आती है, वैसे ही मन में धर्म हो जाए तो बेड़ा पार हो जाता है। धर्मी पुरुष कहीं भी किसी भी कठिनाई को सहन करने में तत्पर रहता है। वह कभी भी कठिनाइयों का सामना करने से पीछे नहीं रहता है। ध्यान रहे, जो कठिनाइयों का सामना करता है उसके सामने कोई भी कठिनाई, कठिनाई रूप रहती नहीं है। उस स्थिति में उसके लिए वीआईपी स्थान, सिद्धक्षेत्र अपने आप तैयार हो जाता है।

धर्म में जीना यानी शांति में जीना है। समाधि और सुख में जीना है। परिस्थितियाँ कैसी भी आएंगी, किंतु हमें परेशान नहीं कर पाएंगी। हम अगर डटकर उसका सामना करेंगे तो वह कभी भी हमारे सामने टिक नहीं पाएंगी। अगर हम सामना करना सीख गए तो हम कहीं भी पीछे नहीं रह पाएंगे। सामान्यत: आदमी परिस्थितियों से परेशान हो जाता है। वह परेशान हो जाता है कि ये परिस्थितियाँ आ गईं, वह परेशानी आ गई। उस समय उसे कुछ सूझता नहीं है कि अब वह क्या करे, कहाँ जाए। परेशानी हटने का नाम ही नहीं ले रही है। परेशानी के ऊपर परेशानी आती रहती है तो आदमी घबरा जाता है कि अरे, मेरे सामने कैसी परिस्थितियाँ आ गई हैं। वह भगवान से कहता है कि हे भगवान! इतनी सारी परिस्थितियाँ मेरे को ही क्यों मिल रही हैं? मैंने ऐसा क्या कर्म किया जो ये आती ही रहती हैं? ऐसा मैं अब क्या करूं कि ये आनी बंद हो जाएं?

उसके विपरीत जागृत आत्मा, धर्म में जीने वाला विचार करता है कि अभी मैं ज्ञाता हूँ। मेरे अंदर ज्ञान चेतना जागृत है, अत: दु:ख-दर्द अभी आ जाएं। अभी मेरे शरीर में क्षमता है तो अभी आ जाए। जितने दु:ख आने हैं आ जाएं ताकि मैं आसानी से भोग सकूं।

वह जानता है कि मैं अपने किए हुए कर्मों को ही भोग रहा हूँ। मैंने कर्ज लिया है तो चुकाना मुझे ही पड़ेगा। कर्ज मुझे ही चुकाना पड़ेगा। ऐसा नहीं है कि कर्जा मैंने लिया और उसे चुकाएगा कोई दूसरा। सांसारिक जीवन में हो सकता है कि बाप का कर्ज बेटा चुकाता हो और बेटे का बाप, किंतु धर्म के क्षेत्र में एकदम साफ है कि बाप का कर्ज बेटा और बेटे का कर्ज बाप नहीं चुका पाएगा। जिसने कर्ज लिया है, वही चुकाएगा। कोई दूसरा किसी का कर्ज नहीं चुका सकता। स्वयं उसे ही चुकाना पड़ता है।

भगवान महावीर से पूछा गया कि भगवान जिस जीव ने कर्म किया है क्या वह उसका भोग करता है?

भगवान ने कहा कि उदय में आता है तो भोग करता है, नहीं तो नहीं करता है।

दो प्रकार के कर्म होते हैं। एक प्रदेश कर्म और दूसरा अनुभाग कर्म। प्रदेश कर्म का उदय जब होता है तो कर्मों का भोग निश्चित रूप से करना पड़ता है। अनुभाग कर्म का उदय कभी होता है, कभी नहीं। कभी जीव अपनी-अपनी शक्ति विशेष से उसका रूपांतरण भी कर देता है। उसमें बदलाव ले आता है। पानी में नीबू निचोड़कर शक्कर डालने ही वाला था कि उतने में उसने देखा कि पेट ठीक नहीं है तो शक्कर की जगह नमक डाल दिया। वह नमक डाल देता है। नमकीन शिकंजी हो जाती है। घोल बदल गया या नहीं! घर में बनाके रखी शिकंजी में ज्यादा पानी डालने से फीकी भी हो जाती है। उसमें कम पानी डालने पर खट्टापन लगेगा। यदि उसमें ज्यादा पानी डाला तो फीकी हो जाएगी, मीठी नहीं रहेगी। वैसे ही पहले के कर्म जो बँधे हुए हैं, उनमें नए कर्मों के बंध मिला दिया जाए तो पहले वाले कर्मों का खट्टापन मंद से मंदतर हो जाएगा।

इस प्रकार कर्म का रूपांतरण करके भी हमारी आत्मा भोग सकती है। हमारी ज्ञान चेतना जागृत है तो उदय में आने वाले कर्मों को आसानी से वहन कर सकते हैं। हम देखें भगवान महावीर को। नहीं, उनका नाम लेंगे तो लोग कह देंगे कि वे तो तीर्थंकर थे। गृहस्थ कामदेव श्रावक को देखें जो उपसर्ग का सामना करता है। उसके उपसर्ग का ऐसा भयंकर प्रसंग है जिसका वर्णन करने से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कंपन होने लगता है। एक देव, दैत्य का आकार धारण करता है पर कामदेव श्रावक निर्भीक और निष्प्रभावी होकर धर्म में लीन रहा।

विचलित नहीं होने का प्रमाण क्या है?

उसके रोंगटे भी खड़े नहीं हुए। कोई भय का साज, हर्ष का कोई दृश्य आने पर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कोई तलवार लेकर सामने आ जाए तो हमारे रोंगटे खड़े हो जाएंगे। कामदेव को गुमराह किया जा रहा था (धमकी दी जा रही थी) कि धर्म नहीं छोड़ोगे तो तुम्हारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा

किंतु कामदेव इस प्रकार के शब्दों से गुमराह (डरा) नहीं हुआ।

एक मच्छर हमारे ध्यान को विचलित कर देता है। मच्छर शरीर पर बैठ न जाए, इसलिए उसे उड़ाने का मन हो जाता है। एक मच्छर बैठ गया तो कोई बड़ी बात नहीं होगी। एक मच्छर काट ले तो हमारा मन विचलित हो जाता है। इसका मतलब है कि हम धर्म में गहरे नहीं उतरे। हमें धर्म में गहरा उतरना पड़ेगा।

कुछ वर्षों पहले की बात है। पचीस-तीस वर्ष का समय हुआ होगा। एक बहन सामायिक करके बैठी हुई थी कि उसका कर्णफूल (एक प्रकार का आभूषण) गिर गया। वह देख रही है कि कोई उसे उठा रहा है, किंतु उसने एक बार भी नहीं कहा कि ये मेरा है क्योंकि वह सामायिक में थी। सामायिक के बाद भी उसने उसकी खोज नहीं की। उसने विचार किया कि यह मेरा नहीं है। यह समझ में आते ही तज्जन्य राग, मोह, ममत्व दूर हो जाता है। उसके होने न होने से होने वाले संक्लेश से जीव बच जाता है। उसने विचार किया कि यह पुद्गल है, मैं पुद्गल से नहीं हूँ। मेरे से पुद्गल है। पुद्गल के त्याग में समाधि है। हालांकि ऐसा विचार बनना कठिन होता है, किंतु जिसने जान लिया कि उनसे मेरा कोई सरोकार नहीं है, केवल जीवन के निर्वाह के लिए उनका उपयोग किया जा रहा है, वह मुक्ति की दिशा में आगे बढ़ जाएगा। जिसने जान लिया कि मेरा जीवन इन पुद्गलों से नहीं है, आज नहीं तो कल इनका त्याग करना पड़ेगा, वह मुक्ति की दिशा में आगे बढ़ जाएगा।

शासन दीपिका श्री ताराकँवर जी म.सा.के विषय में ज्ञात हुआ कि वे संलेखना स्वीकार करके चल रही हैं। पहले से समाधि में विकास हुआ है, बढ़ोतरी हुई है। दवा देने से, पढ़ने-लिखने से समाधि नहीं हो रही थी। प्रतिक्रमण के बाद सभी साध्वियों को बुलाकर क्षमायाचना की। अच्छी चेतना, जागृत चेतना में सुबह आठ बजे संलेखना-संथारा कराने के पहले दवा वगैरह दिया जाने लगा तो उन्होंने नहीं ली। संलेखना-संथारा ले आत्मसमाधि में लीन हो गईं। वैसे भी वे समाधि में रहने वाली थीं। उनके आस-पास क्या हो रहा है, इससे उनको कोई मतलब नहीं। पिछले वर्षों से उनका फरमाना रहता था कि आचार्यश्री जी जो कहें, जो फरमाएं वह कर लो। जहाँ भेजें वहाँ चले जाओ। ये नहीं कि मुझसे पूछा जाए। यदि दूसरी जगह कहीं पधारना है तो

आचार्यश्री जी से पूछ लो। वह जो व्यवस्था दें, उसे स्वीकार कर लो। वे निस्पृह बन गई थीं।

कहने का आशय है ऐसी निस्पृहता कहाँ से आई, कैसे आई?

धर्म की आराधना से ही ऐसा हो सकता है। हो सकता है कि उनके जीवन में कुछ स्वाभाविक बातें रही हों, किंतु धर्म की आराधना से उन बातों में परिपक्वता आने लगती है। धर्म दृढ़ बनाने वाला है। धर्म निश्चित रूप से हमारे मन को स्फूर्त बनाता है। हमारी कमजोरी को दूर करता है। कमजोरी हमारे भीतर होती है। वह कर्मों के कारण होती है। जब तक हमारे भीतर कर्म रहेंगे, तब तक हमारे भीतर कुछ-न-कुछ कमजोरियाँ रहेंगी ही और तब तक हम कर्मों का भोग करते रहेंगे। हमें कमजोरियों को लेकर बैठना नहीं है। उनको निकालने का प्रयत्न करना है। कमजोरियों से लड़ने और कमजोरियों को दूर करने का प्रयास हो। कमजोरियों से हम भागें नहीं, कमजोरी हमसे भागे। इसके लिए हमें प्रयत्न करना होगा। वह प्रयत्न वर्तमान समय में हो सकता है। वर्तमान जीवन में इसलिए हो सकता है, क्योंकि हमने मनुष्य जीवन पाया है, पाँचों इंद्रियों को प्राप्त किया है। उत्तम कुल, आर्य क्षेत्र मिला है। इन सारे साधनों के साथ हमें जैन धर्म मिला है। ऐसा उत्कृष्ट धर्म जिसकी तुलना कहीं-से-कहीं तक नहीं हो सकती। जैन धर्म का पालन करना, जीवन धर्म का पालन करना है। जहाँ किसी प्रकार का लाग-लपेट नहीं है। जहाँ भेदभाव की बात नहीं है। हमारा महामंत्र है नवकार।

**नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं,**
**नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं**

इस महामंत्र में किसी का नाम नहीं, कोई पार्टी नहीं, कोई जाति नहीं। एकमात्र गुण। जिसमें अमुक-अमुक गुण है, वह अरिहंत, वह सिद्ध। हरिभद्रसूरी को शिव मंदिर में ले जाया गया और कहा गया कि यहाँ आपको अर्चा करनी है। उन्होंने एक श्लोक से स्तुति की। यथा-

**भवबीजाङ्कुरजनना:, रागाद्या: क्षयमुपागता यस्य।**
**ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै।।**

भवांकुर का बीज राग आदि जिनके क्षय हो चुके हैं, नष्ट हो चुके हैं, वे चाहे ब्रह्मा हों, विष्णु, शिव या जिन कोई भी हो, उनको मेरा नमस्कार है।

जिन्होंने राग-द्वेष को जीत लिया वे कोई भी हों, उनको नमस्कार है। जो राग-द्वेष विजेता है, वही देव है। नाम कुछ भी हो। नामों में उलझना नहीं है। मैं केवल उनके गुण को देखता हूँ जिन्होंने राग-द्वेष जीत लिया। जिन्होंने निस्पृह हो सब जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश दिया। जिसने अपने राग-द्वेष को जीत लिया, उसने सारे जगत को, सारे चराचर विश्व को, सारे लोकालोक को जान लिया। फिर कुछ भी उसके ज्ञान से ओझल नहीं है। कोई भी पदार्थ उनके ज्ञान से ओझल नहीं है। वे हमारे ज्ञान से ओझल हैं, किंतु हम उनके ज्ञान से ओझल नहीं हैं।

हमारी आँखें पीछे की ओर नहीं देख पातीं। दीवार के पीछे क्या है, उसे नहीं देख सकती, ऊपर की छत पर क्या है, उसे नहीं देख सकती। हमारे पीछे बैठे आदमी को नहीं देख पाती। कौन क्या कर रहा है, उसे तो देखती हैं, पर भावों को नहीं देख पाती। जब तक हम अपनी गरदन को पीछे मोड़ेंगे नहीं, तब तक पीछे का दृश्य दिखाई देने वाला नहीं है। लेकिन उन्हें (सिद्ध भगवान) देखने के लिए न तो सिर घुमाने की आवश्यकता है और न ही आँखों को घुमाने की। वे जान रहे हैं हमारे बारे में। वे सबकुछ जान रहे हैं, सबकुछ देख रहे हैं, किंतु जानने-देखने के बाद भी उनमें कोई प्रतिक्रिया नहीं है।

हम किसी को कुछ करते देख लें तो हमारे मन में प्रतिक्रिया पैदा हो जाती है। पड़ोसी का बेटा ठेके पर गया। आपने देखा कि वह बोतल से कुछ पी रहा है तो आपके मन में क्या प्रतिक्रिया पैदा हो गई कि भले घर का आदमी क्या कर रहा है, किंतु वे लोगों के साथ हो रहे बुरे बर्ताव को भी देखते हैं व अच्छे व्यवहार को भी। वे सब देखते हैं, किंतु उनमें कोई स्पन्दन, कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, द्वेष पैदा नहीं होता है।

सेटेलाइट, सीसीटीवी कैमरा हमारी हर क्रिया को देख रहा है। सीसीटीवी सारी क्रिया को देख रहा है। कैमरा बारीक चीजों को देख लेता है तथा हर प्रक्रिया को कैच कर लेता है। हम लोग क्या करेंगे? हमसे थोड़ा-सा फेरबदल भी हो सकता है। हमने जैसा अनुमान किया वैसा अर्थ लिया लेकिन वहाँ पर कोई गलत अर्थ नहीं लगा। वैसे ही अरिहंतों के ज्ञान में कोई विपरीतता नहीं होती, एकदम सही, फिर भी प्रतिक्रिया नहीं, केवल दृष्टा भाव। इसलिए वे सुखी हैं। हर प्रकार से समाधि है। कोई भी कमी नहीं है। दुःखी लोगों को

देखकर कई बार हमारे भीतर दुख पैदा हो जाता है, किंतु जीव को दुख में पड़े देखकर भी केवली भगवान के भीतर, उनके मन में कोई दुख नहीं होता।

उनके भीतर कोई चाह नहीं कि मैं उनको उपदेश दूंगा तो जय-जयकार होगी। मेरी वाह-वाह होगी। लोग मेरे को महान बताएंगे, सब जगह मेरी चर्चा होगी। मैं फेमस हो जाऊँगा, मेरा प्रचार होगा। लोग मेरे अनुयायी बनेंगे। वे सोचते हैं कि स्वीकार करना उनकी मरजी है। उनका काम है बता देना कि ये सोना है और ये पीतल है। ये सूत्र देना उनका काम है। पीतल या सोना लेने का उनका आग्रह नहीं है।

एक व्यक्ति भगवान के पास गया और कहा कि भगवान! आपके पास अनेक राजा, राजकुमार आदि आते हैं, आपके उपदेश सुनते हैं। बहुत-से राजा-राजकुमार गृहस्थ धर्म को छोड़कर साधु धर्म को स्वीकार कर लेते हैं किंतु मैं अभी साधु जीवन स्वीकारने में समर्थ नहीं हूँ, इसलिए आपने जो 12 प्रकार का गृहस्थ धर्म (श्रावक धर्म) बताया है, वह मैं स्वीकार करना चाहता हूँ।

भगवान ने कहा- अहासुहं देवाणुप्पिया। श्रावक धर्म स्वीकार करने में सुख है तो वह स्वीकार करो, यदि साधु जीवन स्वीकार करने में सुख है तो वह स्वीकार करो, पर शुभ कार्य में प्रतिबंध मत करो। धन्ना अणगार, भगवान के चरणों में दीक्षित होते हैं और भगवान के चरणों में खड़े होकर कहते हैं कि आपकी आज्ञा हो तो मैं जीवन भर के लिए बेले-बेले का तप स्वीकार करना चाहता हूँ। पारणे में उज्झित आहार करना चाहता हूँ।

उज्झित आहार अर्थात् खाने-पीने के बाद बचा हुआ आहार। वह ऐसे आहार को स्वीकार करने लगते हैं। ऐसा नहीं कि रसोई बनने के 10 मिनट बाद में ही जाएं ताकि गरमा-गरम आहार हाथों-हाथ मिल जाए। वे ऐसे समय जाते, जब सब खा-पी लेते थे। जब कोई न खाता हो। जब बरतन धोने लगें। उस समय जो बचा हुआ होता, वह ले आते। इस प्रकार का तप वे स्वीकार करके चले।

उस उदार तप-आराधना से नौ महीनों में उनका शरीर सूख गया। सारा मांस जल गया। हड्डियों में चमड़ी चिपक गई। उठते तो कट की आवाज और बैठते तो कट की आवाज। जैसे चलती गाड़ी में लोहे के भंगार की

आवाज निकलती है, वैसे ही उनके उठने-बैठने में आवाज आती थी। किंतु उस परिस्थिति में भी उनके आंतरिक जीवन का तेज बहुत बढ़ गया, जिसको देखें तो लगता था कि ये क्या है? ऐसे शुष्क शरीर के भीतर तेज किसका है? मांस नहीं है, रुधिर कम हो गया है, उस स्थिति में भी विहार करना है तो करना है। नौ महीने बेले-बेले की दशा में भी यदि सर्व काम, गुणों से युक्त आहार करे तो वर्षों तक आदमी चल सकता है। वह जल्दी थकने की बात नहीं कर सकता। उसको किसी तरह की बीमारी नहीं पकड़ पाएगी। वह आसानी से चल सकता है। किंतु उनका शरीर नौ महीने में सूखकर काँटे जैसा हो गया। उनकी हड्डियां बाहर आ गईं। लगता था कि अब नहीं चल पाएंगे। फिर भी उन्होंने सब कुछ किया।

वह इतने बदल गए कि शरीर की पहचान भी मुश्किल से हो पाए। उनके मन में विचार पैदा हुआ कि अब मेरा शरीर साधु जीवन की चर्याओं को पालने में समर्थ नहीं रहा, अब मुझे भगवान से अनुज्ञा प्राप्त कर यथाविध अपश्चिम मारणांतिक संलेखना स्वीकार कर लेना चाहिए। ऐसा विचार कर वे भगवान महावीर के चरण में पहुँचे और उनकी अनुज्ञा होने पर यावत् जीवन के लिए संलेखना स्वीकार की। अरिहंतों के शासन-अनुशासन की झलक हमें पग-पग पर दिखेगी। अनुज्ञा मिलने पर यावत् जीवन के लिए संलेखना स्वीकार हो जाती है। कहने का आशय है कि अरिहंत भगवंतों का जीवन कितना निस्पृह होता है। उत्कृष्ट कर्मों की निर्जरा में सघन बने धन्ना जैसे साधकों की उपस्थिति भी उनके भीतर स्पृहा पैदा नहीं कर सकती।

ब्यावर में गायें कम घरों में होंगी। जिन घरों में गायें होंगी उन घरों में बिलोना होता होगा। बिलोना करने से मक्खन निकलता होगा। क्या करते हैं आप उसका! क्या उसको आग में डालते हैं घी बनाने के लिए! या आग पर चढ़ाएंगे तो मक्खन तपेगा! मक्खन तपने से घी नहीं बनेगा। उसमें रही हुई छाछ जलेगी तो घी बनेगा। चूल्हे पर चढ़ाए मक्खन को तपाना है, किंतु तपेली को क्यों तपाना? तपेली को इसलिए तपाना कि तपेली तपने के बाद ही घी आएगा। तपेली नहीं तपेगी तो घी नहीं आएगा। तपेली नहीं होगी तो कैसे उसमें मक्खन डालेंगे और कैसे उसका घी बनेगा। बिना तपेली के मक्खन को आग में डालेंगे तो आप घी प्राप्त नहीं कर पाएंगे। बिना तपेली के मक्खन आग में

जाएगा तो वापस घी ला नहीं पाएंगे। वैसे ही चूल्हे पर रख देंगे तो घी जल जाएगा। वैसे ही आदमी का शरीर तपेली है, भगौना है। इसमें रहने वाली चेतना मक्खन है। जीव में जो छाछ रहा हुआ है उसको जलाना है।

तपना किससे है?

तपस्या से तन तपता है। उसका ताप चेतना को जाता है। उससे उसमें रहे हुए कर्म भस्म होते हैं।

एक तेला सब दु:खों को ठेलने वाला हो सकता है, पर आज नहीं होता। इसका कारण है मन। मन में कई बातें चलती रहती हैं। मन दूसरी बातों में चला जाता है। वह केवल कर्म निर्जरा के लिए तपस्या करे तो उससे इतना सारा दु:ख-दर्द समाप्त हो जाएगा जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। वैसे दिखने में शरीर को तपाया जा रहा है किंतु शरीर को तपाना लक्ष्य नहीं होता। ऊपर से शरीर को तपाया जा रहा है, पर असल में आत्मा को तपाया जाता है।

आज भी कई संत-सतियाँ जी तप कर रहे हैं। कई भाई-बहन तपस्या कर रहे हैं। उस तप का लक्ष्य है- कर्मों की निर्जरा करना। लक्ष्य है अपने कर्मों को क्षय करना। कर्म क्षय होंगे तो मेरी चेतना में रहे ज्ञान आदि की शक्तियाँ प्रकट होंगी, जिससे धर्म भावना विशेष रूप से प्रकट हो जाएगी।

समाधि चार प्रकार से प्राप्त होती है। वे चार प्रकार हैं- श्रुत, विनय, आचार और तपस्या। ये चारों समाधि देने वाले होते हैं। ज्ञान से अज्ञान दूर होता है। ज्ञान प्रकट होने पर हिताहित का बोध होता है। ज्ञान से हमारी आँखों में हित और अहित को समझने की शक्ति आती है। उससे श्रद्धा सुदृढ़ होती है। जिनेश्वर देव ने जो फरमाया है वह एकदम सच है, ये श्रद्धा है। यह जिनेश्वर देवों का विनय है। विनयाचार का पालन करना यानी सदाचार का पालन करना है।

विनय के अभाव में कई बार मन में अहंकार पैदा हो जाता है। बावजी सोचते हैं कि मैं ही हूँ बाबा। मेरे इतने सारे चाहने वाले आते हैं।

बावजी अपनी तपस्या की प्रशंसा सुनते हैं कि मेरी तपस्या हो रही है। चारों ओर मेरी वाह-वाह हो रही है। मेरे फॉलोवर्स बढ़ रहे हैं। लोग मेरी जय-जयकार कर रहे हैं। मेरा यश हो रहा है। मैं और तपस्या करने की कोशिश करूँगा। मैं लोगों के सामने और ज्यादा दिखाने की कोशिश करूँगा। ज्यादा यश की भावना में वह बह जाता है। वह अपनी प्रशंसा को नहीं झेल पाता, फिर

समाधि की जगह उपाधि पैदा हो जाती है। सदाचार के कारण कोई गलत भावना पैदा न हो, अहंकार पैदा न हो। आचार एकमात्र आराधना के लिए, एकमात्र योग्यता प्रकट करने के लिए है। मेरा आचार, मेरे भीतर सिद्ध बनने की योग्यता प्रकट करनेवाला हो, सामर्थ्य प्रकट करनेवाला हो। ऐसी आचार भावना शांति देने वाली बनेगी। अन्यथा हालत विपरीत हो जाएगी। जैसे एक बहन के साथ घटी।

एक नवविवाहित सेठानी हाथ में हाथी दाँत का चूड़ा पहने हुई थी। पड़ोस की बहनें उसे देखने के लिए आईं। वह हाथ आगे करके दिखाती है। उसका चूड़ा देखकर एक बहन के मन में भी ऐसा विचार हो गया कि वह भी वैसा ही चूड़ा लेगी। उसने पति से फरमाईश की कि मुझे भी सेठानी जैसा चूड़ा चाहिए ताकि मुझे भी आस-पास की बहनें देखने आएं और मैं भी हाथ आगे कर-करके चूड़ा दिखाऊँ।

उसके पति ने कहा कि मेरे पास इतना धन नहीं है तो पत्नी बोली कि मुझे नहीं पता, मुझे तो जैसे भी हो चूड़ा चाहिए। अब पति बेचारा क्या करता। उसे पत्नी की बात माननी पड़ी, नहीं तो बात बिगड़ जाती। पति ने जैसे-तैसे पैसे इकट्ठे किए और घरवाली को चूड़ा दिलाया। अब वह हाथ में पहनकर इधर-उधर फिरती है। बाहर जाती है। जहाँ भीड़ होती है वहाँ भी जाती है। अपना हाथ आगे करके सब को चूड़ा दिखाना चाहती है पर कोई भी ऐसी औरत नहीं थी जो उसका चूड़ा देखे और उसकी तारीफ करे। इससे उसको गुस्सा आ गया कि एक भी ऐसी औरत नहीं जो मेरा चूड़ा देखे। सेठानी जी का चूड़ा देखने के लिए तो भीड़ लगी रहती थी। मेरा चूड़ा कोई देख ही नहीं रही है।

उसी गुस्से में उसने अपनी झोंपड़ी में आग लगा दी। उस आग को बुझाने के लिए लोग आते हैं। वह अपना हाथ आगे किए हुई थी। वहाँ किसी की नजर गई और बोली कि ओ! यह नया चूड़ा कब लिया। वह बोली यह बात अगर आप थोड़ा पहले बोल देती तो शायद यह आग नहीं लगानी पड़ती।

हमारी पूछ नहीं होती है तो कभी-कभी हम भी अपने विचारों में आग लगाना शुरू कर देते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। हमें सदाचार का पालन करना चाहिए। तपस्या से समाधि आनी चाहिए। तपस्या का अहंकार नहीं होना चाहिए। किसी के तप से डाह भी पैदा नहीं होना चाहिए। तपस्या में

दिखावटीपन भी पैदा नहीं होना चाहिए। शांति का वर्धापन होना चाहिए।

यदि मन शांत रहेगा तो क्रोध नहीं आएगा। क्रोध नहीं आएगा तो तपस्या सही ढंग से सम्पन्न होगी। सम्यक् समझ पूर्वक तप हो जाए तो क्रोध-मानादि पैदा ही नहीं होंगे, अपितु शांति और समाधि पैदा होगी।

समभाव किससे लेंगे?

श्रुत से, विनय से, आचार से और तपस्या से समभाव की प्राप्ति होती है। आपको किस मार्ग से जाना है, आपके लिए कौन-सा मार्ग सुगम है, इसका विचार आपको करना है। हम समाधि की ओर गतिशील बनें। इतना कहते हुए अपनी वाणी को विराम दे रहा हूँ।

24 जुलाई, 2021

# 2

# निर्वेद से निर्वाण

हमने मोक्ष के विषय में सुना है। मोक्ष को देखा नहीं है, किंतु मोक्ष मिलने के पहले उसकी अनुभूति हमें कुछ अंशों में अवश्य होती है। यह स्पष्ट है कि बिना अनुभूति के मोक्ष में नहीं जाएंगे। मोक्ष जाने वाले को पहले उसका ज्ञान होना अनिवार्य है। वह ज्ञान कब होगा? राग-द्वेष को बिना जीते वह ज्ञान नहीं होगा। जब राग-द्वेष जीत लिया जाएगा, तब मोक्ष के सुख की अनुभूति हमें यहीं पर हो जाएगी।

सुख, मोक्ष में रहा हुआ है। आत्मसुख, मुक्ति में रहा हुआ है। वही सुख वीतरागता में है। जैसी अनुभूति सिद्ध भगवान को होती है, वैसी ही अनुभूति हम वीतरागता में कर सकते हैं। वीतरागता में यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति होती है। यथाख्यात क्या होता है? जैसे आत्मा का स्वरूप कहा गया, वैसे ही स्वरूप की प्राप्ति हो जाना यथाख्यात है। वह स्वरूप राग-द्वेष को जीतने पर प्रकट होता है। राग-द्वेष ने हमारी गुणवत्ता को नकारा है। हमारी गुणवत्ता को उसने दूषित बनाया है। उसके कारण हमारी गुणवत्ता तथारूप नहीं रह पाई है। जब राग-द्वेष हट जाते हैं तो वह दृष्टि हमारे भीतर जागृत हो जाती है जिससे हम अपने स्वरूप को देख सकें। एक सूत्र में कहा गया है-

**'दिट्ठेहिं निव्वेयं गच्छेज्जा'**

अर्थात् जो कुछ दिख रहा है, जो कुछ देखा जा रहा है, उससे निर्वेद को प्राप्त कर लो। यानी जिन इंद्रियों के द्वारा हम जिन पदार्थों का अनुभव करते हैं, उनसे निर्वेद प्राप्त करना।

निर्वेद क्या है? निर्वेद शब्द के अर्थ को नहीं जानने पर बात समझ में आएगी नहीं। इसलिए निर्वेद शब्द के अर्थ को जानना जरूरी है। निर्वेद का अर्थ

होता है- सभी इंद्रियों के विषयों से उदासीन होना। इंद्रियों के प्रति निर्वेद को प्राप्त होना यानी उन-उन विषयों के प्रति आकर्षण नहीं होना। उनके प्रति लगाव नहीं होना। उनके प्रति मुग्ध नहीं होना। उनके प्रति उदासीन भाव होना। उदासीन होने का मतलब है; हमको उसका रस नहीं लेना। हमें उसमें रस की अनुभूति नहीं होनी। हमें उसके रस का आस्वाद नहीं लेना। इसका मतलब यह नहीं कि हम उन पदार्थों का अवमूल्यन कर रहे हैं। पदार्थ का मूल्य अपने स्थान पर करें, उसके मूल्य को स्वीकारें, किंतु उसके साथ जुड़ाव नहीं होना चाहिए। उसके प्रति आकर्षण नहीं होना चाहिए। आकर्षण हमें खींचता है। जब वह खींचता है तो हम उसकी तरफ खिंचे चले जाते हैं। निर्वेद, जैन सिद्धांत का टेक्निकल शब्द है। महत्त्वपूर्ण शब्द है। यह साधना है।

सीता स्वर्ण मृग को देखती हैं। वह सोने के मृग को देखकर राम से कहती हैं कि सोने का हिरण कितना अच्छा है, आप उसे ले आइए। क्या राम सोने के हिरण को नहीं जानते थे! हो सकता है कि नहीं जानते हों कि सोने का मृग क्या होता है। हम कहते हैं कि भारत सोने की चिड़िया था। सोने की चिड़िया का मतलब भारत चिड़िया नहीं बना था लेकिन धन-धान्य से समृद्ध था।

सोने का मृग देखकर सीता आकर्षित हो गईं। वह उस पर मुग्ध हो गईं। सीता के भीतर उसे पाने की इच्छा हो गई। उनके भीतर उसे पाने की चाह जगी। सीता ने राम से निवेदन किया। जानते हुए भी उस समय राम की बुद्धि में भ्रम पैदा हो गया। भ्रम पैदा होना असंभव नहीं है। इस तरह का कुछ मन में आ जाता है तो हम कुछ सोच नहीं पाते कि क्या करना है या जो भी कर रहे हैं उसका परिणाम क्या हो सकता है। कहीं ये हमारे लिए घातक सिद्ध न हो जाए, यह सब नहीं दिखता। दिखता है तो बस यह कि उसे पाना है।

सीता ने कहा कि आपको स्वर्ण मृग को लाना है। शायद राम ने भी सोचा न हो कि मृग भी सोने का होता है। जो कुछ भी प्रसंग रहा हो। राम उसके पीछे चले। पीछे चलने का क्या परिणाम हुआ? जिसके प्रति मुग्धता बनी, आकर्षण बना, जिसको पाने की ललक पैदा हो गई, उसे पाने के लिए राम गए तो दुख मिला। आप कहेंगे कि हिरण मिल जाता तो सुख पैदा हो जाता। ये हमारी कल्पना है। ये हमारी सोच है कि मिल जाता तो सुखी हो जाते। वस्तुतः

सुख वह नहीं है, जो इंद्रियों से हमें अनुभूत होता है। इंद्रियों से अनुभूत होने वाला सुख ज्ञानियों की दृष्टि में सुदीर्घ नहीं है, क्षणिक है। ज्ञानीजन कहते हैं कि जिस सुख के पीछे दुख की रेखा बनी हुई है, वह सुख हो ही नहीं सकता। भौतिक पदार्थों में आज हम बहुत सारा सुख महसूस कर रहे हैं। वे ही पदार्थ आने वाले समय में सुख देने की जगह दुख का कारण बन जाते हैं। वे सारे सुख को नष्ट कर देते हैं और दुख को निमंत्रित करते हैं। वे दुख पैदा करने वाले हो जाते हैं। इसलिए ज्ञानीजन कहते हैं कि सुख इंद्रियातीत है, यानी इंद्रियों से अतीत सुख है। जो सुख, बिना इंद्रियों के विद्यमान रहे, उसको प्राप्त करने का प्रयत्न करो।

उस सुख को कब प्राप्त किया जा सकता है?

भौतिक पदार्थों के प्रति हमारा जो आकर्षण बना हुआ है, वह जब तक नहीं मिटेगा, तब तक अपने भीतर का अलौकिक सुख हमें नहीं मिलेगा। आगे की रामायण का सार, घटनाक्रम, सीता का अपहरण, लंबे समय तक रावण के वहाँ रहना, लंका में राम का पहुँचना, युद्ध होना, ये सारी प्रक्रिया सोने के मृग के पीछे जुड़ी हुई है। यदि उसके प्रति सीता का आकर्षण नहीं होता, यदि उसके प्रति सीता का लगाव नहीं होता, उसके प्रति मुग्धता का भाव न होता तो ये सारी परेशानियाँ नहीं होतीं।

इससे हम यह बात समझ गए होंगे कि किसी के प्रति ज्यादा आकर्षित होना कितना घातक होता है। यदि पदार्थों के प्रति आकर्षण नहीं हो तो हमें किसी भी तरीके की परेशानियों का सामना करने की कोई जरूरत नहीं होगी, नहीं तो हम भी राम की तरह स्वर्ण मृग के पीछे भागते रहेंगे। हमारे जीवन में दुविधा आती रहेगी। हम दुविधाओं में निरंतर उलझते रहेंगे।

हमें किसी भी पदार्थ के प्रति आकर्षित नहीं होना है। यदि कोई किसी भी पदार्थ के प्रति आकर्षित नहीं होता है, उदासीन रहता है, जो वस्तु जैसे है, उसको वैसे ही मानता है, तो उसके प्रति जुड़ाव पैदा नहीं हो सकता। उसके प्रति जुड़ नहीं सकता। उससे अटैचमेंट नहीं होता। उसमें आकर्षित नहीं होता। ऐसा व्यक्ति कभी भी दुखी नहीं होता। हम अपने आकर्षण को धीरे-धीरे कम करेंगे तो सुखी बनते चले जाएंगे। आकर्षण से पूर्णतः अलग जीएंगे तो हमें मोक्ष की अनुभूति हो जाएगी।

सम्यक् दृष्टि भाव मोक्ष की अनुभूति कराने वाला होता है। वहीं से मोक्ष की यात्रा प्रारंभ होती है। सम्यक् दृष्टि भाव से हम क्या समझते हैं? सम्यक् दृष्टि का हम बड़े रूप में यह अर्थ लेते हैं कि देव-गुरु, धर्म पर आस्था रखनेवाला, श्रद्धा रखनेवाला, प्रेम भाव रखनेवाला सम्यक् दृष्टि है। यह परिभाषा, यह व्याख्या भी गलत नहीं है, किंतु सम्यक् दृष्टि की परिभाषा है कि जो प्रत्येक पदार्थ को वैसा ही समझे, वैसा ही जाने, जैसा वह पदार्थ है, वह सम्यक् दृष्टि है। सम्यक् दृष्टि कहते हैं सम्यक् दर्शन को। यानी जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही जानना, वैसा ही समझना। वह है समदृष्टि भाव। जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही देखने की दृष्टि बनते ही मोक्ष की अनुभूति होने लगेगी।

एक व्यक्ति घोर ताप में था। दोपहर के समय में वह धूप में चल रहा था। सूर्य प्रखर रूप से तप रहा था। सूर्य का ताप उस राही को, यात्री को परेशान किये हुए था। उसे एक घना और छायादार पेड़ नजर आया। राजस्थान में कम ही पेड़ होते थे। मारवाड़ क्षेत्र में तो और भी कम। मेवाड़ क्षेत्र में शायद मारवाड़ से ज्यादा ही पेड़ हैं। मारवाड़ में पेड़ हैं भी तो ज्यादा खेजड़ी के हैं; जिसकी छोटी-छोटी शाखाएं होती हैं। जिससे छाया कम ही रहती है। वह भी कम समय तक। उस खूब तपे हुए आदमी को थोड़ी छाया मिलती है। उसको बहुत समय चलने के बाद थोड़ा आराम महसूस होता है। उसे विश्राम की अनुभूति होती है। उसको लगता है कि ताप से राहत मिल गई। वैसे ही अनंतकाल से मिथ्यात्व मोह में पड़ी हुई आत्माओं को भयंकर ताप होता रहा है, किंतु जैसे ही हमारी दृष्टि सम्यक् बनी तो हमने जान लिया कि अब वह ताप नहीं है, अब संताप नहीं है। हमारे विचारों से संताप दूर हो जाएगा।

चण्डप्रद्योतन ने मृगावती को अभी चित्रपट पर ही देखा है। उसके चित्र को देखकर उसे प्राप्त करने के लिए वह पागल हो गया। शक्तिशाली सम्राट का मुकाबला करने की औकात हर किसी राजा की नहीं होती। सम्राट के मन में आ गया कि मृगावती को प्राप्त करना है, चाहे कैसे भी उसे प्राप्त कर सकूं। चाहे कुछ भी करना पड़े। युद्ध ही क्यूं न करना पड़े, लेकिन मुझे सुंदर मृगावती को प्राप्त करना ही है।

मालिक का मालिक कौन हो सकता है? कोई हो सकता है क्या?

अब उसको कौन समझाए? अगर समझाए तो क्या वह राजा समझेगा? जिस समय काम का जोर चढ़ा होता है, उस समय व्यक्ति को समझाना कठिन हो जाता है। कोई किसी तरह से समझाने का प्रयास भी करे तो वह सफल नहीं हो पाता। चाहे कितना ही जोर भी क्यूं न लगाले पर उसको समझाना कठिन होता है। कोई कितना भी ज्ञानी हो, उस समय उसका ज्ञान काम नहीं आ पाता। कोई समझाए तो वह समझ नहीं पाता।

सम्राट चण्डप्रद्योतन ने सेना को कूच करने का आदेश दिया। सेना चल पड़ी। पहुँच गई। युद्ध हुआ। मृगावती का पति शतानीक राजा मारा गया। मृगावती को पाने के लिए सम्राट राजद्वार तक पहुँच गया और पहुँचकर कहा कि तुम्हारे लिए ही मैंने युद्ध किया है। मैं तुम्हें बहुत ही ज्यादा चाहता हूँ। मैं तुम्हें अपने सपनों की रानी बनाना चाहता हूँ। तुम्हें किसी भी प्रकार की कोई तकलीफ नहीं होगी। तुम मेरी पटरानी बनोगी। उसके द्वारा मृगावती को लोभ दिया जा रहा है। मृगावती ने विचार किया कि ये राजा पगलाया हुआ है। इसे यथार्थ का ज्ञान नहीं हो रहा है। मुझे यह लोभ और लालच दे रहा है। बड़ी-बड़ी बातें कर रहा है। मुझे सब रानियों की पटरानी बना रहा है। अभी राजा ने कामुकता का चश्मा पहना हुआ है। आज मेरे को बोल रहा है किंतु क्या गारंटी है कि कल यदि मेरे से भी अधिक सुंदर कोई स्त्री दिखी तो उसके पीछे पागल न हो जाए और उसे पटरानी बना दे। इसको रानियों की क्या कमी है। यदि समझदार होता तो पराई स्त्री पर नजर ही क्यों डालता।

वह सोचने लगी कि उसके अनेक रानियां हैं पर वो मेरे प्रति मुग्ध हो गया। मेरा फोटो देखकर आसक्त हो गया। इसने मुझे पाने के लिए युद्ध किया, उससे कितने सारे लोगों को हानि हुई है। कितनों को परेशानियों का सामना करना पड़ा। उसने कितने लोगों की घात कर दी। यह कल किसी और पर पागल होगा। फिर उसे पाने के लिए युद्ध करेगा, जिससे अनेक लोगों की क्षति होगी, कई लोगों का घात करेगा।

भले ही उस राजा ने मृगावती को पाने के लिए ये सब किया, उसकी सुंदरता के पीछे पागल बना, लेकिन मृगावती उसके द्वारा दर्शाए गए लोभ में नहीं आई। उसने अपनी बुद्धि को पवित्र बनाए रखा। पवित्र बुद्धि से उसने विचार किया कि अभी राजा को कुछ भी समझ नहीं है। उसने नीति का प्रयोग

किया। वह बोली कि अब तो आप ही मेरे आदर्श हैं। मैं आपसे अलग कहाँ हूँ, किंतु अभी मुझे पति का वियोग हुआ है। मैं स्वयं को शोक से मुक्त नहीं कर पा रही हूँ। मुझे कुछ समय मिलना चाहिए। राजा खड़ा हो गया। वह मन में विचार कर रहा है कि मैं सोच नहीं सकता कि मृगावती इतनी जल्दी मान जाएगी। मेरा कितना पुण्य है। मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ कि मुझे ज्यादा प्रयत्न नहीं करना पड़ा। मुझे बल का प्रयोग नहीं करना पड़ा। सहज में ही कार्य संपन्न होने जा रहा है। उसने सोचा कि मृगावती स्वयं ही तैयार है तो मुझे बल का प्रयोग करने की क्या जरुरत है। मुझे जल्दी नहीं करनी चाहिए। धैर्य रखना चाहिए। जल्दी करने से, अधिक गर्म खिचड़ी खाने से मुँह जल जाता है। इसलिए थोड़ा सब्र करना उचित है।

मृगावती अपनी साधना में लग गई। संयोग ऐसा हुआ कि भगवान महावीर का आगमन हो गया। भगवान महावीर के आगमन से मृगावती की कली-कली खिलने लगी। वह धन्य हो गई। वैसे यदि भगवान नहीं आते तो भी वह चण्डप्रद्योतन को कभी स्वीकार नहीं करती। वह सोचने लगी कि कैसे उसको अलग रखना है। कैसे उसे चेताना है। उसके लिए कुछ प्रयत्न करना पड़ेगा। भगवान महावीर के आगमन की जानकारी उसे मिली तो वह राजा से निवेदन करती है। वह कहती है कि राजन्! आपकी अनुमति हो तो मैं भगवान का दर्शन करना चाहती हूँ। राजा कहता है- अरे महारानी! आप क्या विचार कर रही हो। भगवान महावीर पधारे हैं तो मैं भी चलूंगा।

राजा भी भगवान के दर्शन करने पहुँचा। भगवान की पर्युपासना की, देशना सुनी कि संसार कितने दुखों की खान है। जन्म का दुख, मरण का दुख, बुढ़ापे का दुख। ये नहीं करना, वो नहीं करना, वहाँ नहीं जाना, यहाँ नहीं जाना। ये सब संसार के दुख के साधन हैं। आपस में जलना, एक-दूसरे की बराबरी करने के लिए भागना। इन सब में दुख है। पड़ोसी के घर में फ्रिज आ गया, मेरे घर में नहीं आया। पड़ोस में नया घर बन रहा है और हमारे घर से अच्छा घर बन रहा है तो भी आपको दुख होता है। आप बोलते हैं कि अब हमारा भी घर इससे अच्छा हो। कोई पड़ोसी यदि गाड़ी लाए तो भी दुखी होते हैं। भले ही वह गाड़ी आपके पास पहले से ही हो, पर नई चाहिए। घर में सारे सामान हैं फिर भी और सारे सामान की जरूरत है। फालतू के सामान भी घर में

रख देते हो। जो किसी काम का नहीं है, जिसकी कोई जरूरत कभी पड़े ही नहीं। फ्रिज होना, कपड़ा होना, सोना होना चाहिए। पड़ोस में किसी बहन ने सोना खरीद लिया तो उसका भी दुःख लेते हो। आजकल तो घर बनाने के साथ ही साथ सब शॉपिंग कर लेते हैं। घर के साथ ही फर्नीचर, सोफा, पलंग सब खरीदने लग जाते हैं। कोई चीज देखी तो उस चीज को प्राप्त करने के लिए मन में इच्छा जग जाती है। पहले की चीजें पर्याप्त हैं, काम चल रहा है, नई चीजें नहीं होंगी तो भी चलेगा, किंतु नई देखी तो मन में लालच आ गया। स्पृहा बन गई। व्यक्ति उन्हें प्राप्त करने के लिए तैयार हो जाता है, प्रयत्नशील हो जाता है कि कैसे ही मैं उनको प्राप्त कर लूँ। उन चीजों को प्राप्त करने का जो पैमाना है, वह हमारी समाधि को भंग करने वाला होता है। उससे समाधि नहीं मिलती।

समाधि के दो सूत्र हैं- निस्पृहता और निरासक्तता। ये दो भाव यदि हमारे भीतर बन जाते हैं तो हमारी समाधि, हमारे सुख को कोई छीन नहीं सकता। यदि दूसरों की चाह हो तो व्यक्ति सम्यक् भाव से भटक जाता है, समाधि से भटक जाता है, अपने मार्ग से भटक जाता है। समाधि में रहने वाला प्राणी कहता है कि जो है वह पर्याप्त है। इससे आगे मुझे और कुछ नहीं चाहिए। भौतिक सुख-संपदा को बढ़ाना मतलब अपने आस-पास कीचड़ को बढ़ाना है। जब कीचड़ बढ़ता है तो उसमें फँसावट हो जाती है। चूंकि कीचड़ को कीचड़ नहीं समझते, इसलिए उससे बाहर निकलने की कोशिश भी नहीं कर पाते।

मकड़ी खुद जाला बनाती है। वह दूसरे जीवों को फँसाने के लिए जाला बनाती है। वह सोचती है कि कोई भी छोटा-बड़ा जीव आएगा तो उसमें फँस जाएगा। लेकिन होता उसके विपरीत है। वह खुद ही उसमें फँस जाती है। वह उसमें ही कैद हो जाती है। बाहर निकल ही नहीं पाती। वैसे ही जितनी स्पृहा करेंगे, उतना ही फँसते चले जाएंगे। अशांति बढ़ती जाएगी। उन पदार्थों से निर्वेद भाव को प्राप्त करना कठिन हो जाएगा। हम तो कह सकते हैं, तर्क दे सकते हैं; उस पर अमल तो आपको ही करना पड़ेगा।

शालिभद्र के पास बहुत सम्पदा थी। उसके पास किसी भी चीज की कमी नहीं थी। कोई दुविधा नहीं थी। कोई भी संसार में उसे रोकने वाला नहीं बन पाया। एक बात ध्यान रखना, शालिभद्र के पास सम्पदा जरूर थी, किंतु

उसके मन में आकर्षण नहीं था। उसे लगाव नहीं था। भोग और संग्रह करने की बुद्धि नहीं थी। एक दिन मैंने बताया था कि आज पहने हुए वस्त्र वापस नहीं पहनना। आपने त्याग भी किया था, पर आज यदि मैं यह कहूँ कि आज पहने हुए वस्त्र वापस कभी नहीं पहनना, आज इसका पच्चक्खाण कर लें। आप विचार में पड़ गए! न हाँ कहते बन रहा है न ना ही। शालिभद्र को लगाव नहीं था। भोगा और छोड़ा, भोगा और छोड़ा। आज वस्त्र का त्याग करना है और कर दिया।

महाराज गोचरी गए, एक बहिन से कहा- व्याख्यान में दया पालो। बहिन ने कहा कि चूड़ी के झाल नहीं लगे, तब तक धर्मस्थान में कैसे आऊँ!

उस बहिन ने कहा कि मैंने तो श्रावक जी से कहा कि आप जाओ व्याख्यान में। आपको भी कुछ ज्ञान मिलेगा। आप भी सुनना और घर आकर मुझे भी सुनाना। इससे मुझे भी व्याख्यान का लाभ मिल जाएगा। लेकिन वे सुनते ही नहीं। अपने लिए कहा कि मैं जा नहीं सकती, नहीं तो मैं सुनकर श्रावकजी को भी सुना देती। उसने कहा कि मेरे सोने की चूड़ी का झाल टूटा हुआ है, नहीं तो मैं ही चली जाती। अगर मैं बिना सोने की चूडी के वहाँ जाऊंगी तो लोग क्या सोचेंगे। मेरी कदर कैसे रहेगी। मेरी इज्जत का क्या होगा। लेकिन क्या हमारी कदर हमको है? हमारी अपनी कोई कदर ही नहीं है। क्या है हमारी कदर? अपने आभूषणों को अपनी कदर माना है? आभूषण हो तो आपकी कदर होवे तो ही व्याख्यान में जाना है, नहीं तो नहीं जाना। आभूषण हो तो ही जाना धर्मस्थान में। नए युग की नई चीजें होनी चाहिए। आभूषण हैं तो व्याख्यान में चले जाएंगे और हाथ को ऊपर रखेंगे ताकि सब आभूषण देख सकें। अपने हाथ को आगे रखकर चलेंगे। सबके सामने हाथ को दिखाएंगे ताकि हर कोई आभूषण को देख सके। वो व्याख्यान सुनने कम और आभूषण दिखाने ज्यादा आते हैं। यदि कोई उनका आभूषण नहीं देखे तो उनको अच्छा नहीं लगता। उनकी कोई तारीफ भी नहीं करता है तो बुरा तो लगेगा ही। मन में दुख होगा कि अरे! कोई पूछियो ही कोनी।

इससे स्पष्ट होता है कि हमारा धर्म के प्रति लगाव कितना है। समाधि का लक्ष्य कितना है। जो इंद्रियों का विषय है, चाहे सुनने का विषय है अथवा देखने का, जिस पर हमारी दृष्टि मुग्ध हो रही है, मुग्धता बनी रही तो कहीं-न-

कहीं समस्या पैदा करने वाली होगी।

मृग, पुंगी की आवाज के पीछे दौड़ा हुआ आता है। उसी से वह पकड़ में आ जाता है। हमारी भी पाँचों इंद्रियों में मुग्धता रही है। पाँचों इंद्रियों के विषय में मुग्धता बनी है। यही कारण है कि आज हम संसार में बने हुए हैं। पाँचों विषयों के आकर्षण में हम नहीं रहते तो हम भी संसार से कभी के मुक्त हो जाते। आज हो या कल, चाहे कभी भी, जब तक दृष्ट पदार्थों से उदासीन नहीं होंगे, तब तक मुक्ति नहीं मिलेगी। तब तक निर्वाण नहीं होगा। तब तक सुख की अनुभूति नहीं हो पाएगी।

आप भली-भाँति जानते हैं कि नमक की डली मुँह में पड़ी है और उसी समय मिश्री की डली मुँह में ली तो मिश्री का शुद्ध स्वाद नहीं आएगा। नमक की डली हटेगी तो ही उसका स्वाद हटेगा और मिश्री का स्वाद सही रूप से आ पाएगा। वैसे ही, जब तक पाँचों इंद्रियों के विषय में आकर्षण बना रहेगा, तब तक मुक्ति के सुख का हम अनुभव नहीं कर पाएंगे। जैसे ही हमारे भीतर निर्वेद की प्राप्ति होगी, इंद्रियों के विषय से हम निर्वेद भाव को प्राप्त हो जाएंगे, वैसे ही हमें आध्यात्मिक सुख का अनुभव अपने आप हो जाएगा। वह अनुभव ही हमें प्रेरित करेगा आगे बढ़ने के लिए। सम्यक् दृष्टि भाव आने के बाद जीव को निश्चित रूप से मोक्ष में जाना ही पड़ेगा। इसलिए अब सोच-समझकर ही संगति धारण करना। एक बार सम्यक् दृष्टि भाव आ गया तो वह संसार से पकड़कर आपको मोक्ष में ले जाएगा। आप नहीं भी जाना चाहें तब भी संसार में वह नहीं रोक सकेगा। वह एक निश्चित समय तक ही संसार में रुकने देगा, लेकिन अंत में ले ही जाएगा। यह बहुत महत्त्वपूर्ण चीज है। उसका भाव है कि जो भी पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही देखना। उसे ही मूल्य देना। जैसा देखा, वैसी ही दृष्टि बन गई तो आध्यात्मिक दृष्टि पैदा होगी। आध्यात्मिक दृष्टि पैदा होने के बाद हमारे भीतर तटस्थता के भाव आ जाएंगे। माध्यस्थ भाव आएगा। हम किसी भी पदार्थ में मुग्ध नहीं होंगे। खाने या पहनने के पदार्थ के प्रति भी हमारा मन नहीं भटकेगा।

भरत चक्रवर्ती का आख्यान आपने सुना होगा। काँच का महल है। चारों तरफ दर्पण लगे हुए हैं। सम्राट जिधर देखे, उसको अपना ही रूप नजर आता है। उनके शरीर पर वस्त्र और आभूषण ही दिखाई देते हैं। अलग-अलग

तरह के वस्त्र और आभूषण हैं। अपनी मैचिंग के अनुसार वे सब पहनकर सज-धज रहे हैं। शीशमहल में उनको आभूषण और वस्त्र पहनाए जा रहे थे। सब मैचिंग के पहनाए जा रहे थे। हाथों की सारी अंगुलियों में अंगूठियां पहनाई जा रही थीं। संयोग से एक अँगुली की अँगूठी ढीली होने के कारण नीचे गिर पड़ी। जैसे ही सम्राट ने अपने हाथ की तरफ आँखें घुमाईं तो लगा कि बाकी सब की रौनक जमी हुई है पर एक अँगुली सूनी लग रही है। उनका चिंतन मुड़ गया। उनका विचार मुड़ गया कि क्या यह शोभा मेरी नहीं है? वे सोचने लगे कि क्या मेरी आभा इन पदार्थों से है? इन आभूषणों से है? फिर सम्राट ने दूसरी अँगुली की अँगूठी उतारी, तीसरी की उतारी। ऐसा करते-करते सब अँगुलियों की अँगूठियाँ उतार देते हैं और चले जाते हैं दूसरे विचारों में। विचार में वे वहाँ तक पहुँच गए कि सब कुछ त्याग कर केवलज्ञानी बन गए।

जैसे ही निर्वेद भाव आया, उदासीन भाव से वे घाती कर्मों को क्षय करके लोक को देखने लगे। वे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बन गये। अब संसार में जाना या राजमहल में जाना? क्या करना? केवलज्ञान हो गया वह रुक नहीं सकता। वह घर में रह नहीं सकता। घर में रहेगा तो बच्चों को लाड-प्यार करना पड़ता है। अगर लाड-प्यार नहीं करे तो व्यवहार का उच्छेद होता है। लाड-प्यार करे तो वीतरागता भंग होती है इसलिए ऐसी अवस्था में वे संसार में, घर में नहीं रहते। वे भरत केवली भी भगवान ऋषभदेव के समवशरण में चले जाते हैं। वे केवली परिषद में पधार गए।

कहते हैं कि आठ राजाओं को उसी प्रकार से ज्ञान होता रहा। आखिर लोग विचार करने लगे कि यह अरिसा भवन कैसा है, जो जाता है वह केवली हो जाता है। ऐसा नहीं है कि सिर्फ वहाँ जाने से ही ज्ञान होता है। पर हाँ, हो सकता है कि क्षेत्र के प्रभाव से हमारे विचारों में परिवर्तन हो, हमारे विचारों में बदलाव आए। इसलिए धर्मस्थान में आने की बात होती है। इसलिए लोग मंदिर-मस्जिद में जाते हैं। वहाँ जाने पर विचारों में फर्क आता है। वहाँ जाने से कुछ अंतर आता है। जो विचार घर में नहीं बन सकते हैं, वे धर्मस्थान में बन जाते हैं। जहाँ पर निरंतर आध्यात्मिक साधना होती है, वहाँ का वातावरण अपने आप ही वैसा बन जाता है।

श्रवण कुमार अपने माता-पिता को तीर्थयात्रा कराने के लिए ले जा

रहे हैं। एक स्थान ऐसा आया जहाँ उसके मन में ऐसा विचार आया कि अब मैं उठाकर नहीं चल सकता। उन्होंने कहा कि अब मैं भार नहीं ढो सकता। मैं तीर्थयात्रा नहीं करा सकता। जैसे ही उनके पिता जी के कानों में ये शब्द आए, वे समझ गए कि हम कुरुक्षेत्र में आ गए हैं। श्रवण कुमार के पिता जी श्रवण कुमार से कहते हैं कि कोई नहीं बेटा, यहाँ तक तू ले आया है तो अब दो-चार कोस और आगे ले जा, आगे कोई शहर आ जाएगा, फिर हम अपना निर्वाह कर लेंगे। वे जैसे ही कुरुक्षेत्र से बाहर निकले कि श्रवण कुमार सोचने लगे कि मैंने मेरे माता-पिता को ये क्या बोल दिया। श्रवण कुमार दु:खी हुए और सोचने लगे कि मैंने ये क्या बोल दिया, जिससे मेरे माता-पिता की आत्मा को पता नहीं कितनी ठेस पहुँची होगी। यह है भूमि का प्रभाव। कई बार क्षेत्र का प्रभाव भी होता है। साधना के लिए भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की आवश्यकता है। उससे साधना आराम से सधती है।

एक बार जवाहरलाल जी म.सा. व्याख्यान में पधारे और बोले कि आज मेरा दिमाग ठीक नहीं है, माइंड ठीक नहीं है। इसलिए आज मैं व्याख्यान नहीं दूँगा। श्री सिरेमल जी म.सा. व्याख्यान फरमाएंगे। आचार्य म.सा. आज व्याख्यान नहीं बाचेंगे क्योंकि भावों की स्थिति अनुकूल नहीं है। इसलिए नहीं फरमा पाएंगे। दिमाग ठीक नहीं होगा तो क्या बोलना है और क्या बोल दिया जाएगा कुछ ध्यान में नहीं रहता है। उसके लिए दिमाग की तैयारी होनी जरूरी है। दिमाग तैयार होता है तो विचार सही हो जाते हैं। ऐसा नहीं कि जो भी आए वह बोल दो। बोलने वाला अगर ठीक नहीं रहेगा तो कुछ भी बोल सकता है, जो उचित नहीं रहता। बोलने वाले को ध्यान रखना चाहिए। किसी प्रकार की कोई लाग-लपेट की बात नहीं होनी चाहिए। यह सुधर्मापीठ है। यहाँ तटस्थ भाव से बोलना होता है। तभी व्याख्यान देने वाले की 100 टका निर्जरा है। सुनने वाले की हो या नहीं हो यह अलग बात है।

धर्म की साधना समय पर कीजिए। यदि रोज पाँच बजे कोई धार्मिक अनुष्ठान करते हों, सामायिक करते हों तो निरंतर 10-11 दिन उसी समय, पाँच बजे लग जाएंगे तो धीरे-धीरे आपका समय सध जाएगा। जैसे आज के युग में सिस्टम है, वैसा सिस्टम भगवान ने पहले ही बता दिया। भगवान ने बता दिया कि 'काले-काले समायरे' यानी समय पर सारे कार्य होना। यदि समय पर

सारे कार्य होते हैं तो साधना में रंग-आनंद आने लगता है।

मैंने सूत्र कहे थे 'निस्पृह...' यानी अप्राप्त को प्राप्त करने की चाह नहीं। निरासक्तता यानी जो पदार्थ मौजूद है, उसके प्रति आसक्ति नहीं। कई लोगों की आदत होती है कि भले ही घर कबाड़खाना हो जाए, किंतु सामान को बाहर निकालना उनके लिए मुश्किल होता है। मैंने देखा है कि एक स्थान पर इंग्लिश पुस्तकों की भरमार थी। नई-नई दिखने वाली पुस्तकें अटारे में डाली हुई थी। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो डाल देते हैं। बहुत सारी चीजों को यूं ही डाल देते हैं किंतु कुछ लोग कुछ भी छोड़ना नहीं चाहते हैं। पुरानी साड़ियाँ कितनी पड़ी होंगी? कौन-कौनसे जमाने की पड़ी हैं। हो सकता है, जब शादी हुई तब की पड़ी हों उन साड़ियों को कितनी बार पहनने का काम पड़ता है?

मैं यह नहीं कहता कि नई साड़ियाँ मत खरीदो। भले ही रोज नई साड़ियाँ खरीदो, लेकिन घर में साड़ियों की संख्या बढ़नी नहीं चाहिए। यदि आपने आज नई साड़ी खरीद ली है तो घर में साड़ी की संख्या बढ़नी नहीं। तो क्या करना है आपको? एक पुरानी साड़ी को घर से बाहर निकाल देना है। अपने पास बहुत साड़ियाँ हैं। संख्या नहीं बढ़नी चाहिए। आज कौन-कौन बहनें हैं जो पच्चक्खाण लेती हैं। खड़ी हो जाओ। (बहुत बहनों ने प्रतिज्ञा ली।) अब भाइयों का नंबर आ गया। भाइयों आपको भी पोशाकों की संख्या नहीं बढ़ानी है। शालिभद्र की तरह नई पोशाक के बदले पुरानी पोशाक को घर से निकाल दो। आपके पास जितनी भी ड्रेस है कोई बात नहीं, लेकिन अब से पोशाकों की संख्या नहीं बढ़ानी है। (कई भाई भी प्रतिज्ञा लेते हैं)

भगवान महावीर स्वामी की जय। इतना कहते हुए विराम।

25 जुलाई, 2021

# 3

# साधना का स्वराज

सोए हुए लोगों और उनके बीच रहने वाले लोगों पर कभी विश्वास मत करना। सोए हुए लोगों पर विश्वास करने में खतरा है। सोया हुआ व्यक्ति नींद में क्या बोलता है, उसे स्वयं पता नहीं रहता है, इसलिए उससे सावधान रहना चाहिए। नींद में लोग सावधान नहीं रह पाते। भले ही भाव इंद्रियाँ जागृत हों पर वहाँ आत्मा का विस्मरण रहता है। संसारी जीव भाव नींद में सोए हुए हैं। मोह नींद में सोए हुए हैं। वे मोह की बात करेंगे। उनको उसी में रस रहता है। वे काल से बेखबर रहते हैं, इसलिए भगवान कहते हैं– जागृत रहो, सावधान रहो।

साधक, काल कब आ जाए कुछ नहीं कहा जा सकता। तुम्हारा शरीर बलशाली नहीं है। कोई कितना भी सशक्त हो, कितना भी शक्तिशाली हो, किसी ने हजारों हजार सुभटों पर जीत प्राप्त कर ली हो, किंतु मृत्यु के सामने सब निर्बल हो जाते हैं। वहाँ उनका बल काम नहीं करता। सशक्त भी मृत्यु के गाल में चले जाते हैं। सबल भी मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। जिस प्रकार से भारण्ड पक्षी सावधान रहता है, वैसे ही तुम सावधानीपूर्वक अपना काम करो।

अप्रमत्त भाव का अर्थ होता है आत्मा का विस्मरण नहीं होना। आत्मा की स्मृति सदा बने रहना। न ही भूलना है, न ही भुलाना है। न ही स्मरण करना है। जब मैं उसी में जीऊँगा तो न भूल होगी, न भूला जाएगा और न स्मरण करने की आवश्यकता रहेगी। जिसे मैं जी रहा हूँ, उसे क्या भूलूं और क्या याद रखूं! मुझे क्या भूलना है, क्या याद रखना है? न वह भूलना है और न ही उसे याद करना होता है। वैसी ही दशा अप्रमत्त भाव की होती है।

आपने ताराकँवर जी म.सा. के बारे में अभी पूर्व वक्ताओं से सुना ही

है। अप्रमत्त भाव में चलना उनकी खासियत रही है। भले कितनी ही सतियाँ जी हों, किंतु कम से कम एक बार गोचरी जाना उनका हमेशा लक्ष्य रहता था। अपना कार्य स्वयं करने में उनकी तत्परता रहती थी। वह खुद ही अपना कार्य करती थीं। संयमी जीवन के प्रति उनकी सजगता बनी रहती थी। सहजता का गुण, सरलता का भाव उनमें था। वे हमेशा से ही सरल स्वभाव की थीं। उनमें कोई लुकाव-छिपाव नहीं था। कई लोग छिपाने की वृत्ति वाले होते हैं, किंतु वे इस मायने में साफ थीं, एकदम क्लियर थीं। सही बातें कहने में कोई संकोच नहीं करतीं, पूरी स्पष्टता से कह देती थीं। यह सरलता हर किसी को नसीब नहीं होती। उन्होंने अपनी किसी गलत बात को कभी ढकने की कोशिश नहीं की।

चितरंजना श्री जी म.सा. की दीक्षा होने वाली थी। वह उनकी भतीजी है। परिवार वालों का कहना था कि वह ताराकँवर जी के पास ही रहे। यह बात ताराकँवर जी म.सा. के सामने आई तो उन्होंने कहा- आप दीक्षा लेकर कहीं भी रहें, संयम की पालना होनी चाहिए। यह शासन, यह संघ सबका है। उन्होंने कहा कि मेरे पास रहने से आपका कल्याण होगा, उसके पास रहने से कल्याण नहीं होगा, ऐसी बात नहीं है। उन्होंने कहा कि संयम महत्त्वपूर्ण है। मेरा और तेरा कोई मायने नहीं रखता। हमें यह सोचना चाहिए कि दीक्षा लेकर जिस किसी के पास भी रहूँ, मुझे संयम की आराधना करनी है। उसी से मेरा कल्याण है। कहना आसान हो सकता है, किंतु एक वैरागी इधर से उधर होता है तो मन फिसलने लगता है, हिलने लगता है। कई बार कुछ को आर्त ध्यान हो जाता है, किंतु ताराकँवर जी म.सा. में निस्पृहता दिखने को मिली।

जब हम किसी से अपेक्षाएं जोड़ लेते हैं तो दुःख मोल ले लेते हैं। यदि कोई अपेक्षा न हो तो दुःख क्यों होगा? हम हमारे कार्यों से, हमारी सोच से, हमारे विचारों से जब कुछ चाह लेकर चलते हैं और उन पर पानी फिरने लगता है, तो मन गमगीन हो जाता है। जब हमारी आकांक्षाएं पूर्ण नहीं होती हैं तो मन दुःखी हो जाता है।

यदि कोई पूछे कि आकांक्षाएं क्यों दुःख देती है तो उसका समाधान यह है कि जो अपेक्षा हम रखते हैं, वह जब पूरी नहीं होतीं तो हमारे भीतर हीन भावना पैदा हो जाती है। लगता है कि मुझे उपेक्षित किया जा रहा है। व्यक्ति अपने आप में उपेक्षा का भाव अनुभव करते हुए हीन भावना का शिकार हो

जाता है। उसी से दु:खी होता है। उसे लगता है कि मेरी उपेक्षा हो रही है, लोग मेरी उपेक्षा कर रहे हैं। यदि हमारी आत्मा स्वयं हमको उपेक्षित नहीं करे, हम स्वयं से उपेक्षित न हों तो हमारी उपेक्षा कोई नहीं कर पाएगा। पर हमारे लिए अपने आपको सुनना बहुत मुश्किल है। दूसरा कोई उपेक्षा करे या नहीं करे किंतु व्यक्ति स्वयं में उपेक्षित महसूस करता हुआ दु:खी हो जाता है। इसलिए हमें अपेक्षा से बचना चाहिए। चाह से, आकांक्षा से अपना बचाव करना चाहिए। कहीं कोई अपेक्षा-आकांक्षा नहीं करनी चाहिए।

भगवान ने कहा कि गीतार्थ मुनि के सहयोग की अपेक्षा करें। गीतार्थ यानी निपुणार्थ बुद्धि का स्वामी। संयम निर्वाह के लिए उसका सहकार जरूरी है। साथ ही संयम के लिए निरपेक्ष भाव बहुत जरूरी है। उत्तराध्ययन सूत्र के 32वें अध्ययन में एक कथन है कि कोई दीक्षार्थी संयम ग्रहण करने के लिए भाव से तैयार है, पर साधु अपने लिए किसी की अपेक्षा नहीं करे अर्थात् ये विचार न करे कि यह मेरी सेवा करेगा, मुझे कुछ करने की जरूरत नहीं रहेगी, मेरा सारा काम यह साधु कर लेगा, मेरी सेवा होगी, मेरी शिष्य संपदा बढ़ेगी। वह ऐसी अपेक्षा किसी से नहीं करे। यदि कोई दीक्षा लेना चाहे तो यह सोचना चाहिए कि इसको आत्मज्ञान हो। ये मोक्ष की तरफ अग्रसर हो। यह मोह-माया त्यागकर संयम की ओर आगे बढ़े। हम जितना सहयोग दे सकते हैं, उतना सहयोग दें। यह मेरा सहयोग करेगा, मेरा शिष्य बनेगा, मेरी सेवा करेगा, ऐसी कोई अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। यदि अपेक्षा की और उसने सेवा नहीं की तो दु:खी होंगे।

माता-पिता, अपनी संतान से अपेक्षा करते हैं कि बेटा वृद्धावस्था में मेरा सहारा बनेगा। बेटा बड़ा होने पर कहता है कि मैं तो दीक्षा लूंगा, तब माता-पिता बोलते हैं कि बेटा! एक तुम ही तो हो हमारे बुढ़ापे का सहारा। तुम हमें छोड़ोगे तो हमारा क्या होगा। तब बेटा बोलता है कि मैं आपके बुढ़ापे का सहारा नहीं बन पा रहा हूँ यह सही है किंतु इस जीवन में कौन बड़ा है, कौन छोटा है इसका कोई लेना-देना नहीं है। कौन कब संसार छोड़ दे, इसका किसी को नहीं पता। भले ही आप बूढ़े हो, मैं आपसे छोटा हूँ पर क्या पता मेरी मौत आपसे पहले आ जाए। फिर आपके बुढ़ापे का सहारा कौन होगा? माता-पिता की सेवा करनी चाहिए, उनका पालन करना चाहिए, लेकिन किसी भी वक्त

मौत आ जाए तो हमें दु:ख होगा या नहीं! यह सोचकर अपेक्षा जोड़ दी जाती है कि बेटा बड़ा होकर सेवा करेगा। अपेक्षा नहीं जोड़ने पर दु:ख नहीं होता। अगर हम किसी से अपेक्षा जोड़ते हैं तो किसी के रहने या न रहने से हमें दु:ख होगा। यदि हमने अपेक्षा नहीं की तो किसी के जाने या रहने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा। दु:ख का कारण ही अपेक्षा है। अपेक्षा नहीं जोड़ने पर दु:ख नहीं होता। किसी से अपेक्षा जुड़ने के बाद उससे सुख नहीं मिलने पर दु:ख होता है।

**मैं तो ढूंढियो रे सऊ जग मांय,**
**सुखी न मिलियो एक भी।**

मैंने सारे संसार में ढूँढा, पर एक आदमी भी सुखी नहीं मिला। यह एक कथन है। जरूरी नहीं कि कोई सुखी नहीं हो। कोई भी हो सकता है, किंतु सुखी वही होगा जो संतोष में जी रहा होगा।

**'संतोषी सदा सुखी'**

जो निरपेक्ष जीवन जी रहा है, वह सुखी होगा। जिसको किसी से कोई लेना-देना नहीं है, किसी के काम-धंधे से कोई लेना नहीं, देना नहीं, वह सुखी रहेगा। जो अपेक्षा में नहीं रहेगा, वह सुखी होगा। महासती श्री ताराकँवर जी निरपेक्ष भावों में जीने वाली और संयमी जीवन में चुस्त भाव से चलने वाली थीं। वे जब बीमार थीं तो श्री सुयशा श्री जी आदि सतियों ने कहा कि हम आपके पास रह जाएं तो उन्होंने मना कर दिया। बात स्पष्ट है कि क्या किसी के रुकने या रहने से मौत रुक जाती? नहीं। जो मौत आने वाली है वह आएगी। अगर कोई रुक भी जाती है तो मौत रुकेगी नहीं। यदि किसी के रुकने से किसी की मौत रुकती है तो सब रुक जाओ। पर ऐसा नहीं होता। मौत जब आनी है वह आएगी। जिस समय आनी है उसी समय आएगी। चाहे कोई पास रहे या न रहे, मौत को कोई फर्क पड़ने वाला नहीं।

हम भी सुख चाहते हैं, समाधि चाहते हैं तो हमें किसी से अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। अपेक्षा किसी से भी मत रखिए। किसी से भी अपेक्षा नहीं जोड़नी है। यदि अपेक्षा बढ़ रही हो तो हमें उन बढ़ती अपेक्षाओं के पर काट देना चाहिए। सबसे पहली बात तो यह है कि हमें किसी की सेवा लेनी ही क्यों पड़े! हमें हमारा पुरुषार्थ जागृत रखना है। यदि कभी सेवा की जरूरत पड़ गई तो शासन आबाद है। अपने आप सेवा हो जाएगी। किसी से अपेक्षा की जरूरत

नहीं पड़ेगी। अपने आप सेवा की व्यवस्था हो जाएगी।

मान लो किसी की सेवा नहीं हो पाई तो भी जरूरी नहीं है कि उसके साथ वाला सेवा कर लेगा। इसलिए हमें अपने स्वयं के पुरुषार्थ पर भरोसा करना चाहिए। आत्मविश्वास होना चाहिए कि मेरे शुभाशुभ कर्मों का भोग मुझे ही करना है। यदि अशुभ होगा तो भी मुझे ही करना है और शुभ होगा तो भी।

ऐसा विचार, ऐसी भावना हमारे अंदर बनेगी तो हमें कोई दुःख नहीं दे सकता है। ताराकँवर जी महासती का जन्म रतलाम में हुआ। गुरुदेव के सान्निध्य में इसी ब्यावर में कार्तिक सुदी बारस को उन्होंने संयम पथ स्वीकार किया। लगभग 50 वर्षों तक उनका जीवन संयम में चल रहा था। पिछले कुछ समय से महासती जी जावरा में विराजमान थीं। जावरा संघ ने अपने श्रावकोचित कर्तव्य का पालन बड़ी भक्ति और श्रद्धा से किया। हम महासती जी के जीवन से प्रेरणा लें। हमारे भीतर भी निस्पृहता के भाव जगें। हम निरपेक्ष जीवन जी सकें। ऐसा होगा तो हम धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

26 जुलाई, 2021

# 4

# बम निष्फल करें

**पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिनतणो रे**

किसी साधु ने भगवान महावीर से एक प्रश्न किया कि आप आत्मा को ही जब सामायिक और आत्मा को ही सामायिक का अर्थ बताते हैं तब क्रोध को प्रीतिनाशक क्यों फरमाते हैं? क्रोध भी तो आत्म प्रतिष्ठित होता है।

यह प्रश्न सामान्य है और उत्तर भी उसी प्रकार का दिया गया। प्रश्न सामान्य है, किंतु इसके भाव बहुत गहरे हैं। जब आत्मा ही सामायिक है तो आत्मभावों की निंदा क्यों, घृणा क्यों, उनसे दुःख क्यों? क्रोध भी आत्मप्रतिष्ठित है। आत्मा के निमित्त से होता है। वैसे निमित्त दूसरे भी हो सकते हैं। बिना निमित्त के भी क्रोध की उत्पत्ति होती है, पर क्रोध होता आत्मा में ही है। क्रोध आत्मा में होने पर भी वह आत्मा का स्वाभाविक गुण नहीं है। वह वैभाविक गुण है। दो-तीन दिन पहले एक बहिन ने प्रश्न पूछा था कि क्रोध को निष्फल कैसे करें।

आप लोगों को अखबार या टी.वी. द्वारा जानकारी प्राप्त हुई होगी कि कई बार पुलिस को बम की सूचना मिलती है तो पुलिस की वह टीम जो बम को निष्फल करने में समर्थ है, उस बम को निष्फल करती है। वे उसको निष्फल कैसे करते हैं? पुलिसवाले उस बम को फूटने नहीं देते। वे उसको निष्फल करते हैं। जब वे उसके पास जाते हैं तो उनके फूटने से उनके लिए भी खतरे की आशंका रहती है किंतु उनके द्वारा उसको निष्फल करने की प्रक्रिया होती है।

जैसे बम को निष्क्रिय करते हैं, वैसे ही क्रोध को निष्फल करने का भी उपाय होता है। ऐसा नहीं कि क्रोध को निष्फल नहीं किया जा सकता है। सबसे पहले इच्छा शक्ति प्रबल होनी चाहिए कि मुझे क्रोध को निष्फल करना है। दृढ़

संकल्प होगा तो ही क्रोध निष्फल होगा। यदि संकल्प सुदृढ़ नहीं होगा तो क्रोध उस संकल्प को उड़ा देगा। उस संकल्प को बहा देगा। उस संकल्प को तोड़ देगा और वह बाहर आ जाएगा। घृणा करने का मतलब है आत्मा की निंदा करना। उसे धिक्कारना कि उसने क्रोध किया।

एक होता है उन्माद। उन्माद हमारी आत्मा के लिए घातक होता है। क्रोध ही नहीं यश का भी उन्माद घातक होता है। आत्मा जानती है कि वह उन्माद से स्वयं को बचाने का प्रयत्न कर सकती है। उसके पास उपाय भी है पर उस उपाय का वह सहारा नहीं ले पाती। वह अपने आप को निरुपाय समझ लेती है। मान लेती है कि अपने वश की बात नहीं है। मैं उस क्रोध को जीत नहीं सकती।

मनोबल कमजोर क्यों पड़ा? मनोबल दृढ़ क्यों नहीं रहा?

इसलिए नहीं रहा, क्योंकि हमने बार-बार क्रोध को देखा है। हम उस पर हावी नहीं हो पाते। वह हम पर हावी हो जाता है। हम क्रोध के शिकार हो जाते हैं। बार-बार क्रोध आता है और हमें पश्चाताप में डाल देता है। क्रोध की परिणति लास्ट में पश्चाताप में डाल देती है। पछतावा होता है कि मैंने क्रोध क्यों कर लिया। क्रोध करने पर मन में पछतावा होता है। हम बार-बार पश्चाताप में चले जाते हैं। बाद में मगरमच्छ के आँसू बहाते हैं। मगरमच्छ के आँसू थोड़ी देर तक ही होते है। फिर वह वैसा ही बन जाता है, जैसे पहले था।

इसलिए सबसे पहले आपको संकल्पित होना होगा कि मुझे क्रोध नहीं करना है। चाहे किसी भी स्थिति में हूँ, कैसी ही घटना घट जाए पर मुझे चुपचाप ही रहना है ताकि मैं क्रोध से दूर रह सकूँ।

एक श्रावक को क्रोध बहुत आता था। उसने क्रोध पर संतों का पूरा व्याख्यान सुना। व्याख्यान सुनने के बाद उसके मन में विचार आया कि अब से मैं कभी क्रोध नहीं करूंगा। उसने गुरु के सामने हाथ जोड़कर कहा कि गुरुदेव! आज के बाद मैं कभी क्रोध नहीं करूंगा। उसने कहा कि मैं यह प्रतिज्ञा करना चाहता हूँ कि मैं क्रोध नहीं करूंगा। गुरुदेव ने उसके भाव को ताड़ने के लिए गौर से देखा कि यह भीतर से बोल रहा है या भावुकता में आकर बोल रहा है। उसके हृदय के भीतर से उठी लहर है या नहीं! हृदय के भीतर से उठी लहर गहरी होती है। वह उसको पारंगत बनाने में समर्थ होती है। यदि वह भावुकता

से बोल रहा होता है, तो लंबे समय तक पालन करने में समर्थ नहीं हो सकता। गुरु महाराज ने उसको देखा तो लगा कि ललक है। बात गंभीरता से कर रहा है। भीतर से गहरी ललक है कि आज से मुझे क्रोध नहीं करना है।

गुरु ने कहा कि देखो भाई! तुम प्रतिज्ञा लेना चाहो तो ले सकते हो पर क्रोध किसी भी बात से आ सकता है। किसी छोटी बात से भी आ सकता है। जरूरी नहीं कि उसके लिए कोई बड़ा निमित्त हो। क्रोध बिना निमित्त के भी हो सकता है। तिल का ताड़ भी हो सकता है और ताड़ को तिल भी बनाया जा सकता है। छोटा-सा नियम बहुत बड़ा आकार ले सकता है। छोटे से नियम को बड़ा बना सकते हैं, पर उस नियम को फॉलो कैसे करें?

लोभ एक छोटा-सा वाक्य है, जिसे बहुत बड़ा बनाया जा सकता है। उसको बहुत विस्तार दिया जा सकता है। वह नष्ट भी किया जा सकता है। उसे नष्ट कर दें तो बात आगे बढ़ेगी नहीं। जिस बात को हमने पकड़ लिया, उसका अंत कहाँ होगा, कुछ भी कहना मुश्किल होगा। एक छोटी-सी बात से द्रौपदी ने महाभारत रच दी और कैकेयी ने अपने छोटे-से शब्दों से रामायण लिख दी। छोटी-सी बात बहुत बड़ी बात हो सकती है। हम चाहें तो उसे छोटे में ही निकाल सकते हैं। यह सब व्यक्ति पर निर्भर है कि वह किस रूप में स्वीकार करता है और कितना मूल्य देता है। यह व्यक्ति पर निर्भर है कि वह क्रोध को मूल्य देता है कि क्षमा को। वैसे अधिकांश लोग क्रोध को मूल्य देते हैं।

महाराज ने कहा कि क्रोध छोटा-सा निमित्त पाकर बढ़ सकता है। वह विकराल रूप ले सकता है। गुरुदेव ने कहा कि सोच लो गुस्सा आ गया तो क्या करोगे? प्रतिज्ञा ले रहे पर यदि गुस्सा आ गया तो फिर क्या करोगे? उसने कहा कि गुस्सा आने पर यदि उस दिन चाय-कॉफी कुछ खाया-पीया नहीं है, तो चौविहार उपवास करूंगा, अन्यथा दूसरे दिन चौविहार उपवास करूंगा। गुरुदेव ने पच्चक्खाण करा दिया। अब वह बड़ा सावधान रहता और बड़ा संभलकर चलता, किंतु आदत तो आदत ही है। क्रोध करने की उसकी आदत थी। छोटा-सा निमित्त हुआ और गुस्सा आ गया। क्रोध आने के बाद उसने कहा कि मैं कोठरी में बैठता हूँ। उसने सबसे बोल दिया कि मैं कोठरी में बैठ रहा हूँ। वह कोठरी में बैठ गया। उसको भय था कि वह बाहर रहा और फिर गुस्सा आया तो क्या होगा? ऐसा कितने दिन चलेगा?

गुस्सा करना है तो पच्चक्खाण की कोठरी में बैठना मत। कोठरी को भीतर से बंद करके कितने दिन बैठ सकते हो? फिर गुस्सा आ गया तो क्या होगा! ऐसा कितने दिन तक चलेगा। इसलिए बाँध मजबूत बाँधना है ताकि पानी के धक्कों को सहे। बाँध मजबूत नहीं होगा तो पानी के धक्कों को नहीं सह पाएगा। हमारा संकल्प मजबूत होगा तो भीतर के उछालों को सहने में समर्थ हो जाएगा। सेठ के भीतर उछाला उठा और संकल्प के बाँध को तोड़ दिया। प्रायश्चित स्वरूप उसने उपवास किया। उपवास करने की उसे आदत नहीं थी, जिससे परेशानी होना स्वाभाविक था। हम संकल्प करें तो अपने संकल्प पर बाँध की तरह मजबूत रहना है। चाहे कितने ही धक्के क्यों न आ जाएं, हमें डटकर क्रोध का सामना करना है। संकल्प मजबूत होगा तो हम क्रोध को भी शांत कर सकते हैं। कभी गुस्सा नहीं करेंगे। यदि संकल्प मजबूत नहीं होगा तो फिर उछाले उठेंगे और उस संकल्प को थोड़े दिनों के बाद तोड़ देंगे।

उसकी उपवास की आदत नहीं थी। कम ही करता था। कभी साल भर में एक बार कर लिया तो कर लिया। अब एक तो चौविहार उपवास, ऊपर से गरमी के दिन। उसको परेशानी होनी ही थी। उसने उपवास किया, जिससे एक अनुभूति और मिली उसे। उसके संकल्प-त्याग मजबूत हुए कि अब मुझे गुस्सा किसी भी हालत में नहीं करना है। किसलिए करूँ, क्यों करूँ! थोड़ी देर के लिए आता है और बहुत समय के लिए बात बिगाड़ देता है। बहुत समय तक बात बिगड़ती है। एक बात के कारण कितना समय खराब होता है तो किसलिए गुस्सा करूँ।

देखो, हम बात स्पष्ट कर रहे हैं। रोटी में किरकिर होती है तो कैसा लगता है? रोटी बनाने के लिए अनाज का उपयोग किया जाता है। अनाज में एक पत्थर पिस जाता है तो किरकिर होने लगती है। अनाज का भाग ज्यादा रहता है फिर भी आटे में किरकिर हो जाती है। अनाज के साथ छोटा-सा पत्थर पिसने से किरकिर हो जाती है। किरकिर होने से सारी रोटी का मजा ही बिगड़ जाता है। उसी प्रकार क्रोध थोड़ी देर के लिए होता है, पर सारे जीवन का मजा बिगाड़ देता है। क्रोध करने वाले के प्रति दूसरे लोग मन में सहमे रहते हैं, खुलकर उनके सामने आते नहीं कि पता नहीं कब उसे क्रोध आ जाए। थोड़े-थोड़े सहमे हुए रहते हैं, स्पष्ट नहीं हो पाते हैं। इससे क्रोध करने वाले को

झुँझलाहट होती है कि लोग मुझसे दूर क्यों भागते हैं! मेरे पास क्यों नहीं रुकते! कोई मुझसे खुलकर बात क्यों नहीं करता! जब मैं आता हूँ तो क्यों लोग मुझे अलग निगाह से देखते हैं। मेरे से सहमे क्यों रहते हैं। दोनों तरफ एक खिंचाव है। वह खिंचाव ही किरकिर पैदा कर रहा है। किरकिर पैदा होने से न उसका हृदय खुल पाता है और न दूसरों का। परिणामस्वरूप दोनों में मित्रता बन नहीं पाती है।

भगवन् ने स्पष्ट किया कि क्रोध से प्रीति का नाश होता है। क्रोध से प्रेम का नाश होता है। हम भीतर से विचार करें, हमारे भीतर वात्सल्य का प्रवाह है। वह प्रवाह हमें जीवन में प्रसन्नता देने वाला है। आप क्रोधी के जीवन को देखना। उसमें प्रसन्नता कम ही मिलेगी। जब देखो तब उसका थोबड़ा लटका हुआ मिलेगा, चढ़ा हुआ मिलेगा। उसकी प्रसन्नता कहाँ गायब हो गई? उसके भीतर की प्रसन्नता क्रोध के ताप से सूख गई। उसके चेहरे पर सदाबहार मुस्कुराहट शायद ही देखने को मिले। ऐसा आप भी कभी अनुभव करते होंगे! जिन लोगों के बीच में रहते हैं हमें उन सबका पता होता है कि कौन कितना क्रोधी है। कुछ लोग सदाबहार रहते हैं।

यह प्रश्न किसने किया था, किससे किया था?

एक संयत ने भगवान महावीर से प्रश्न किया था।

भगवान महावीर का स्पष्ट निर्देश है– क्रोध आ जाए तो उसकी निंदा एवं भर्त्सना करनी चाहिए और हमेशा के लिए उसका रास्ता बंद कर देना चाहिए।

क्रोध, संयम का विघात करने वाला होता है, संयम की घात करने वाला होता है। क्रोध से उसका चारित्र निर्मल नहीं रह पाता, इसलिए क्रोध को टालने का प्रयत्न हो अन्यथा वही आगे जाकर भारी क्रोध का रूप ले लेता है। क्रोध जिसके जीवन में होगा, वह नीचे जाएगा। साधु है तो वह भी अपने स्थान से नीचे जाएगा। इसलिए क्रोध से घृणा करना है। क्रोध नहीं करना है। आ जाए तो उसे निष्फल करना है।

बात चल रही थी कि उसे निष्फल कैसे किया जाए। एक बहिन ने निष्फल करने के बारे में पूछा था। इसका सबसे पहला व सही तरीका है, उस स्थान को छोड़ दो। ऊपर की मंजिल पर हो तो नीचे की मंजिल पर चले जाओ।

यदि घर में गुस्सा आया तो थोड़ी देर के लिए बाहर चले जाओ। बाहर बगीचे में बैठ जाओ। थोड़ी देर के लिए उस जगह को छोड़ दो। दूसरी बात, थोड़ी देर के लिए मौन रह जाओ। किसी से बोलना नहीं। उसका उत्तर नहीं देना। तीसरी बात, एक यौगिक का फॉर्मूला है- होंठ बंद रखना, दाँत खुले और जीभ को तालु से लगा देना। कहते हैं कि उससे गुस्सा शांत हो जाएगा। हमारे कंठ में एक ग्रंथि होती है जिससे लार का स्राव होता है, थूक का स्राव होता है। तीव्र क्रोध आने पर मुँह सूखने लगता है। जो ग्रंथि लार और थूक को पैदा करती है, जो रस प्रवाहित करती है उससे स्राव कम हो जाता है, बंद हो जाता है। कोई व्यक्ति यदि बार-बार क्रोध करेगा तो ग्रंथि डिस्टर्ब हो जाएगी और उससे बराबर स्राव नहीं होगा, जिससे उसके चित्त में, उसके जीवन में, उसके मन में भी प्रसन्नता व्याप्त नहीं हो पाएगी।

बताई गई तीन बातों के द्वारा क्रोध को निष्फल किया जा सकता है। कोई ऐसा प्रायश्चित्त रखा जाए जो आपके लिए कठिन हो। जिसका पालन करने पर क्रोध कमजोर पड़े। प्रायश्चित्त या दंड वह होता है जो हमारे जीवन को सुधार सके। दंड छोटा या बड़ा कोई बड़ी बात नहीं है। छोटा दंड भी व्यक्ति के लिए भारी बन जाता है।

एक सम्राट ने तीन व्यक्तियों को दंडित किया। तीनों का समान अपराध था। एक व्यक्ति को कहा, तुम और यह काम! मैं क्या सुन रहा हूँ! इतना-सा सुनकर ही उस व्यक्ति की स्थिति मरणतुल्य हो गई। उसकी आँखें नीचे हो गईं। मुँह और गरदन झुक गए। वह वहाँ से निकल गया। दूसरे व्यक्ति के लिए कहा कि मेरे नगर से तुझे निष्कासित किया जा रहा है। तीसरे व्यक्ति को मृत्युदंड दिया। मृत्युदंड वाले को गधे पर बिठाकर नगर में घुमाया जा रहा था। उसके शरीर पर सिंदूर लगा हुआ था और गले में कनेर की माला डाली हुई थी। लोग उसे वध स्थान पर ले जा रहे थे। उसी समय एक व्यक्ति ने सम्राट से पूछा कि तीनों को तीन प्रकार का दंड क्यों दिया गया। सम्राट ने जवाब नहीं दिया। पूछने वाले ने हिम्मत करके पुनः पूछा तो सम्राट ने कहा कि तीनों को मृत्युदंड ही दिया है। पूछने वाले व्यक्ति को विस्मय हुआ कि सम्राट क्या बोल रहे हैं। उसकी मुद्रा देख सम्राट ने कहा कि अगर तुमको विश्वास नहीं हो रहा है तो तुम पहले व दूसरे को भी जाकर चेक कर सकते हो।

पहला व्यक्ति घर गया और फाँसी लगाकर मर गया। दूसरे ने नगर से बाहर पेड़ से नीचे कूदकर जान दे दी। छोटा दंड ही किसी के लिए बहुत बड़ा हो जाता है कि मेरे जीवन में दाग लग गया। दंड वह होता है जिससे सुधार हो सके।

सेठ को एक बार क्रोध आ गया। वह उपवास करता नहीं था। ऐसे में भर तपती गर्मी के समय में उपवास करना पड़ गया। कैसे ही करके दिन निकल गया, रात भी निकल गई। उसने गाँठ बाँध ली कि किसी भी बात पर गुस्सा नहीं करेगा। उसके परिवार में एक प्रसंग आया कि उसके छोटे भाई के घर में एक कार्यक्रम था। छोटे भाई के लड़के ने कहा कि पापा, बड़े पापा से कोई लेना-देना नहीं। आमंत्रण पत्रिका में उनका नाम नहीं देना। छोटे भाई ने अपने बेटे के कहे अनुसार आमंत्रण पत्रिका छपवा दी। लड़के ने जैसा सोचा, वैसी आमंत्रण पत्रिका छपवा दी। किसी को भी नहीं पूछा। उसमें बड़ों का नाम भी नहीं दिया। बड़े पिता का नाम भी नहीं दिया। पत्रिका इधर-उधर वितरित हो गई। किसी के पास पहुँची तो उस व्यक्ति ने सेठ से आकर कहा कि देखो ये आपके घर में पत्रिका छपी और आपका नाम नहीं है। सेठ ने कहा, कोई बात नहीं। कोई फर्क नहीं पड़ता। उस व्यक्ति ने कहा कि आपके घर न्योता आया या नहीं हमारे घर तो न्योता आया है। पूरे गाँव में न्योता गया है। सेठ ने कहा, घर में न्योते की कहाँ जरूरत है।

भोजन के कार्यक्रम के समय सेठ ने सोचा कि वह न्योता देना भले भूल गया हो पर मुझे अपने कर्तव्य का निर्वाह करना है। मुझे जग हँसाई नहीं करानी है। ऐसा सोचकर सेठ बिना न्योता मिले ही वहाँ जाकर खड़ा हो गया। भोजन के समय वह भी जाकर कुर्सी पर बैठ गया। वह कुर्सी पर बैठा ही था कि भाई का बेटा आया और उसका हाथ पकड़कर उठा दिया। उससे सेठ के बेटे के मन में बड़ा रोष आया कि ये क्या मतलब है। समाज के बीच में पिता जी की इस प्रकार तौहीन हो गयी। उसने पिता से कहा- पापा चलो, ऐसी फजीहत कराने से क्या मतलब! सेठ ने कहा कि गलत कुछ हुआ ही नहीं। पहले मेहमानों को जीमाणा चाहिए। मैंने गलती की। पहले मेहमानों को फिर उसके बाद घर वालों को जीमणा चाहिए था। जब मेहमान जीम गये तब सेठ जीमने के लिए बैठा। उस समय भी भाई के लड़के ने उसके सामने से थाली खींच ली। फिर भी उसने शांति रखी। यह देख छोटे भाई के लड़के ने बड़े पिताजी के पैरों

में पड़कर कहा– मैं तो आपको गुस्सा दिलाने के लिए ये सब कर रहा था। इसलिए मैंने आपका नाम पत्रिका में नहीं छपवाया और आपके घर न्योता नहीं भेजा। आपको हाथ पकड़कर उठा दिया। तो सेठ ने जवाब दिया कि मैंने प्रतिज्ञा ले रखी है कि कभी भी गुस्सा नहीं करना है। बड़े पिताजी के शांत स्वभाव को देखकर उस लड़के के मन में बहुत आश्चर्य हुआ।

एक व्यक्ति हाथ में रोटियाँ लेकर कुत्ते को खिला रहा था। कुत्ते ने खानी शुरू कर दी। एक खाई, दो खाई। तीसरी रोटी खाने से पहले ही उसने उसके शरीर पर लाठी बरसा दी। जिसने रोटियाँ खिलाईं उसने ही लाठी बरसा दी। दूसरे दिन वही कुत्ता है, वही व्यक्ति है, हाथ में रोटियाँ हैं, और एक लाठी भी। उसने रोटियाँ डालीं। कुत्ता देख रहा है। जीभ लपलपा रहा है। कुत्ते के मुँह से लार टपक रही है। कुत्ता एक बार व्यक्ति को देख रहा है, दूसरी बार रोटियों को देख रहा है। कुत्ता भूखा है, पर डंडे की मार से डर रहा है। रोटियों को देखकर भी खाने की हिम्मत नहीं है। उसको डंडे की मार याद है इसलिए दूर ही खड़ा है, किंतु हमको क्रोध की मार याद नहीं है। एक बार कर लिया, दो बार कर लिया, तीन बार कर लिया। पता नहीं कितनी बार करेंगे। बाद में मन पश्चाताप से भर जाता है कि गुस्सा नहीं करता तो ठीक होता। ये मगरमच्छ के आँसू हैं। थोड़ी देर में वापस ही वैसा बन जाता है। कुत्ते को चोट लगी तो वह सावधान हो गया, वैसी ही चोट हमारे भीतर लगे तो क्या हम सावधान नहीं हो सकते हैं!

उस सेठ को चोट लगी कि उपवास करना पड़ गया। उनके लिए उपवास करना मासखमण जैसा भारी पड़ रहा है। अब यदि वह क्रोध करे तो उसे दूसरा मासखमण करना पड़ेगा। इससे क्रोध और हावी होगा। क्योंकि उसका स्वभाव चण्डालिक है। कहा भी जाता है कि क्रोध बड़ा चांडाल है। क्रोध आने से व्यक्ति स्वयं का नाश कर लेता है। इसलिए व्यक्ति को कभी क्रोध नहीं करना चाहिए।

**ओ क्रोध बड़ो चांडाल कोई मत करजो जी**

क्रोध बड़ा चांडाल हैं। पुराने जमाने में चांडाल को छुआ नहीं करते थे। घर में आने नहीं देते थे। उससे छू जाने पर घर में जाने से पहले नहाना पड़ता था। खाने के पहले नहाना पड़ता था। पुराने जमाने की बात बता रहा हूँ। अब

तो गले लगाते रहते हैं क्रोध को भी। सामान्य लोगों की क्या बात बताएं, बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि भी कभी-कभी भटक जाते हैं।

विश्वामित्र को भयंकर क्रोध आता था। थोड़ा-सा भी कुछ भिन्न बने तो उन्हें क्रोध आ जाता था। क्रोध में वह किसी को भी श्राप दे देते थे। विश्वामित्र को राजर्षि कहा जाता था। ऋषियों की सभा बैठी हुई थी। विश्वामित्र ने सोचा- मैं तो बहुत तपस्वी हूँ। मैंने बहुत तपस्या की है, फिर भी मुझे ब्रह्मर्षि क्यों नहीं कह रहे हैं, राजर्षि क्यों कह रहे हैं। वशिष्ठ जी को लोग ब्रह्मर्षि कह रहे हैं और मुझे कह रहे हैं राजर्षि। उनके मन में झल्लाहट हुई कि मुझे ब्रह्मर्षि क्यों नहीं कह रहे, मेरे जितनी तपस्या तो किसी ने की ही नहीं है। वशिष्ठ मेरे जितनी तपस्या भी नहीं करता है। वह गुलछर्रे उड़ाता है, पर उसको लोग ब्रह्मर्षि कहते हैं। इतनी तपस्या करने के बाद कोई मुझे ब्रह्मर्षि नहीं कहता है। विश्वामित्र के दिमाग में एक बात आई कि जब तक वशिष्ठ रहेगा, तब तक लोग मुझे ब्रह्मर्षि नहीं कहेंगे। उन्होंने सोचा कि वशिष्ठ को रास्ते से हटा दिया जाए। इसके लिए मुझे कुछ करना होगा।

एक रात्रि को वे अपने आश्रम से कटार लेकर निकल पड़े और उनके आश्रम में पहुँच गए। विश्वामित्र ने मन-ही-मन में सोचा कि आज वह जिंदा नहीं रहेगा। वह खत्म होगा। उसके बाद ऋषियों को मुझे ब्रह्मर्षि कहना ही पड़ेगा। फिर किसमें ताकत है जो मुझे ब्रह्मर्षि नहीं कहेगा।

विश्वामित्र गए तो देखा कि वशिष्ठ जी अपने शिष्यों को पढ़ा रहे हैं, शिक्षा दे रहे हैं, अध्ययन करा रहे हैं। विश्वामित्र एक पेड़ के पीछे छिप गए। उस समय वशिष्ठ जी विश्वामित्र के विषय में बोल रहे थे। अपने शिष्यों को बता रहे थे कि वह महान ऋषि है। वशिष्ठ आख्यान देकर शिष्यों को समझा रहे थे कि विश्वामित्र ने इस युग में बहुत तपस्या की। उनके जितनी तपस्या करने वाला दूसरा ऋषि मिलना मुश्किल है। वह तपों में सूर्य है। वह इस तरह की बात अपने शिष्यों को समझा रहे थे।

यह सुनकर विश्वामित्र विचार करने लगे कि जिनके प्रति मैं द्वेष की भावना लेकर चल रहा हूँ वे वशिष्ठ जी मेरे बारे में कितनी अच्छी बात कह रहे हैं। मैं कहाँ और ये कहाँ! मैं ब्रह्मर्षि बनना चाहता हूँ। क्या मैं इससे ब्रह्मर्षि बन पाऊँगा! उन्होंने सोचा, विचार किया। मस्तिष्क थोड़ा शांत हुआ तो उनके

भीतर एक विचार पैदा हुआ कि बिना क्षमा के ब्रह्मर्षि कैसे हुआ जा सकता है। ब्रह्मर्षि बनने के लिए क्षमा बहुत जरूरी है। कोई किसी भी प्रकार का अपराध कर दे भीतर क्रोध उठना नहीं चाहिए। भीतर लहर पैदा नहीं होनी चाहिए। कोई अपराध कर दे, कितने बड़े नुकसान की बात कर दे, पर क्रोध नहीं आना चाहिए।

एक कंपनी में काम करने वाले मैनेजर से साठ लाख रुपये का नुकसान हो गया। लोगों ने सोचा कि अब तो वह हटा ही दिया जाएगा, पर मालिक ने न तो उस पर क्रोध किया और न ही उसको कंपनी से निकाला। उसने कहा कि मेरे यहाँ पर इतना काम किया है, वह कंपनी को ऊँचाई तक लाया है। इतने शिक्षित आदमी को हटा दूँ, मैं इतना पागल नहीं हूँ। एक अच्छे, समझदार आदमी को निकालने से नुकसान मेरा ही होगा। इसी की वजह से मेरा व्यापार आगे बढ़ा है। उस व्यक्ति को मेरे व्यापार के बारे में पता है। उसको निकालकर मैं दूसरा कर्मचारी लाऊँगा तो उसे मुझे वापस शून्य से लेकर चलना पड़ेगा। उसने बदनीयत से कंपनी को नुकसान नहीं पहुँचाया। घाटा-मुनाफा होता है। सौदों में कभी घाटा कभी मुनाफा हो जाता है।

उसने कहा कि कोई बात नहीं है, व्यापार में यह सब चलता रहता है। उसने क्रोध भी नहीं किया। ऐसा नहीं कहा कि अरे तुमने यह क्या किया। ऐसा कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी। ऐसा तब होगा, जब भीतर धैर्य होगा। जब क्रोध पर विजय प्राप्त कर लेंगे। ईंट के बदले पत्थर फेंकना धैर्य नहीं है। यह क्रोध को और भड़काने वाला है। तत्काल जवाब नहीं देने से, विचार करने से, धैर्य रखने से फिर वैसी घटना नहीं घटेगी। दूसरे दिन बात वैसी नहीं रहेगी। नरम होने लगेगी। थोड़ी देर विराम कर, धैर्य धारण कर आप क्रोध को जीत सकते हो। यदि धैर्य नहीं है और तत्काल आप उत्तर देने के लिए तत्पर हैं या दे रहे हैं या देते रहेंगे तो क्रोध पर विजय प्राप्त करने में समर्थ नहीं होंगे।

प्रायश्चित्त का परिणाम हुआ कि एक उपवास करने के बाद उसके जीवन से क्रोध हट गया। उसने उपवास की कठिनाई को जान लिया। उसने जान लिया कि यदि वापस क्रोध आएगा फिर मुझे उपवास करना पड़ेगा। जैसे कुत्ता डंडा पड़ने के डर से भूख होने पर भी रोटी के लिए तरस रहा है, रोटी को मुँह नहीं लगा रहा है, वैसे ही सेठ वापस प्रायश्चित्त के रास्ते पर नहीं जाना चाह

रहा है। वह संभल गया। इसी प्रकार हमें कभी क्रोध के मार्ग पर नहीं जाना चाहिए। जिसे क्रोध आ रहा हो वह गुरु के बताए हुए मार्ग पर चलकर क्रोध को शांत कर सकता है।

कुम्हार के मिच्छा मि दुक्कडं की कहानी मालूम है आप लोगों को! गुरुजी के साथ एक नवदीक्षित या चंचल साधु था। वहाँ कुम्हार के घड़े बने हुए रखे थे। उस साधु ने कंकड़ उठाया और घड़े पर मारा। कंकड़ लगने से घड़ा फूट गया। उसमें छेद हो गया। शिष्य बोला मिच्छा मि दुक्कड़ं। फिर उठाया कंकड़ और घड़े पर दे मारा और फिर बोला मिच्छा मि दुक्कड़ं। ऐसे उसने कितने घड़ों पर कंकड़ मार दिया। छेद कर दिया। प्रत्येक बार कंकड़ मारने के बाद मिच्छा मि दुक्कड़ं कहता। कुम्हार देखता रहा कि ये भाई घड़ा फोड़ता जा रहा है और मिच्छा मि दुक्कड़ं बोलता जा रहा है। कुम्हार धीरे से उठा और साधु के कान में कंकड़ डालकर मसलने लगा।

साधु ने कहा कि क्या कर रहे हो? कुम्हार ने कहा मिच्छा मि दुक्कड़ं। फिर कान को मसलता है और मिच्छा मि दुक्कड़ं बोलता है। हमारी आदत क्या है? हमारी आदत क्रोध पर विजय प्राप्त करना है या क्रोध में झुलसते जाना है? भय हमको चंचल बनाएगा। क्रोध से मुकाबला करो और बोलो कि आओ, तुम आ सकते हो, लेकिन मैं तुम्हें अपने भीतर नहीं आने दूंगा। दूसरी बात ध्यान में रखना कि क्रोध सावधान अवस्था में नहीं आता है। जैसे ही हम असावधान होते हैं वैसे ही क्रोध आता है। यदि हम सावधान बने रहे तो क्रोध हमारे भीतर आ नहीं पाएगा।

किसी के दरवाजे पर एक कुत्ता खड़ा हो और घर मालिक सावधान खड़ा हो तो कुत्ता घुसेगा नहीं। मालिक इधर-उधर हुआ नहीं कि कुत्ता अंदर चला जाएगा। उसी तरह यदि हम सावधान हैं तो क्रोध नहीं आ पाएगा। सावधानी हटेगी कि दुर्घटना घटेगी। आप देख लो कुत्ते को।

अरावली क्षेत्र में गणेशाचार्य का विचरण चल रहा था। वहाँ सिंह नजर आया तो संतों ने कहा, गुरुदेव! सिंह। आचार्यश्री ने कहा, सब मेरे पीछे लाइन लगा लो। आचार्य गुरुदेव ने सिंह से आँख मिलाई तो वह साइड से निकल गया। ऐसा कहा जाता है कि सिंह आँख मिलाने वालों पर आक्रमण नहीं करता। कुत्ते से आँख नहीं मिलानी चाहिए। कुत्ते से आँख मिलाने से वह

ज्यादा भौंकेगा और आक्रमण भी कर सकता है। इसलिए कभी भी कुत्ते से आँख नहीं मिलानी। उसके सामने भी नहीं देखना चाहिए। कुत्ते से आँख मिलाई तो वह खाएगा नहीं पर भौंकेगा जरूर। सिंह से आँख मिलाने से सिंह आक्रमण नहीं करता है।

शेर सुनना अच्छा लगता है, देखने में अच्छा लगता है, किंतु जब शेर से आमना-सामना होता है तब आगे गीला और पीछे पीला होता है। एक शेर अर्थात् सिंह और दूसरा शेर यानी शायरी। क्रोध के प्रति सावधान रहें। क्रोध से आपका ध्यान चूका तो क्रोध आप पर हावी हो जाएगा।

चार बातें मैंने बताई हैं। पहली बात, स्थान को छोड़ दो। दूसरी बात, मौन रहो। तीसरी बात, यौगिक फॉर्मूला और चौथी बात प्रायश्चित्त। किसी कारण से एकाध बार क्रोध आ जाए तो बात अलग है पर सावधान रहेंगे तो क्रोध आ नहीं पाएगा। क्रोध को घृणा की दृष्टि से देखेंगे तो वह दूर-दूर रहेगा। इतना ही कहते हुए विराम।

27 जुलाई, 2021

# 5

# हम कहाँ खड़े हैं

**पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिनतणो रे**

आनंदघन जी भगवान से स्तुति करते हुए कहते हैं कि भगवन् आपने जिस मार्ग से आत्मिक गुणों को प्राप्त किया है, मैं उस मार्ग की पहचान कर रहा हूँ, देख रहा हूँ, मुझे लगता है कि जिस राग-द्वेष, क्रोधादि कषायों को आपने जीता, जो आपसे पराधीन हुए वे मेरे पर हावी हो गए हैं। विजित हो गए हैं, जिससे मुझे अपने आपको पुरुष कहते हुए लज्जा हो रही है।

पुरुष उसको कहते हैं, जो पुरुषार्थ करता है। जिसमें सामर्थ्य होता है, वह किसी के सामने कभी घुटने नहीं टेकता। कभी हार नहीं मानता। संघर्ष करता है। उन पर विजय प्राप्त करता है। उसमें हिम्मत होती है, किंतु मैंने तो घुटने टेक दिए। मैं परास्त हो गया।

दूसरी गाथा में कहा गया है कि-

**चरम नयणे करी मारग जोवतां रे...**

आज जिन आँखों से हम देख रहे हैं, उन आँखों से ही धोखा खा रहे हैं। सारा जमाना धोखा खा रहा है। सारी दुनिया धोखा खा रही है। इन चमड़ी की आँखों से सत्य को, परमात्मा के पथ को नहीं देखा जाएगा। उसको देखने के लिए दिव्य चक्षुओं की आवश्यकता होगी। दिव्य नेत्र खुलेंगे तो उस मार्ग का अनुभव हो पाएगा।

वे नयन हैं, दिव्य विचार। 'नयणे ते दिव्य विचार'। वे दिव्य नेत्र हैं। उन्हीं से आपने उस मार्ग को प्राप्त किया। वही सुपथ है। उसी पथ से परमात्म तत्व प्राप्त हो सकता है। तीसरी गाथा में कहा गया कि-

**'पुरुष परम्पर अनुभव, जोवतां रे, अंधोअंध पुलाय...'**

जब इन पंक्तियों पर ध्यान जाता है तो लगता है कि आनंदघन जी के सामने भी बहुत सारी समस्याएँ थीं। उनके सामने भी बहुत सारी कठिनाइयाँ थीं। पता नहीं क्या-क्या समस्याएँ थीं। समस्याएँ आज भी कम नहीं हैं। दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही हैं। बढ़ती ही रहेंगी। उनके सामने एक समस्या थी अलग-अलग पंथों की। भगवान महावीर के समय में भी अनेक प्रवर्तक हुए थे। वे मान रहे थे कि वे ही सर्वज्ञ हैं। सर्वज्ञ को सर्वज्ञ होने का दावा नहीं करना पड़ता। जो दावा करते थे वे अपनी-अपनी कल्पना करते थे।

जो सर्वज्ञ नहीं है वह कोई कल्पना करे और लोग उसी की परंपरा का अनुगमन करते चले जाएं तो स्थिति 'अंधोअंध पुलाय' वाली होगी। 'अंधोअंध पुलाय' यानी एक अंधा व्यक्ति आगे चल रहा है। उसी के पीछे दूसरे अंधे एक-दूसरे की अंगुली पकड़कर चल रहे हैं। पहले अंधे के सामने गड्ढा आया, खाई आई, वह अंधा उस खाई में गिर गया फिर उसके पीछे चलने वाले की क्या दशा होगी? अंगुली पकड़कर चलने वाले कौन-से गड्ढे में गिरेंगे, किस स्थिति में रहेंगे, या किस खाई में गिरेंगे कुछ कहा नहीं जा सकता। आजकल भी देखा-देखी का जमाना चल रहा है। हर कोई देखा-देखी कर रहा है। लोग भेड़ चाल चल रहे हैं। जब एक भेड़ आगे चलती है तो सभी भेड़ें उसके पीछे-पीछे चलती हैं। एक भेड़ यदि कुएं में गिरेगी तो सारी भेड़ें उसके पीछे कुएं में गिर जाएंगी। पीछे वाली भेड़ों को पता है कि आगे वाली भेड़ें कुएं में गिर रही हैं फिर भी वे उनके पीछे-पीछे आती हैं और कुएं में गिर जाती हैं।

यह बात कुछ-कुछ धार्मिक क्षेत्र में घटित होती है। व्यावहारिक क्षेत्र में ऐसी बातों का घटित होना कोई बड़ी बात नहीं है। वहाँ तो ये घटती ही रहती हैं, धार्मिक क्षेत्र में जहाँ आत्मबोध गौण होता है, वहाँ भी ऐसी घटनाएं घट जाती हैं क्योंकि वहाँ परंपरा मुख्य हो जाती है।

लोग सत्य से दूर हो सकते हैं किंतु परंपरा को छोड़ना दुष्कर है, क्योंकि परंपरा उनकी अपनी है। वे कहते हैं कि हम परंपरा से बँधे हुए हैं। परंपरा से उनका महत्त्व बना हुआ है। जितना गहरा संबंध परंपरा से बना हुआ है, उतना गहरा संबंध सत्य के साथ नहीं बना है। सत्य सामने आकर भी खड़ा हो जाए तो भी कहेंगे कि हम तुम्हें नहीं पहचानते। हमारी परंपरा का चश्मा यदि

तुम्हें सर्टिफिकेट दे तो स्वीकार कर सकते हैं। यदि सर्टिफिकेट नहीं मिलता है तो स्वीकार नहीं कर सकते। लंबे समय से ये स्थितियाँ चलती रही हैं।

उसके आगे आनंदघन जी ने कहा कि आगम के आधार पर विचार करें तो कहीं भी चरण धरने की जगह नहीं है। पग रखने की जगह नहीं है। यह हालत आज भी है। आगम से वस्तु का विचार करें तो लगता है कि कहीं जगह नहीं है। सारी जगह भर चुकी है। बाह्य वातावरण से जगह भर चुकी है। चरण रखें तो रखें कहाँ! इन पर हमें समीक्षा करनी पड़ेगी।

आगम के आधार पर विचार करें तो बड़ी बारीकी से चलना पड़ेगा। बहुत सूक्ष्म दृष्टिकोण से काम करना पड़ेगा। स्थूल दृष्टिकोण से काम नहीं चलेगा। अपनी प्रज्ञा को पैना करना होगा। प्रज्ञा पैनी नहीं होगी तो वह आगम के अंदर घुस नहीं पाएगी, क्योंकि परंपरानुगत बातें हमारे भीतर इतनी गहरी हो गई हैं कि बुद्धि को उससे बाहर ला पाना बहुत कठिन है।

आगम से विचार करेंगे तो ज्ञान होगा कि हमने ऐसी बहुत बातों को पकड़ा है, जिनका आगम से कोई लेना-देना नहीं। मैंने कुछ दिन पहले ही कहा था कि हमने तपस्या को जितना मजबूती से पकड़ा है, उतना नैतिकता-प्रामाणिकता आदि दूसरी बातों को महत्व नहीं दे रहे हैं। एक प्रकार से उन्हें गौण कर दिया गया। मैंने यह भी कहा था कि आज चातुर्मास का मापदंड त्याग, तपस्या हो गया है। यदि 100-150 मासखमण हो गए, 1000-2000 तेले हो गए तो मान लिया जाता है कि हमारा चातुर्मास सफल हो गया। किंतु तपस्या करने के बावजूद हमारे भीतर आध्यात्मिक ऊर्जा कितनी प्रविष्ट हुई? हमारे भीतर कितना संतोष हुआ? हमारे भीतर कितनी तृप्ति आई? इन सब बातों की समीक्षा कौन करेगा? इन सबका अनुभव कौन करेगा?

हम इन पर कितना विचार करते हैं, यह हमको विचार करना है। मैंने तेला किया है। उसके बाद मुझे क्या अनुभव हुआ। यदि मैं मासखमण की ओर बढ़ रहा हूँ और 28वें दिन व्याख्यान में मेरा नाम नहीं लिया गया तो उसकी परिणति क्या होगी? सबका नाम लिया, पर मेरा नाम नहीं लिया। मेरा नाम नहीं लेने के पीछे कोई-न-कोई राज होगा? ऐसी स्थिति में मन दुःखी तो नहीं हो जाएगा? मन में बुरा तो नहीं लगेगा?

इस पर बहुत बारीकी से विचार करना है, क्योंकि हम धर्म क्षेत्र में बैठे

हैं। धर्म को धारण करके बैठे हैं। यदि नाम नहीं लेने से ही दु:ख होता है, खिन्नता पैदा होती है, तो धर्म कहाँ? हमने किसके लिए तपस्या की? क्या परिणाम हो गया? हम कौन-से मार्ग पर चल रहे हैं और कौन-से मार्ग को हमने स्वीकार कर लिया? आगम के आधार पर विचार करने पर ये सारी बातें नदारद हो जाएंगी।

हम सिर पर रखे हुए अंगारे को देख रहे हैं। भगवान के कानों में कीलें ठोकी हुई हैं, उसको हम समझ रहे हैं, जान रहे हैं। वह कितना भयंकर उपसर्ग है, कितना दु:ख हुआ, हम मान लेते हैं, किंतु उन्हें कितना दु:ख हुआ, वह नहीं जानते हैं। हम कल्पना करते हैं और बोल देते हैं कि उन्हें कितना कष्ट हुआ होगा। एक रात में बीस-बीस उपसर्ग सहे, किंतु भगवान महावीर ने क्या प्रतिकार किया? प्रसंग पर विचार करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि उन्होंने शरीर से संबंध ही हटा लिया था। अत: दैहिक पीड़ा उन्हें परेशान नहीं कर पाई। कोई हमारे मन के विपरीत कोई बात बोल दे तो हम कितना चुप रह पाते हैं?

परिदृश्य बहुत बदल गया है। हम मूल मत को गौण करते जा रहे हैं। मूल समता भाव की आराधना, वीतरागता को साधने के लिए हम क्या कर रहे हैं? हम बाह्य क्रिया को बहुत महत्त्व देते हैं। क्या आंतरिक जगत में हम आगे बढ़ रहे हैं? यदि आंतरिक जगत में हमारी पवित्रता नहीं बढ़ रही है, वहाँ राग-द्वेष की उलझनें बनी हुई हैं, घने कोहरे की तरह राग-द्वेष छाया हुआ है तो उसे देख पा रहे हैं या नहीं? शायद हकीकत हमें कुछ नजर नहीं आती कि हमारे साथ क्या हो रहा है और हम क्या कर रहे हैं। क्या हम जो कर रहे हैं, वह सही हो रहा है? राग-द्वेष का घना कोहरा छाया हुआ है तो हमें कुछ नजर नहीं आएगा। उस समय हमारा आचरण कैसा होना चाहिए? हमें उस समय यह सोचना चाहिए कि सामने वाले के कहने मात्र से हम वैसे नहीं हो गए। किंतु हमने एक पक्ष पर ज्यादा जोर दिया और दूसरे पक्ष को गौण कर दिया। उस स्थिति में एक पहिया ट्रेक्टर का हो गया और दूसरा साइकिल का। उससे मंजिल कैसे मिलेगी।

मैं ये बात नहीं कह रहा हूँ कि आचरण नहीं करना चाहिए, तपस्या नहीं करनी चाहिए, नहीं तो आप बोल दोगे कि म.सा. ने कहा कि तपस्या नहीं करनी है, इसलिए आज से हम सामायिक नहीं करेंगे। तपस्या भी नहीं करेंगे।

तपस्या करना छोड़ देंगे। हम जितना आचरण कर रहे हैं हमारे विचार उतने ही दिव्य होने चाहिए। हमारा आचरण हमें प्रसन्नता देने वाला होना चाहिए। हमें तौलना है कि वस्तुत: हमारे विचार राग-द्वेष पैदा कर रहे हैं, क्रोध, माया में जा रहे हैं या उसमें कुछ भी असर नहीं हो रहा है। वहाँ उनका कोई प्रभाव नहीं रहा। स्थूलभद्र मुनिराज चातुर्मास करने के लिए कहाँ पधारे थे? क्या उन्होंने जिंदगी भर में एक ही चातुर्मास किया? किसी एक ही चातुर्मास का नाम क्यों आया? क्या उन्होंने वहाँ चार माह तपस्या की थी? हमारे सामने एक चातुर्मास का नाम है। स्थूलभद्र प्रतिदिन भोजन करते थे। ऐसा नहीं कि चार महीने तपस्या करके बैठ गए हों। उस जमाने में तपस्या करने वाले कम नहीं थे। चार-चार महीने तपस्या करने वाले स्थूलभद्र मुनि के गुरुभ्राता मुनिराज थे। मतलब वे गुरुभ्राता जो चातुर्मास कर रहे थे, चारों महीने उसी रूप में साधनारत रहे और उसी रूप में ध्यान-साधना करते रहे। वे चातुर्मास करके आते हैं। गुरु महाराज कहते हैं, दुष्कर-दुष्कर, तुमने दुष्कर कष्ट सहकर चातुर्मास संपन्न किया है। महीने भर आराधना की है। स्थूलभद्र चातुर्मास करके आए। गुरु महाराज ने कहा, महादुष्कर, महादुष्कर अर्थात् महान दुष्कर तप किया है।

हम कहानियों में पढ़ते हैं कि एक मुनिराज के मन में खिन्नता पैदा हो गई कि गुरु महाराज भेद कर रहे हैं। मैंने इतनी तपस्या की। सिंह की गुफा में जाकर चातुर्मास किया, जंगल की गुफा में जाकर तपस्या की। ऐसी दुष्कर साधना हमने की, दुष्कर तप किया है और स्थूलभद्र ने मौज मस्ती की। बढ़िया से बढ़िया खाना खाया। कितना मजा किया। फिर भी गुरुदेव उसके लिए महादुष्कर कह रहे हैं। वह गुरु के सामने कुछ बोल नहीं पाया, किंतु मन में विचार किया कि क्या यही है महादुष्कर! यदि वही महादुष्कर तप है तो मैं अगला चातुर्मास यहीं करूँ। अगली बार चातुर्मास कहाँ करूँ?

उसने गुरु से निवेदन किया कि गुरु महाराज आपकी आज्ञा हो तो मैं कोशा गणिका की रंगशाला में चातुर्मास करना चाहता हूँ। गुरु ने संकेत दिया कि तुम्हारा वहाँ जाना और चातुर्मास करना प्रशस्त नहीं होगा। मुनि बोला- स्थूलभद्र के लिए महादुष्कर हो सकता है, हमारे लिए वैसा क्यों नहीं हो सकता?

उस मुनि ने चार माह तक घोर तप-साधना की होगी किंतु ईर्ष्या-द्वेष

को जीत नहीं पाया। अपनी प्रशंसा की प्यास बुझा नहीं पाया। ऐसी स्थिति में कठोर तपस्या से क्या मतलब निकला? क्या आत्मगुण विकसित हो पाए? इस प्रसंग में समझ लें कि दुष्कर क्या है एवं महादुष्कर क्या है।

हमें विचार करने की आवश्यकता है। हम केवल सुनें नहीं। सुनना हमारा कर्तव्य होना चाहिए पर जो सुना है उस दर्पण में अपने चेहरे को देखें। हम इतने वर्षों से पौषध कर रहे हैं, सामायिक कर रहे हैं, हमारे मन का मैल साफ हुआ या नहीं? एक-दूसरे की बढ़ती प्रवृत्ति को देखकर हम ईर्ष्या करते हैं। हम सोचते हैं कि ये मेरे से आगे जा रहा है। मेरे से आगे जाएगा तो बड़ा आदमी बन जाएगा। मैं उससे नीचे रह जाऊँगा। इसलिए हम दूसरों को नीचा दिखाने के लिए ईर्ष्या करते हैं। हमारे मन में पीड़ा होती है, मन में जलन होती है, टीस पैदा होती है कि अमुक व्यक्ति इतना क्यों बढ़ रहा है। उसकी इतनी प्रशंसा क्यों हो रही है? मेरी क्यों नहीं हो रही है? मैं सीनियर हूँ, वह मेरे से जूनियर है फिर भी उसकी मेरे से ज्यादा प्रशंसा क्यों हो रही है? मैं उससे ज्यादा धनवान हूँ। मेरे पास सबकुछ है फिर भी ऐसा क्यों हो रहा है कि मेरे से ज्यादा उसको महत्त्व मिल रहा है। उस स्थिति में मेरा जीना ही हराम हो गया है। अब तक मैंने घास ही काटी! मेरे से जूनियर को ज्यादा महत्त्व दिया जा रहा है। मेरे इर्द-गिर्द की यह बहुत जबरदस्त पीड़ा मुझे सताती है।

बताओ कौन-सी पीड़ा है?

ईर्ष्या की पीड़ा है। दूसरे को ज्यादा महत्त्व दिया जा रहा है। वह उसको सहन नहीं होगा। इतनी पीड़ा नहीं होनी चाहिए। क्यों हो? पर हम ईर्ष्या की भावना पैदा कर लेते हैं। हम अनेक प्रकार की कुंठा अपने भीतर पाल लेते हैं। न जाने किस-किस प्रकार के विचार पैदा हो जाते हैं। दुनिया जूनियर और सीनियर का भेद नहीं जानती।

सीनियर किसको कहते हैं? साधु बनने में सीनियरिटी! इसमें तुम सीनियर हो गए! पर राग-द्वेष हमारे दामन से कितना छूटा इस पर विचार कर लो। यदि उससे दामन नहीं छूटा तो हम चर्म-चक्षुओं से ही देख रहे हैं। हमारे दिव्य विचार रूपी नेत्र जो खुलने चाहिए थे, वे नहीं खुल पाए। ऐसी स्थिति में हम कैसे धर्म की आराधना करने में समर्थ बनेंगे!

वह मुनि कोशा गणिका के वहाँ चातुर्मास करने चला गया, पर अपने

व्रतों में सुस्थिर नहीं रह पाया। वह कोशा से प्रणय की याचना करने लगता है। कोशा के कहने से पर्वत, नदी, नाले लाँघ कर कश्मीरी शॉल लेकर आया। कोशा ने उससे पाँव पोंछकर गटर में डाल दिया। मुनिराज का आक्रोश फूट पड़ा। कहा, तुमने यह क्या किया? तुम्हें मालूम है मैंने कितनी कठिनाइयाँ झेल कर इसे प्राप्त किया था और तुमने पाँव पोंछकर फेंक दिया। कोशा ने प्रेरणाप्रद शब्दों में कहा, मुनिवर क्या मनुष्य जन्म और संयम रत्न से भी दुष्कर कम्बल है? कठिनाई से प्राप्य है?

साथियो! विचार करना, क्या महत्त्वपूर्ण है। कम्बल की प्राप्ति दुष्कर है या साधु जीवन की? हमारी समझ पर तरस आ रहा है कि हम क्या कर रहे हैं?

सीता को लंका में रावण ने कौन-से स्थान, कौन-से बाग में रखा था। अयोध्या में किसी एक व्यक्ति ने बात उठा दी तो राम ने शक कर लिया। राम के मन में खिन्नता पैदा हो गई। राम ने सीता का त्याग कर दिया। उनके लिए त्याग करना बहुत सिंपल हो गया। राम इतने समय तक अलग रहे, किंतु उनको अग्निपरीक्षा देने की आवश्यकता नहीं पड़ी। अग्निपरीक्षा सीता की हुई है। पुरुषों को अग्निपरीक्षा नहीं देनी पड़ती, किंतु महिलाओं के लिए अग्निपरीक्षा की बात हो जाती है। यदि पुरुषों की अग्निपरीक्षा ली जाए तो पिक्चर सामने आ जाएगी। राम की परीक्षा होती तो वे जीत जाते, इसमें कोई शक नहीं, पर सामान्यतया अग्निपरीक्षा होती बहनों की है।

सुभद्रा को भी अग्निपरीक्षा देनी पड़ी। अग्निपरीक्षा का मतलब कठिन परीक्षा। उन्हें कच्चे धागे से कुएं से पानी निकालना पड़ा। उन्होंने कुएं से पानी निकाल लिया। सारी कठिन परीक्षाओं से बहनों को गुजरना पड़ा और आज तक गुजरना पड़ रहा है।

हमारी क्रिया पर भी प्रतिक्रिया होती है, होगी। हमारा आचरण क्रिया है। उस पर प्रतिक्रिया होती है। प्रतिक्रिया अनुकूल भी होती है और प्रतिकूल भी। प्रतिकूल प्रतिक्रिया हमको कितनी सहन होती है? हम क्रिया आचरण किसलिए करते हैं? कीर्ति, वर्ण, यश आदि के लिए क्रिया नहीं है। योग्यता-अर्हता प्राप्त करने के लिए आचरण करना चाहिए। जब हमारा आचरण वीतरागता के लिए है, अरिहंत बनने के लिए है तो हमारी कोई कैसी भी क्रिया-प्रतिक्रिया करे, हमें कोई कष्ट नहीं होना चाहिए। क्या हम कभी इधर-

उधर देख नहीं लेते हैं? लोग हमें किस रूप में देख रहे हैं, लोगों का भय क्यों? लोग किस रूप में देख रहे हैं, उससे हमें क्या फर्क पड़ रहा है? देखने वाले की अपनी आँखें हैं, वह चाहे जिस रूप में देखे। वह अपनी आँखों से देख रहा है। दूसरे की आँखें हमें प्रमाणित या अप्रमाणित नहीं कर सकती।

एक बहिन आँखों से अंधी थी। उसकी आँखों का ऑपरेशन किया गया। ऑपरेशन सफल हुआ। उसकी आँखों से पट्टी हटाई गई। डॉक्टर उसको चेक कर रहा था। डॉक्टर ने अपने हाथ की पाँच अंगुलियाँ आगे की और उस बहिन से पूछा कि बहिन जी, क्या आपको मेरी पाँच अंगुलियाँ दिखाई दे रही हैं? उस बहिन ने कहा कि मुझे दिख तो पाँच ही रही है पर दीपक भाई कह दें कि ये पाँच हैं तो मैं मान लूँगी कि हाँ, ये पाँच ही हैं। मुझे अपनी आँखों पर भरोसा नहीं है। दूसरा प्रमाण दे देगा तो पाँच ही होगी। ये हमारा आत्म अविश्वास है। ऐसी मनोवृत्ति नहीं होनी चाहिए कि कोई कह दे तो मैं मान लूँ। तुम्हारी बुद्धि जो बोल रही है, उस पर भरोसा करो।

रोटी अपने घर की खाते हो या दूसरे के घर की? कपड़े खुद के पहनते हो या दूसरों के? रोटी-कपड़ा तो अपने घर का खाते-पहनते हैं, परंतु बुद्धि अपनी नहीं है। कोई साक्षी भर दे या कोई दूसरा हाँ कर दे तो मैं विश्वास कर लूँ। अभवी जो साधु बन जाता है, साधु की क्रिया करता है वह क्रिया धर्म क्रिया है, अधर्म क्रिया नहीं है। किसी जीव का वध करना या किसी चीज का कत्ल करना अधर्म क्रिया कहलाती है। अभवी जीव या मिथ्यात्वी जीवों ने अनंत बार धर्म की क्रिया तो की है, किंतु समझ नहीं है। क्रिया अधर्म की नहीं, धर्म की है। धर्म तक ले जाने के लिए है। हमने इन क्रियाओं को अपना रास्ता बना दिया। यह चलने का रास्ता है, पर गंतव्य की जानकारी नहीं है तो मंजिल कैसे मिलेगी। अभवी धर्म क्रिया करता है, किंतु धर्म परिणाम से शून्य है।

इसे एक उदाहरण से समझें। ग्लूकोज शरीर की नस में जा तो रहा है, किंतु शरीर को फायदा नहीं हो रहा है। ग्लूकोज नस में चला भी गया तो क्या हुआ? हमको तो उसका परिणाम मिलना चाहिए। लेकिन मिल नहीं रहा है। हमारे शरीर को फायदा चाहिए, पर क्या हो रहा है? ग्लूकोज लगाया पर वह शरीर में काम नहीं कर रहा है, उससे ताकत नहीं आ रही है, तो उसे चढ़ाने का क्या फायदा मिला हमको? क्या कुछ मिला? हमने डॉक्टर से कई प्रकार की

दवाएं लीं, लेकिन वे दवाएं काम नहीं कर रही हैं तो क्या लाभ? वैसे ही धार्मिक क्रिया करें और मन में उसका कोई असर नहीं हो तो क्या फायदा?

क्रिया को हम कितनी ही बार कर लें, यदि भाव नहीं है तो कोई फायदा नहीं। हमारे भीतरी भावों एवं धैर्य की पूर्ति होनी चाहिए। जब तक भावों एवं धैर्य की पूर्ति नहीं होगी, तब तक क्रिया से कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

**सहना, सहना, सहना, सहना**
**कब तक सहना, कब तक सहना**
**जब तक जीवन तब तक सहना**

एक कड़ाही में दूध है। दूध को चूल्हे पर चढ़ाया हुआ है। उसमें खुरपा चलाया जा रहा है। नीचे आग भी जल रही है। एक घंटा हो गया, दो-तीन घंटे हो गये, किंतु मावा बना ही नहीं। मान लो आप ही मावा बना रहे हो। कड़ाही में खुरपा घूम ही रहा है किंतु मावा बन ही नहीं रहा है तो आप क्या करोगे? आप सोचोगे कि दूधवाले ने आज दूध में पानी ज्यादा मिला दिया है इसलिए मावा नहीं बन रहा है। लेकिन बात कुछ अलग है। नीचे फायर प्रूफ लगा हुआ है। उस दूध को आँच ही नहीं लग रही है तो मावा कैसे बन सकता है! नीचे आग जल जरूर रही है, पर कड़ाही को लग नहीं रही है। इस तरह से होने पर चाहे आपने गैस की पूरी टंकी खाली कर दी, मावा बनने वाला नहीं है, वैसे ही अभवी की क्रिया से धर्म नहीं हो पाता। परिणाम नहीं मिल पाता।

हमारा मन दूध की तरह है या मावा की तरह! दूध में उफान आता है तो दूध छलकता है। मावा नहीं छलकता है। यदि दूध में पत्थर डालें तो वह उछलता है पर मावा में पत्थर डालें तो वह उछलता नहीं है। वह मावे के अंदर धँस जाता है। हमारी धर्म क्रियाएं हमारे मन रूपी दूध को मावा की तरह बनाने वाली होनी चाहिए।

दूध भी प्रतिक्रिया करता है। दूध चूल्हे पर है, किंतु मावा नहीं बन रहा है। गैस की टंकियां खाली हो रही हैं, पर मावा नहीं बन रहा है। इसका कारण हम समझ गए। वैसे ही हम अपने भीतर ऐसी थैली लगा के बैठे हैं, जो किसी भी उपदेश को भीतर घुसने ही नहीं देती है।

एक शिष्य ने पूछा, गुरुदेव! धर्म का आनंद क्यों नहीं आता? गुरुजी ने चेले से कहा कि पहले शराब की बोतल लेकर कुल्ला कर लो। चेले ने पूरी

बोतल शराब मुँह में डाल-डाल कर कुल्ला कर दिया। गुरु ने पूछा कि शराब का नशा तो नहीं आ रहा है तो उसने कहा कि मैंने शराब का कुल्ला करके बाहर थूक दिया। बाहर थूकने से कैसे नशा आ सकता है। मैंने उस शराब को पीया नहीं।

गुरुजी ने कहा कि जैसे तुमने शराब का कुल्ला कर-करके थूक दिया जिससे उसका नशा तुम्हें नहीं आया, वैसे ही हम ऊपर-ऊपर से धर्म क्रिया कर लेते हैं, जिससे उस क्रिया का लाभ नहीं मिल पाता है। क्षमा आदि रूप धर्म का लाभ हमें नहीं मिल पाता है, क्योंकि हम जिस वातावरण में जी रहे हैं, उसमें छोटी-छोटी बातों से हममें उछाल आ जाता है। यही कारण है कि हमको आत्मतुष्टि हो नहीं पाती।

हमारा कोई थोड़ा भी प्रतिकार कर दे, तो हम वह भी सहन करने की क्षमता रख नहीं पाते हैं। सहना, सहना, सहना... किंतु तीन बार से काम नहीं चलेगा। सहने की कोई सीमा नहीं है। कई लोग कहते है कि इसकी कोई सीमा तो होनी चाहिए, आखिर कब तक सहें! मैं उनको कहना चाहूँगा कि सहने की कोई सीमा नहीं है। जीवन निकल जाए सहते रहो, सहते रहो। ये बात अध्यात्म की है। इसके बिना जीवन का सूर्योदय कभी नहीं होगा। ये बात होगी तो जीवन का सूर्योदय अभी हो जाएगा। हम अपनी कमजोरी के कारण छलक जाते हैं। कहते भी तो हैं-

**अधजल गगरी छलकत जाय।**

आधा भरा हुआ घड़ा छलकता ज्यादा है। ओछा आदमी अधिक इतराता है, चाहे उसके पास कुछ भी नहीं हो। हमारे भीतर कई बार गाँठ पैदा हो जाती है। ऐसा कभी-कभी संतों में भी हो जाता है कि मेरे को इतना बड़ा पात्र दे दिया। इतना बड़ा पातरा भरकर पानी कैसे लाऊँगा। उसने मन में पहले ही सोच लिया कि मैं पूरा पात्र भरकर के नहीं लाऊँगा, नहीं तो रोजाना ये भारी पात्र मुझे ही पानी से भरकर लाना पड़ेगा। वह पात्र लेकर पानी लेने के लिए गया और पात्र में पानी आधा ही भरा। उसने सोचा कि पात्र पानी से पूरा भरूँगा तो बहुत भारी हो जाएगा। इसलिए आधा भरा और वहाँ से निकल गया। पात्र में आधा पानी होने के कारण वह छलक रहा था। इससे उसकी झोली गीली हो गई। चोलपट्टा भी गीला हो गया। वह गुरुजी के पास आया और खिन्नता से

बोला- झोली-चोलपट्टा गीला हो गया। गुरुजी ने कहा कि तुमने पहले ही मन में सोच लिया था कि पात्र पानी से आधा ही भरकर लाऊँगा। यदि आधा ही भरकर लाएगा तो पानी छलकेगा जिससे गीला तो होगा ही। इसलिए मन को कभी भी कमजोर नहीं होने देना चाहिए।

एक विद्यार्थी रात-दिन पढ़ रहा है। वह पढ़ने में पीछे नहीं है। उसने रात-दिन खूब पढ़ाई की। परीक्षा के बाद उसका रिजल्ट आया। उस रिजल्ट में उसको क्या मिला? उसे सौ में से सौ मिला क्या? नहीं मिला। वह फेल हो गया। सभी विषयों में फेल हो गया, क्योंकि उसने पढ़ाई तो की पर कोर्स की पढ़ाई नहीं की। उसने अपना कोर्स पूरा नहीं किया था। वह आउट ऑफ कोर्स पढ़ रहा था। वह उपन्यास पढ़ रहा था फिर फेल तो होना ही था। हम भी अपने कोर्स की पढ़ाई न करके आउट ऑफ कोर्स की पढ़ाई कर रहे हैं। दूसरे कोर्स की पढ़ाई करेंगे तो मोक्ष कैसे होगा? कैसे हम मोक्ष की प्राप्ति कर सकेंगे? आलस्य, राग-द्वेष के ऊपर विजय पाना, क्रोध को कम करना, लोभ नहीं करना, मोक्ष का कोर्स है। हमने लोभ व माया को कितना कम किया? हमने कितना लोभ हटाया? हमारा लोभ बढ़ रहा है या घट रहा है, यह हमें सोचना है। मान लो अगर साढ़े नौ बजे ग्राहक आने वाला हो, व्यापारी आने वाला हो जिससे प्रभूत लाभ होने वाला हो तो आप क्या करेंगे? व्यापारी का इंतजार करेंगे या व्याख्यान में आएंगे? उस समय एक को छोड़ना होगा तो क्या छूटेगा? व्याख्यान या व्यापारी? यह तो परीक्षा की जाय तो ही मालूम पड़ेगा कि कौन क्या करेगा। क्या छोड़ेगा?

आगम की दृष्टि से विचार करेंगे तो पता चलेगा कि हम कहाँ खड़े हैं! हमारे पास चलने-बढ़ने की जगह भी है या नहीं है! हमारे मन में क्या-क्या बातें किस-किस रूप में पनप रही हैं, यह समीक्षा का विषय है। यदि यश-कीर्ति के लिए मन लालायित हो रहा है, तो उनकी भी समीक्षा करें। अपने मन की समीक्षा करें। इनमें यदि उत्तीर्ण हो जाएंगे तो धन्य हो जाएंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

28 जुलाई, 2021

# 6

# जिन-मार्ग नयन निहार ले

**पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिनतणो रे**

इस प्रार्थना में कहा गया है कि अजितनाथ भगवान जिस मार्ग से चले, उस मार्ग की खोज कर रहा हूँ। उस मार्ग को देखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मुझे उस मार्ग को जानना है, जिस मार्ग से मोक्ष मिलता है। जिस मार्ग से समाधि मिलती है।

दो चीजें हैं- समाधि और मोक्ष। पहले समाधि मिलेगी तो मुक्ति मिलेगी। यदि मन समाधि में नहीं है तो मोक्ष भी नहीं है। मोक्ष से पहले हमको समाधि में आना पड़ेगा।

समाधि का अर्थ समभाव है। समाधि का अर्थ मन की स्वस्थता है। समाधि का अर्थ मन उपवास से शांत हो जाना है। समाधि का अर्थ है- मन में कोई उथल-पुथल नहीं होना। कैसी भी घटनाएं हमारे साथ घट जाएं, कैसी भी परिस्थितियाँ हमारे सामने आ जाएं, उनसे विचलित नहीं होना। उन घटनाओं में, उन परिस्थतियों में यथावत् रहने को कहते हैं समाधि। चाहे लाखों का मुनाफा हो गया, चाहे घाटा या नुकसान हो गया, उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। जो व्यक्ति समाधि में लीन रहता है, उसको घाटे-मुनाफे से कुछ भी लेना-देना नहीं है।

यह बात कहने में आसान है, लेकिन करने में बड़ी दूभर है। दूभर है, किंतु असंभव नहीं है। ऐसा जीया जा सकता है। ऐसे जीने के लिए पहले हमें स्वार्थ को दूर करना पड़ेगा। ममत्व भाव को दूर करना पड़ेगा। जब तक ममत्व बुद्धि रहेगी, तब तक समाधि मिलना मुश्किल है। तब तक समाधि के भाव में जीना मुश्किल है। ममत्व हमें अपनी तरफ वैसे ही खींचते हैं जैसे चुम्बक लोहे को खींचता है। ममत्व कहता है कि इधर आओ, इधर आओ। जैसे चुंबक की

पकड़ बहुत मजबूत होने से वह लोहे को अपनी तरफ आकर्षित कर लेता है, वैसे ही ममत्व बुद्धि की सशक्त पकड़ अपनी तरफ खींचती है। उस तरफ हमारा खिंचाव होगा तो मन डिस्टर्ब होगा।

दोनों तरफ खिंचाव होगा तो क्या होगा?

एक रस्सी को कुछ लोग एक तरफ खींच रहे हैं और कुछ लोग दूसरी तरफ खींच रहे हैं तो दोनों ओर से खिंचाव होने से रस्सी में तनाव आएगा। उसी प्रकार हमारा मन दोनों तरफ खिंचाव करेगा तो उसमें द्वंद्व मचेगा। मन ममत्व की तरफ जाना चाहता है। हृदय ममत्व की ओर जाना चाहता है।

एक व्यक्ति चौराहे पर खड़ा होकर मन में सोच रहा है कि इधर जाऊँ या उधर! उसे दोनों तरफ का आकर्षण है। जहाँ दोनों तरफ का झुकाव हो, वहाँ ऐसी स्थिति बन जाती है कि दुविधा में दोनों गए माया मिली न राम। वह दोनों से रह गया। न माया मिली न राम मिला। इसलिए जब तक भिन्न-भिन्न आकर्षण नहीं हटेगा, तब तक एक दिशा में आगे नहीं बढ़ पाएंगे।

एक प्रश्न हो सकता है कि म.सा. ऐसा गृहस्थ के लिए संभव कैसे है? जो गृहस्थी में रह रहा है, उसके कई कर्तव्य हैं, वह उन दायित्वों का निर्वाह नहीं करे तो भी ठीक नहीं है। ऐसी स्थिति में वह समत्व की प्राप्ति कैसे करेगा। साधु के लिए तो समझ सकते हैं कि वह समत्व प्राप्त कर लेगा। उसके लिए कहा गया है-

**'पंच निग्गहण्णा धीरा'**

निर्ग्रंथ, पाँचों इंद्रियों का निग्रह करने वाले होते हैं। निर्ग्रंथ का अर्थ होता है- ऋजुदर्शी। ऋजुदर्शी यानी अपनी मंजिल को देखने वाला। उसकी गति सीधी होती है। न राग में जाने का मन होता है, न द्वेष में ही जाने का मन होता है। वह केवल एक लक्ष्य के अनुसार चलता है। इधर-उधर भटकता नहीं है। अपने मन को इधर-उधर लगाने की कोशिश नहीं करता है।

मुनि की चर्या की पाँच समितियाँ बताई गई हैं। सबसे पहले ईर्या समिति। ईर्या समिति किसको कहते हैं?

(सभा में उपस्थित लोग कहते हैं- देखकर चलना)

किधर देखकर चलना। देखकर चलना एक बिंदु है, किंतु मात्र देखकर चलने से ईर्या समिति की पूर्णता नहीं है। ईर्या समिति के लिए बताया

गया है कि सबसे पहले ज्ञान, दर्शन, चारित्र का लाभ हो तो गमन करना। यदि ज्ञान, दर्शन, चारित्र की संभावना है तो मुनि गमन करे। यदि लाभ की संभावना नहीं है तो घूमने-फिरने का कोई मतलब नहीं है। इधर-उधर घूम के आ जाएं कोई मतलब नहीं है। ईर्या समिति का उद्देश्य है- ज्ञान, दर्शन, चारित्र। चाहे ज्ञान की प्राप्ति होने वाली हो अथवा दर्शन या चारित्र की प्राप्ति हो या प्राप्त होने की संभावना हो उसके लिए गमन करना। ज्ञान, दर्शन, चारित्र के सात भंग होते हैं। किसी एक भंग की भी संभावना बनती हो तो उसको गमन के लिए आगे बढ़ना है। ये हो गया गमन का हेतु। उसके सात विकल्प बनते हैं। यथा-

(1) ज्ञान (2) दर्शन (3) चारित्र (4) ज्ञान-दर्शन (5) ज्ञान-चारित्र (6) दर्शन-चारित्र (7) ज्ञान-दर्शन-चारित्र। इन सात भंगों में से किसी एक भंग की भी जहाँ लाभ की संभावना हो तो वह गति करे। इन कारणों से चलना ईर्या समिति है।

पर कैसे चलना?

उसका उत्तर होगा यतनापूर्वक चलना। चार हाथ भूमि सामने देखते हुए चलना। एकदम नीचे देखेगा तो चलना संभव नहीं होगा। इसलिए युग प्रमाण यानी अपनी ऊँचाई जितनी दूरी से नीचे की भूमि को देखकर चलना।

पाँच इंद्रियों के पाँच विषयों को टालकर चलना है। इन सारी बातों का वर्जन करना है कि इधर-उधर क्या है, इधर कौन-सी दुकान है, उस दुकान पर क्या लिखा हुआ है, उस फर्म का क्या नाम है और उस दुकान में क्या है। इधर-उधर देख के नहीं चलना है। इधर-उधर देखने से कोई मतलब भी नहीं है। चलना जिधर हो उधर की भूमि को ही देखना। अन्यत्र क्या हो रहा है, उसको देखने से कोई मतलब नहीं है।

सर्कस में करतब दिखाने वाले एक रस्सी बाँधकर उस पर साइकिल चलाते हैं। देखने वाले देख रहे हैं कि वह रस्सी पर चल रहा है। वह रस्सी पर साइकिल चला रहा है। उसके लिए रस्सी पर साइकिल चलाना आसान है। वह रस्सी से गिरे बहुत कम चांस है, किंतु क्या आप साइकिल चला सकते हो रस्सी पर? यदि आपसे कहा जाए कि एक खंभे से दूसरे खंभे तक रस्सी बाँधकर उस रस्सी पर चलना है तो क्या आप चल पाओगे? रस्सी पर चलना तो संभव नहीं होगा, पर रस्सी के सहारे लटक कर तो पार कर सकोगे।

बोलो, किसने ऐसे पार किया है?

(कुछ लोग कहते हैं-मोरार जी देसाई ने)

कहाँ किया था याद करो। लटक कर इस ओर से उस ओर गए। वह वर्षों पहले की बात है। एक हेलीकॉप्टर या प्लेन से दूसरे हेलीकॉप्टर या प्लेन तक रस्सी बाँधी गई। उससे लटक कर मोरार जी एक तरफ से दूसरी तरफ गए थे। रस्सी पर चलकर जाना कठिन होता है, किंतु तीर्थंकर देव के आज्ञा पर चलना उससे भी कठिन है।

**धार तरवार नी सोहेली दोहेली,**
**चउदमां जिन तणी चरणसेवा...**

तलवार की धार पर चलकर बता देना कठिन नहीं है, किंतु चौदहवें तीर्थंकर देव की आज्ञा पर चलना तलवार की धार पर चलने से भी दुष्कर है। उससे भी कठिन है। पचीस बोल का थोकड़ा किस-किस को याद है, बोलो। पाँच इंद्रियों के 23 विषय कौन-कौन-से हैं और 240 विकार कौन-से हैं? पाँच इंद्रियों के विषय 23 हैं। विकार कितने होते हैं? 240। अभी इसकी चर्चा में नहीं जाते हैं कि विकार इतने होते हैं या नहीं होते हैं, किंतु थोकड़े में बताया गया है। अपन विचार करें कि विकार किसको कहते हैं। विकार कहते हैं- जो खराब हो गया। आम में दाग लग गया, उसमें सड़न-गलन पैदा हो गई, उसमें से बदबू आने लगी तो वह उसका विकार हो गया। उसमें गंध आने लगी तो वह उस वस्तु का विकार है। मूल वस्तु के भाव में बदलाव आना विकार पैदा होना है। विकार पैदा होना अर्थात् कुछ न कुछ दोष पैदा हो जाना।

दोष पैदा कब होता है? राग और द्वेष से जैसे ही हमारी दृष्टि में झुकाव आता है, अनुकूल-प्रतिकूल की बात आती है, शुभ-अशुभ का प्रसंग बनता है तो उससे विकार पैदा होता है। जैसे ही झुकाव हुआ, वह झुकाव विकार पैदा करने वाला बना। पाँच इंद्रियों का उपयोग करो। उपयोग करने के लिए मना नहीं है पर देखो भालो तको मत, खाओ-पीओ छको मत।

खाओ पीओ, किंतु ऐसे नहीं कि खाने बैठ गए तो खाना-पीना पूरा ही न हो। खाते जाओ, खाते जाओ... इतना मत खाओ कि खाने के बाद उठना-बैठना मुश्किल हो जाए। देखने वाले को पुलिस नहीं पकड़ती है, किंतु ताकने वाले को पकड़ लेती है। देखने वाला पकड़ में नहीं आता है। देखने

वाला निकल जाता है, पर ताकने वाले को पुलिस पकड़ लेती है। जैसे पुलिसवालों ने ताकनेवाले को पकड़ लिया, वैसे ही हमारी दृष्टि में ऐसा परिवर्तन हुआ कि विकार ने हमको घेर लिया। अत: ईर्या समिति के संबंध में कहा गया है कि इधर से उधर ताकते हुए नहीं चले, मन में पाँच इंद्रियों का विषय न आए, क्योंकि चलने की भूमि पर दृष्टि रखना जरूरी है। वहाँ दिमाग नहीं चलाना चाहिए पर हमारा दिमाग चलता है। हम सड़क पर चल रहे हैं और हमारा दिमाग सड़क पर नहीं चल रहा है। दिमाग को हमारे चरणों के साथ चलना चाहिए। यदि कोई आपस पूछे कि भगवान महावीर का सिद्धांत क्या है? जीने की शैली क्या है तो एक लाइन में बता दो 'जिओ और जीने दो'।

भारत के प्रधानमंत्री कहते हैं कि न खाऊँगा न खाने दूँगा, किंतु यह भी स्पष्ट है कि भूखा कोई भी नहीं रहता। भले ही कह दें कि मैं न खाऊँगा और न खाने दूंगा, किंतु क्या किसी को भूख नहीं लगती। जिसको खाने की आदत है, वह तो खाता रहेगा। उसकी आदत छूटेगी नहीं। कितना ही कह दें कि तुम्हें नहीं खाने दूँगा, पर वह भी कहता है कि तू डाल-डाल तो मैं पात-पात। पीछे-पीछे आते रहो आगे नहीं निकलने दूँगा। किसके आगे कौन रहेगा? डाल पर चलने वाला या पत्ते पर चलने वाला? डाल पर चलने वाला पीछे रहेगा और पात पर चलने वाला आगे।

महावीर भगवान का सिद्धांत स्पष्ट है कि जिस ईर्या से कार्य कर रहे हों ध्यान उसी में रहना चाहिए। उसी में मग्न हो जाएं। उस समय दूसरी चर्या को छोड़ दें। तुम्हारी साधना का ऐसा रूप है तो तुम समर्थ बनोगे। यदि ईर्या-गमन कर रहे हो तो उसी में लगो। कई बार लोग प्रश्न कर लेते हैं कि म.सा. माला फेरने बैठते हैं, पर मन नहीं लगता। मन भटकने लगता है। दूसरी जगह पर लगा रहता है। इधर से उधर भागता रहता है।

मैं उनको समाधान देता हूँ- पहले भोजन में मन लगा लो। खाने में तो मन इधर-उधर नहीं होता है। आज आप देखना कि खाना खाते समय मन कहाँ रहता है। आपका मन इधर-उधर तो नहीं जाता है! खाने में मन लगता है या नहीं!

अगर आपसे पूछ लें कि कल क्या-क्या खाया और कल खाते हुए कितने कवे उठाए, मुँह में कवे को कितनी बार चबाया तो कहेंगे कि ये कैसी

पृच्छा हुई? हमको तो आम खाना है, न कि पेड़ों को गिनना है। हकीकत यह है कि मन खाने में भी नहीं लगता है। उस समय भी वह इधर-उधर भटकने लगता है। कई बार तो दुकान में जाता है। अपने धंधे में जाता है। इस पर जाता है कि घर में लड़की 25 साल की हो गई या लड़का बड़ा हो गया, दोनों अभी भी कुँवारे हैं, अभी तक इनकी शादी नहीं हो पाई है। खाना खाते समय, ये बातें ध्यान में आती हैं या नहीं? जैसे ही कोई ग्राहक गया बैठे-बैठे आपके सामने उनका चेहरा आकर खड़ा हो जाएगा। अधिकांश लोग जहाँ रहते हैं, वहाँ होते नहीं हैं। वहाँ मन नहीं होता है। ये दुविधा है। ऐसी स्थिति में समाधि नहीं आएगी। समभाव नहीं बनेगा। जहाँ शरीर है, वहीं मन हो। जहाँ ईर्या हो, वहीं उपयोग हो। कार्य के अनुसार उपयोग लगा रहेगा तो समभाव को, समाधि को प्राप्त कर सकेंगे। उसके आगे परमात्मा की बात करेंगे। पहले एक मंजिल को प्राप्त करो, फिर आगे बढ़ो। एक पगथिया (सोपान) छूटा नहीं कि गिर पड़ेंगे। गिरेंगे तो हाथ-पाँव टूटेंगे। दाँत टूटेंगे। इसलिए एक-एक करके चढ़ो। आराम से चढ़ो।

प्रश्न हमारा है- हम समाधि कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

समाधि प्राप्त करने का सूत्र है कि जो कार्य करो, उसी में उपयोग हो। यह भगवान महावीर का सिद्धांत है। सारे ग्रंथ छोड़ो। ग्रंथ पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। क्लास, व्याख्यान लेने की भी कोई जरूरत नहीं है। न ही सुनने की जरूरत है। भगवान महावीर ने कहा कि जो जिस कार्य में लगा है, उसे उस समय अपना पूरा उपयोग, पूरा ध्यान उसी में रखना चाहिए। जिस दिन हम इसमें पूर्ण सफल हो जाएंगे उस दिन उपदेश की जरूरत नहीं पड़ेगी।

जैसे साधु रास्ता पकड़ लेता है, वैसे ही भगवान महावीर कहते हैं- 'उद्देसो पासगस्स नत्थि' अर्थात् जिसको दिखने लग जाए कि मेरा घर वह है, मेरी दुकान वहाँ है, मेरा स्कूल वहाँ है, मुझे वहाँ पहुँचना है, उसने वह रास्ता पकड़ लिया तो उसको मार्ग दिखाने की, उसे उपदेश देने की जरूरत नहीं है। हम सही रास्ता नहीं पकड़ पाते हैं इसलिए बार-बार उपदेश देना पड़ता है, अन्यथा क्या जरूरत है बार-बार उपदेश की? मंजिल पाने के लिए चलना पड़ेगा। खाली तेली के बैल की तरह घूमते नहीं रहना है। घूमते रहोगे तो सुनने को मिलेगा, किंतु सुने हुए को आचरण में लाया नहीं गया तो कितना भी सुनने

से क्या होगा। सुनना तभी सार्थक है जब सही रास्ता पकड़ लें।

एक श्रावक जी थे। वे अब नहीं रहे। चातुर्मास में संचालन करते थे। चातुर्मास का लास्ट सप्ताह था। उन्होंने एक दिन व्याख्यान में घोषणा की कि जिसने भी चातुर्मास के 120 दिन व्याख्यान सुने हैं, वे अपना नाम दें, हम उनको सम्मानित करना चाहते हैं। कोई भी हो उसको सम्मानित करेंगे। मैंने कहा कि आप क्या बात कर रहे हो, जिसने 120 दिन सुना, उसको सम्मानित करना चाह रहे हो! सम्मानित उसको करो, जिसने एक दिन व्याख्यान सुना और वैरागी बन गया। सम्मानित उसे करो, जिसने एक दिन व्याख्यान सुनकर दीक्षा ले ली। 120 दिन सुनकर भी जो नम नहीं पाया उसका क्या सम्मान करना! सम्मान उसका होना चाहिए जिसने एक व्याख्यान सुना और आत्मा जाग गई।

किसका सम्मान होना चाहिए?

जिसकी आत्मा जग गई, उसका सम्मान होना चाहिए लेकिन अब उसे सम्मान की जरूरत नहीं है। वह नहीं चाहता कि मेरा सम्मान हो। जब सम्मान की चाहत थी तब किसी ने सम्मान किया नहीं, अब कर रहे हैं। यह सही है कि जब आदमी भूखा था तब कोई भी आगे नहीं आया। अब जब भूख खत्म ही हो गई तो कितना ही भोजन परोसो उसकी उसे जरूरत नहीं है। अब वह उस भोजन का क्या करे? अब वह उसे भार लग रहा है। वैसे जो जग गया उसको सम्मान की जरूरत नहीं है। दीक्षा लेने वाले का लोग सम्मान करते हैं पर वह उस सम्मान का क्या करे? अत: अब उसे सम्मान की जरूरत नहीं है।

हमें बोध होना चाहिए कि आत्मा और पुद्गल भिन्न-भिन्न है। मेरी आत्मा जाग गई और बोध हो गया।

**पुद्गल संग में फँसी चेतना है तन से न्यारी रे, आत्मा जाग गई म्हारी।**

इतना (हाथ से इशारा) ज्ञान हो गया, इतना (हाथ से इशारा) जावण लग गया दूध में तो दही जम जाएगा। यदि जावण नहीं लगाया तो दही नहीं जमेगा।

पाँच लीटर दूध के हांडे और पाँच लीटर दही के हांडे को आपस में बाँधकर रातभर रख देने से दही नहीं जमेगा। इसलिए नहीं जमेगा, क्योंकि जावण दूध में लगा ही नहीं।

पानी में फिटकरी डालने से पानी का कचरा नीचे बैठ जाता है और साफ पानी ऊपर आ जाता है। इसी तरह बोध हो जाने से, ज्ञान हो जाने से राग-द्वेष का कचरा नीचे बैठ जाता है। हम क्रोध से मुक्त हो जाते हैं। एक छोटा-सा काँटा हमारे चलने में बाधक हो जाता है। वह हमारी गति को रोक देता है। छोटी-सी बात हमारे मोक्ष को रोकने वाली हो जाती है। उसे अटका देती है, उससे भटका देती है। राग-द्वेष हमको मार्ग से भटका देते हैं।

मंदिर में जाने वाला सोचता है कि एक अगरबत्ती और दीया रखकर घंटी टन-टन बजा देने और आरती उतार देने से हमारी भक्ति हो गई, पूजा हो गई। उससे क्या हो गया? चाहे मंदिर हो, चाहे गिरजाघर हो या कोई भी धर्मस्थान हो, जगह-जगह भटककर आने पर भी क्या मिला?

किसी ने कहा कि भगवान मैं तुम्हें खत लिखना चाहता था, किंतु कोई पता नहीं मिला। यदि आपका ठिकाना मालूम होता तो चिट्ठी लिख देता। यदि भगवान का पता ज्ञात होता तो वहाँ कितने पत्र पहुँच जाते? पत्रों की छँटनी करने के लिए वहाँ कितने लोगों को बैठना पड़ता? यदि भगवान का ठिकाना पता लग जाता तो कितने लोगों को नौकरी मिल जाती। आप सोचो! प्राइम मिनिस्टर के पास आपकी चिट्ठी जाती है क्या? उन्हें कहाँ फुरसत, जो आपकी चिट्ठी को देखें, उसके उत्तर पर हस्ताक्षर करें। प्राइम मिनिस्टर के ऑफिस से आपका उत्तर आ रहा है। उनके ऑफिस में काम करने वाले कर्मचारी उस पर हस्ताक्षर तथा ठप्पा लगाकर दे देते हैं। वैसे ही भगवान की तरफ से होता। हमारी भक्ति नहीं तो चिट्ठी कैसे पहुँचेगी। चिट्ठी को पहुँचाने के लिए हमको एकाग्र होना पड़ेगा।

अर्जुन राधावेध के लिए एकाग्र हो गए। उसके पूर्व द्रोणाचार्य ने दुर्योधन आदि को भी प्रस्तुत किया। उनसे आचार्य द्रोण ने पूछा था, वत्स तुम्हें क्या दिख रहा है? उन्होंने उत्तर दिया, सबको देख रहा हूँ। ये-ये राजा लोग आए हुए हैं। द्रोणाचार्य के पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई। तुम्हारा मन चंचल हो तो गुरु बेचारा क्या करे। मन की एकाग्रता के बिना सिद्धि मिलने वाली नहीं है। इसलिए एक लक्ष्य की ओर गति करनी होगी। ऐसा होने पर हमको हमारी चाह के अनुसार मंजिल मिलेगी। इधर-उधर का विचार नहीं करना। इधर-उधर नहीं देखना। हमारे भाव इधर-उधर के नहीं बनें। गति केवल

लक्ष्य की दिशा में होगी तो वह मंजिल देने वाली बन जाएगी। हम पाँच इंद्रियों के विषयों, उनके बंधन से मुक्त हो जाएंगे, नहीं तो चलते रहेंगे। चलते समय बातें भी होती रहेंगी। इधर-उधर देखते ही रहेंगे। इधर किसकी दुकान है, उधर किसका घर है, यह ईर्या समिति नहीं है। लोग मेडिटेशन करते हैं। यदि एक ईर्या समिति का पालन कर लो, पूरा मेडिटेशन हो जाएगा। ईर्या समिति की पालना कर लो। अलग से क्या ध्यान करना! ईर्या करना ही तुम्हारा ध्यान और उपयोग है। जो करना है, उसमें ही ध्यान लगा रहना चाहिए। उपयोग उसी में रहना चाहिए। ऐसी स्थिति में हर समय ध्यान में रहोगे और हर समय ध्यान चलता रहेगा। अलग से मेडिटेशन की जरूरत ही नहीं रहेगी। इस ध्यान को एक बार साध लो फिर देखो कि कितना आनंद आ जाएगा। फिर दूसरी तरफ कभी भी जाने की कोशिश नहीं करोगे। चले गए तो लगेगा कि मैं कहाँ आ गया। जैसे हम ए.सी. से बाहर गर्म हवा में जाएं तो लगेगा कि यहाँ कहाँ आ गए, वैसे ही लगेगा कि तीर्थंकर देव के मार्ग से हटकर मैं कहाँ आ गया। पर एक बात जरूर है कि वह मार्ग बहुत दूभर है, बड़ा झीणा है इसलिए उस मार्ग की पहचान करना आसान काम नहीं है।

इलायची कुमार ने एक रस्सी को पार किया था। कौन-सी रस्सी को? जिसकी चर्चा मैं कर आया हूँ। इलायची कुमार एक बहुत बड़े सेठ का बेटा था। आपकी तरह वह अरबपति, खरबपति ही नहीं था, अपितु उसके पास इतना धन था कि उसको मापने का तरीका ही अलग था। उस समय संपत्ति को कैसे मापा जाता था? पहले अंबावाड़ी सहित हाथी को खड़ा कर सोना, चाँदी के सिक्कों से, रत्नों से ढकते थे। रत्नों में हाथी को डुबो दिया। डालते गए, डालते गए। वह डूब गया। इतनी संपत्ति जिसके घर में थी, उसके जवानी के दिन आ गए। इधर-उधर घूमने का समय आ गया। सेठ चिंतित हो गया। वह विचार करने लगा कि लड़का बड़ा हो गया। उसके लिए योग्य सेठ की लड़की लाऊँगा जो मेरे घर की कुलवधू बन सके।

एक तरफ सेठ विचार कर रहा था और दूसरी तरफ इलायची कुमार का मन नट कन्या पर रीझ गया। उसने विचार कर लिया कि शादी करनी है तो नट कन्या से ही। लव मैरिज आज की ही समस्या नहीं है। आज लव मैरिज एक सामान्य-सी बात है। आज से पचास वर्ष पहले लव मैरिज समझ में नहीं आती

थी। जैन समाज में आज भी कम है, पर पहले की अपेक्षा उसने पाँव पसारे हैं। आज गाँव-गाँव में यह नजारा नजर आने लगा है। इलायची कुमार ने मन में ठान लिया कि मुझे शादी करनी है तो उसी से करनी है। नहीं तो करनी ही नहीं है। इलायची कुमार खूंटी तानकर सो गया। वह किसी से बात नहीं कर रहा था, न खाना ही खाया।

आखिर उसके मित्रों ने सेठ को बात बताई कि ये शादी करेगा तो नट कन्या से ही करेगा। सेठ ने समझाया कि कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली। अपना स्तर कहाँ और कहाँ उसका स्तर। सेठ ने कहा कि अपनी इज्जत की बात है उस पर विचार कर। पर प्यार दीवाना होता है। जैसे उसको प्यार हुआ, वैसी प्रीत हमको भगवान से हो जाये तो...

यह सब दिखावे की प्रीत है। जब तक है तब तक प्रीत है, उसके बाद में क्या। प्रीत ऐसे प्रीतम से करो कि कभी रडांपा भोगना न पड़े। मीरा ने कहा था, मैं ऐसे ही प्रीतम से प्रेम करना चाहती हूँ, जिससे कभी विधवा बनना नहीं पड़े। यदि आप चाहते हो कि मेरी पत्नी विधवा नहीं बने तो एक फॉर्मूला है मेरे पास। यदि आप साधु बन जाते हैं तो आपकी पत्नी को रडांपा नहीं आएगा। उसका सुहाग अमर रहेगा। वह अमर सुहागन बनी रह जाएगी।

आपने सोचा है कि मैं अपनी पत्नी को अमर सुहाग दूँ?

(लोग हँसने लगे)

हँस के निकल गए। निकलने के लिए नहीं है। जवाब दो। आयु (जीवन) का कोई भरोसा नहीं है।

इलायची कुमार ने ठान लिया कि अब उसे क्या करना। सेठ ने उसको समझाने का बहुत प्रयत्न किया, किंतु एक ही नशा उसके मन पर चढ़ा हुआ था कि शादी करनी है तो उससे ही करनी। अंततोगत्वा वह भी निश्चित हुआ, किंतु अब नट ने शादी करने से इनकार कर दिया। उसने कहा- पहले नट विद्या सीखें तो मैं शादी कर सकता हूँ। उसने कहा कि नट कला सीखनी पड़ेगी। इलायची कुमार नट कला सीखता है। वह जब नट कला में प्रवीण हो गया तो नट कन्या ने कहा कि ऐसे नहीं, राजा के सामने कला दिखाकर राजा की तरफ से बड़ी बक्शीश प्राप्त करो तब शादी होगी।

इलायची कुमार ने राजा को कला दिखाने की तैयारी की। एक खंभा

गाड़ा गया। उस खंभे पर कीलें लगाई गईं। इलायची कुमार उस पर चढ़कर कला दिखाता है। प्रेम के पीछे कितना पगला गया। कहाँ से कहाँ चला गया। ये सारे खेल मोह के हैं। भगवान की भक्ति के लिए यदि कोई परीक्षा ले तो क्या होगा? परीक्षा ले कि दो खंभों के बीच डोरी बाँधकर उस पर चलकर भगवान से प्रार्थना करनी पड़ेगी। इस प्रकार से प्रार्थना करने को कौन-कौन तैयार है?

बंधुओ! ध्यान रखें, तीर्थंकर देवों की आज्ञा पर चलने का मार्ग सरल व सुगम नहीं है। वह एक लाइन के समान है। उस लाइन से एक तरफ हटे तो राग और दूसरी तरफ हटे तो द्वेष। दोनों तरफ खाई है। खाई में गिरने की बात है। एक-एक कदम सावधान होकर चलना होगा। एक कदम भी फिसले तो नीचे गिरोगे। साधु जीवन कठिन है। बहुत कठिन मार्ग है। साधु की पोशाक पहनना बहुत आसान है। कपड़ा बदला और हो गए साधु। माथा मुंडाया और हो गए साधु। इस रूप में साधु बनना आसान है, पर साधना करना उतना आसान काम नहीं है। साधु बन जाना आसान हो सकता है किंतु साधना की ऊँचाइयों को छूने के लिए तपना पड़ता है। जैसे मक्खन को घी बनने के लिए तपना पड़ता है। उसको चूल्हे पर जलना पड़ता है। तब तक जलना पड़ता है, जब तक की सारी छाछ जल न जाए। वैसे ही हमको तपना पड़ेगा। थोड़ा भी छछेड़ा भीतर रह गया तो थोड़े दिन बाद वह बदबू मारेगा। अगर पहले से पड़े हुए घी में उस घी को डालेंगे तो पूरा का पूरा घी खराब हो जाने की आशंका रहेगी। उसमें गंध आने लगेगी।

हमारे भीतर भी यदि थोड़ा-सा मोह विकार रह गया, कषायों का विकार रह गया, राग-द्वेष का विकार रह गया तो वह गंध मारेगा। वह गंध न मारे इसलिए हमको तपना पड़ेगा। तपने पर अपनी आत्मा की शुद्धि करने में समर्थ बनेंगे। बिना तपे कुछ प्राप्त नहीं किया जा सकता।

हम आगमों का अध्ययन करें तथा देखें कि साधु जीवन में क्या मर्यादा है और कैसे जी रहे हैं। ये समीक्षा करना। नहीं तो खाओ-पीओ और मौज करो। खाना-पीना और मौज करेंगे तो यह मौज बड़ी सजा देने वाली बनेगी। आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. कभी फरमाया करते थे-

**गृहस्थी का ये टुकड़ा, लंबे-लंबे दांत**
**भजन करो तो उबरे, नहीं तो काढे आंत**

अर्थात् गृहस्थ के घर की रोटी, बनिये की रोटी आसानी से नहीं पचेगी। यदि भजन नहीं करोगे तो अंतड़ियों को खींच कर बाहर ले आएगी। शरीर है तो भोजन करना पड़ेगा। चूंकि साधु स्वयं पकाने की क्रिया करता नहीं है इसलिए उसे भिक्षचर्या से आहार प्राप्त करना होगा। उस प्रकार प्राप्त भोजन करने के साथ भजन भी करो, जिससे मन सधे। समभाव बढ़े। समभाव से हम अपनी आत्मा को भावित कर सकें। ऐसा करने पर हम समाधिस्थ होते हुए मुक्ति वरने में समर्थ हो सकेंगे।

29 जुलाई, 2021

# 7

# कितना चले, चलना है कितना

आगम की एक सूक्ति है–'आगमचक्खू साहु' अर्थात् श्रेष्ठ विचार आँख है। श्रेष्ठ विचारों को आँख कहा गया है और श्रेष्ठ आँखें आगम को कहा गया है। ये चर्म चक्षु न भी हो पर ज्ञान की आँख प्राप्त है तो ज्ञान की आँख से अज्ञान को ज्ञान किया जा सकता है।

पंडित सुखलाल जी भारत के उच्चकोटि के विद्वानों में से एक थे। वे प्रज्ञा चक्षु थे। उनको कुछ भी दिखाई नहीं देता था। उनके पास आँख थी, लेकिन उसमें ज्योति नहीं थी, फिर भी उन्होंने बहुत सारे ग्रंथों की विवेचना की। यदि आभ्यंतर चक्षु प्रकट हो जाए, अन्तर्ज्ञान प्रकट हो जाए, भीतरी नेत्र प्रकट हो जाए तो बाहरी आँखों की जरूरत नहीं रहती है। फिर बाहरी आँखों का कोई लेना–देना नहीं है। बाहरी आँख न हो तो भी काम चल सकता है। द्रव्य आँख से ज्यादा, ज्ञान की आँखों से दिखता है।

द्रव्य आँखें सीमित क्षेत्र में रहे हुए पदार्थों को ही देखती हैं जबकि ज्ञानी उससे कई गुणा अधिक देखता है। केवलज्ञानी सब कुछ देखता है। वह सम्पूर्ण चराचर को जानता–देखता है। उसे आँख, नाक, कान की आवश्यकता नहीं है। न उसे जानने के लिए मन की आवश्यकता है। वह जो जानता है केवलज्ञान की आँखों से जानता है। वह बिना कान से ही सब कुछ सुन रहा है। सब कुछ उसकी जानकारी में है। किस पदार्थ में कौन–सी गंध है, कौन–सी गंध पैदा हुई तथा कौन–सी गंध आने वाली है, कौन–सी पैदा होगी, केवलज्ञानी जानते हैं। इसी प्रकार वह यह भी जानते हैं कि कोई अपने मन में क्या विचार कर रहा है। उन्हें जानने के लिए केवली को पाँच इंद्रियों और मन का उपयोग करने की आवश्यकता नहीं रहती। उन्हें स्वयं को जानने के लिए मन की

आवश्यकता नहीं होती, किंतु कभी-कभी देवों के समाधानार्थ मन का उपयोग करते हैं। कल्पनातीत देव जब किसी विषय को जानने के लिए उद्यत होते हैं तो उनको समाधान देने के लिए वे मन का प्रयोग करते हैं। उनके द्वारा किए गए मन के प्रयोग से उन देवों का समाधान हो जाता है। केवलज्ञान होने के बाद केवली भगवान को किसी इंद्रिय का उपयोग करने की आवश्यकता नहीं होती।

दो प्रकार का ज्ञान बताया गया है-

पहला प्रत्यक्ष ज्ञान और दूसरा परोक्ष ज्ञान। प्रत्यक्ष और परोक्ष किसको कहा जाता है, इसे समझें। प्रत्यक्ष उसको कहा जाता है जहाँ सब कुछ अपने आप ज्ञान से दिखाई देता है। किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं रहती। परोक्ष ज्ञान में किसी माध्यम की जरूरत रहती है। जैसे किसी की आँखें कमजोर हो गई हों तो वह चश्मा नहीं लगाए तो उसे स्पष्ट नहीं दिखता। चश्मा नहीं लगाए तो नहीं दिखेगा या सही नहीं दिखेगा। चश्मा देखने में माध्यम बन गया। वह जो जान रहा है चश्मे के माध्यम से जान रहा है। चश्मा नहीं हो तो जानना मुश्किल हो जाएगा।

इसी तरह किसी को कम सुनाई देने लगे तो वह सुनने के लिए मशीन का उपयोग करता है। यहाँ मशीन मीडिया हो गया। माध्यम हो गया। वह सुन रहा है, किंतु उसको मशीन द्वारा सुनाया जा रहा है। एक व्यक्ति बिना मशीन के अपने आप सुन रहा है, एक व्यक्ति बिना चश्मे के देख रहा है और दूसरा व्यक्ति मशीन से सुन रहा है, चश्मे से देख रहा है। वैसे ही दो प्रकार का ज्ञान होता है। एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष।

प्रत्यक्ष के दो भेद किए गए। पहला पारमार्थिक प्रत्यक्ष और दूसरा सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष। पारमार्थिक प्रत्यक्ष यानी जो आत्मसापेक्ष है, यथार्थ है। सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष अर्थात् जिसका व्यवहार किया जाता है। जैसे मैं कह रहा हूँ। मैं आपको देख रहा हूँ। मेरा यह देखना पारमार्थिक प्रत्यक्ष नहीं है, यह सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष हैं क्योंकि आँखों के माध्यम से देखना हो रहा है। आत्मा से नहीं देखा जा रहा है। आँख माध्यम बनी हुई है। जिसमें आँखें माध्यम बनी हुई हैं, वह व्यावहारिक हो गया। प्रत्यक्ष तो है, किंतु व्यावहारिक है। इसका तात्पर्य इतना ही है कि यह व्यवहार में प्रत्यक्ष जाना जाता है, यथार्थ में तो यह परोक्ष ही है क्योंकि सीधा आत्मा से नहीं देखा जाता या जाना जाता है। किसी

दूसरी इंद्रियों के माध्यम से जो जाना जाता है, वह आत्मा के लिए परोक्ष होता है, इंद्रियों की दृष्टि से प्रत्यक्ष है। इसलिए यह सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष है।

पारमार्थिक प्रत्यक्ष के दो रूप हैं। सकल पारमार्थिक और विकल पारमार्थिक। सकल का अर्थ यहाँ संपूर्ण है इसलिए वह सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष है। केवलज्ञान परिपूर्ण है। विकल का अर्थ है कुछ कम। जैसे एक शब्द है विकलेन्द्रिय। यह शब्द किसके लिए प्रयुक्त होता है? द्वीइंद्रियादि अपूर्ण इंद्रिय वाले चलते-फिरते जीवों को विकलेन्द्रिय कहते हैं, क्योंकि वो पंचेन्द्रिय नहीं है। इंद्रियों से विकल है। उसमें पूरी इंद्रियां नहीं हैं। इसलिए उनको हम विकलेन्द्रिय कहते हैं। किसी को पाँचों इंद्रियां प्राप्त हैं किंतु चलना-फिरना नहीं होता उसे हम कहते हैं विकलांग। विकलांग का मतलब उसके सारे अंग परिपूर्ण नहीं हैं। अथवा उसके पूरे अंगों का विकास नहीं हो पाया है। अंगों में कहीं-न-कहीं बाधा है। संपूर्ण अंग बराबर काम नहीं कर रहे हैं। इसलिए उसे विकलांग कहते हैं। सकल पारमार्थिक संपूर्ण परमार्थ है। संपूर्ण सही है। कहीं से भी कोई चीज छिपी नहीं है। विकल यानी संपूर्ण से कम है। पूरा नहीं है। उसमें आते हैं मन:पर्यव ज्ञान और अवधिज्ञान। इन्हें विकल पारमार्थिक ज्ञान कहते हैं। यह विषय मैं आपके सामने क्यूं प्रस्तुत कर रहा हूँ? आनंदघन जी कहते हैं-

**चरम नयणे करी मारग जोवतां रे, भूल्यो सयल संसार**
**जेणे नयणे करी मारग जोइए रे, नेणो ते दिव्य विचार।।**

वर्तमान में मैं आगमचक्खू को दिव्य बोल रहा हूँ। आगम चक्खू का अर्थ यहाँ दिव्य अर्थात् श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ आगम ज्ञान रूप चक्षु है। आँखें तो भ्रमित भी कर सकती हैं किंतु आगम ज्ञान से हम पदार्थ को सम्यक् प्रकार से जान सकते हैं। अगर ज्ञान सही होगा तो हमको भ्रम पैदा नहीं करेगा। वह सही-सही बोध कराने वाला बनेगा। अत: ज्ञान रूपी आँख मिल जाए तो कोई चिंता नहीं है। इसलिए ज्ञान को हम आँख के रूप में मान रहे हैं। उसमें भी केवलज्ञान रूप आँख मिल जाए तब तो कहना ही क्या! अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान भी उससे जाना जा सकता है।

आनंदघन जी कहते हैं कि अभी केवलज्ञान वाला कोई नहीं है। वर्तमान में मति-श्रुत ज्ञान पर ही आधारित होना पड़ेगा। मति-श्रुत के माध्यम से भी हम अपनी समस्या का समाधान कर सकते हैं। कवि आनंदघन जी कहते

हैं कि भगवान! मैं आपके मार्ग को देखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मेरे सामने वर्तमान में केवलज्ञानी नहीं हैं। मन:पर्यायज्ञानी नहीं हैं। अवधिज्ञानी भी नहीं हैं, इसलिए मुझे वर्तमान में मति-श्रुत पर ही आधारित होना पड़ेगा। मति-श्रुत ज्ञान से बहुत प्राप्त हो सकता है। मति-श्रुत से भी बहुत सारी समस्याओं का समाधान होता है। यदि ये ज्ञान सच्चे नहीं होते तो इन्हें ज्ञान की संज्ञा नहीं दी जाती।

ज्ञान का कार्य है जानना। मति-श्रुत, अवधि ये तीन अज्ञान रूप भी होते हैं। अज्ञान के दो भेद हैं। नहीं जानना भी अज्ञान है व विपरीत जानना भी अज्ञान है। पहला अज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म के उदय भाव से होता है, जबकि दूसरे अज्ञान में ज्ञानावरणीय कर्म का तो क्षयोपशम होता है किंतु मिथ्यात्व मोह कर्म का उदयभाव रहता है, जिससे जो जानता है वह विपरीत जानता है। सही नहीं जानता। जैसे रंगीन चश्मे से सफेद वस्तु भी रंगीन दिखती है। वर्तमान में हमारे पास मति-श्रुत ज्ञान है। कोई विचार करे कि मेरे को अवधिज्ञान जब प्राप्त होगा, तब ही मैं उपासना करूँगा, फिर धर्म ध्यान में लगूँगा।

आचार्यश्री पूज्य गुरु भगवन् फरमाया करते थे कि पहले डिग्री कॉलेज में नहीं, स्कूल में पढ़ना होता है। उसमें पढ़ेंगे तो कहीं जाकर डिग्री कॉलेज में भरती किया जा सकता है। उसमें प्रवेश पा सकते हैं। यदि प्रारम्भिक ज्ञान नहीं है, स्कूली ज्ञान नहीं है तो आगे डिग्री कॉलेज में एडमिशन नहीं मिल सकता। इसलिए पहले स्कूली ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। उसी प्रकार हमें प्राप्त मति-श्रुत ज्ञान के बल पर धर्माराधन करना चाहिए। इसलिए वर्तमान युग में हम जितनी आत्मसाधना कर सकते हैं, उतनी आत्मसाधना करते हुए आगे की साधना के लिए अपने को पात्र बनाएं। स्वयं को योग्य बनाएं।

ब्यावर का विद्यार्थी ब्यावर स्कूल में पढ़कर पूना, मुंबई, नासिक कहीं पर भी डिग्री कॉलेज में प्रवेश पा सकता है। ऐसा तो नियम नहीं है कि ब्यावर के पढ़े-लिखे विद्यार्थी को भरती नहीं किया जाएगा! ऐसा कोई भेद है क्या? ऐसा कोई रूल है क्या कि ब्यावर में पढ़े विद्यार्थी को कॉलेज में भरती नहीं करेंगे?

डिग्री कॉलेज का नियम हो कि हम 80 प्रतिशत अंकों से उत्तीर्ण हुए विद्यार्थी को प्रवेश देंगे। कोई कॉलेज 70 प्रतिशत वालों को अपने यहाँ

दाखिला देता होगा तो कोई 40 प्रतिशत वालों को भी प्रवेश देता है। प्रतिशत के आधार पर ही कॉलेज में प्रवेश होता होगा। आरक्षण की नीति से कम नंबर वालों को भी कॉलेज में दाखिला मिलता है। बिना आरक्षण के नहीं। आरक्षण वालों को कम नंबर पर भी दाखिला मिल जाएगा। ऐसा हम व्यावहारिक जगत् में अनुभव करते हैं, किंतु कॉलेज में भरती होने के लिए मिनिमम पढ़ाई की आवश्यकता तो होती है। इसी प्रकार साधना के क्षेत्र में हमें मिनिमम साधना की जरूरत रहेगी, जो वर्तमान में यहाँ पर भी संभव है।

यहाँ पर हम इतनी तैयारी कर सकते हैं कि यहाँ से देवगति को प्राप्त कर फिर मनुष्य गति में जन्म ले मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। कितने पड़ाव करने पड़े?

वैसे वहाँ पहुँचने के दो पड़ाव हैं। एक देवगति और दूसरा मनुष्यगति। दूसरे दृष्टिकोण से विचार करें तो मनुष्यगति का पड़ाव तो एक ही बाकी रह गया है।

आचार्य पूज्य हुक्मीचंद जी म.सा.के लिए ऐसा कहा गया है कि वे एकभवतारी हैं। अभी उनका दो सौवां दीक्षा महोत्सव चल रहा है। ऐसा बताया जाता है कि काल धर्म प्राप्त करके वे पाँचवें देवलोक में गए। वहाँ से चवकर महाविदेह में वासुदेव के भाई बलराम के रूप में पदवी प्राप्त करेंगे। फिर साधु बनकर मुक्ति को वर लेंगे। पूज्य श्री जयमल जी म.सा.के लिए भी एकभवतारी होने का कहा जाता है। इतनी साधना वर्तमान में कहाँ हो सकती है? हम इतनी साधना इस मनुष्य जीवन में कर सकते हैं। पर इतनी साधना करने के लिए राजी हैं या नहीं हैं?

हम इतनी साधना के लिए कहीं न कहीं राजी हैं, तभी धर्माराधना के लिए तत्पर हैं। धर्माराधना कर रहे हैं। मुक्ति प्राप्त करने से पहले इस प्रकार की योग्यता हासिल करनी पड़ेगी। योग्यता हासिल कर लेंगे तो अपने आप आमंत्रण मिलेगा कि आइए आपका स्वागत है। बिना तैयारी के उसके नजदीक तक चले भी जाएंगे तो वहाँ से रिवर्स होना पड़ेगा। वहाँ आपको प्रवेश नहीं मिलेगा। स्पष्ट है कि हमारे चेहरे को देखकर, वस्त्रों को देखकर वहाँ पर प्रवेश नहीं मिलता। कोई उद्योगपति है, बहुत बड़ा राजनेता है, वकील है, डॉक्टर है तो उससे उसको कोई फायदा नहीं मिलेगा। ये सब होने मात्र से वहाँ प्रवेश

मिलने वाला नहीं हैं। किसी भी प्रकार की डिग्री से वहाँ पर प्रवेश मिलने वाला नहीं है। क्या किसी प्रकार की डिग्री प्राप्त करने से वहाँ प्रवेश मिलेगा? नहीं मिलेगा। इसलिए हमें यहाँ पर क्या करना है? हमें पुरुषार्थ करना है। हमारा पुरुषार्थ किस ओर होना चाहिए?

**'रागद्वेष पतला करो तो पहुँचो निर्वाण'**

राग-द्वेष पतला हो। कम हो। राग-द्वेष मंद हो। राग-द्वेष मन्द होंगे, पतले होंगे तो बुलावा आएगा। राग-द्वेष समूल नष्ट होंगे तो वहाँ पर आपको प्रवेश मिलेगा। इसलिए ऐसा करना है कि मेरे राग-द्वेष मंद पड़ें। वे कम हों। इसका मतलब यह नहीं है कि यह कथन भविष्य के लाभार्थ कह रहा हूँ। यदि राग-द्वेष मंद पड़ेंगे तो वर्तमान जीवन सुखी हो जाएगा। परिवार सुखी हो जाएगा। रात का अंधेरा छँटने पर ही उजाला सामने आता है।

एक रात के 12 बजे का अंधकार है। दूसरा सुबह 4 बजे का अंधकार है। तीसरा सुबह 5.30 बजे का अंधकार है। तीनों में क्या फर्क है? तीनों है तो रात का ही अंधकार! एक रात 12 बजे के समय का है, दूसरा रात 4 बजे के समय का और तीसरा 5.30 के समय का। 5.30 बजे वाले अंधेरे में आने-जाने वाले व्यक्ति को देखा जा सकता है। उसमें व्यक्ति दिख जाता है। उसके अतिरिक्त पशु-पक्षी व अन्य बहुत सारी चीजें भी दिखती हैं, जबकि 12 बजे के अंधकार में पशु-पक्षी व अन्य बहुत सारी चीजें नहीं दिखतीं। वैसे ही हमारे मोहकर्म का, राग-द्वेष का जितना पतलापन होगा, उतनी बेड़ियां शिथिल होने लगेंगी।

एक व्यक्ति को किसी भी प्रश्न का उत्तर सोचने पर झट मिल जाता है पर दूसरे व्यक्ति को प्रश्न का उत्तर ज्यादा सोचने पर भी नहीं मिलता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनसे थोड़ा-सा पूछने से ही प्रश्न का उत्तर समझ में आ जाता है। चाहे उनसे किसी भी प्रकार का प्रश्न पूछो, जबकि कुछ व्यक्तियों को उसका उत्तर समझ में नहीं आता है। उनके ध्यान में नहीं आता। कोई व्यक्ति झट से उत्तर दे रहा है और समझने वाला भी झट से समझ रहा है, ऐसे में दूसरा सोचे कि वह झट से उत्तर क्यों दे रहा है व समझने वाला कैसे समझ रहा है तो इसका उत्तर मिलता है कर्म सिद्धांत से।

ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से हमें ज्ञान की प्राप्ति होती है। हमारा

ज्ञान तभी सही होता है, जब मिथ्यात्व मोह के कर्म दलिकों में रस मंद पड़ने पर यानी सम्यक्त्व मोहनीय रूप होने पर। इसे और स्पष्टता से समझें। चश्मे में ग्लास लगे होते हैं।

मान लीजिए एक अलमारी है। उसके कपाट लकड़ी के बने हुए हैं। दरवाजे लकड़ी के हैं तो उसके भीतर रखी हुई चीजें हमें स्पष्ट रूप से नहीं दिख रही हैं। दूसरी एक अलमारी और है, जो पूरी तरह से खुली है। उसके कपाट नहीं है, दरवाजे नहीं हैं। उस पर एक पर्दा लगा हुआ है। उस पर्दे से झलकता है कि उस अलमारी में क्या है। मालूम पड़ता है कि उस अलमारी में क्या रखा हुआ है। तीसरी एक अलमारी और है, जिस पर ग्लास लगा हुआ है। उसमें रखी हुई चीज दिखती है, किंतु उसे निकालना चाहें तो निकाल नहीं सकते।

उसमें यदि शास्त्र रखे हों तो बाहर से शास्त्र दिखते हैं। कोई बाहर से हाथ डालकर निकालना चाहे तो निकाल नहीं पाएगा। नानेशरत्नम में काँच हैं। लोगों को लगता है कि खुला दरवाजा है। उससे अंदर देख पाते हैं। हम अंदर बैठे हैं। आपको दर्शन करना है, तो आप कर सकते हैं किंतु आप चरण स्पर्श करना चाहते हैं तो नहीं कर पायेंगे। वैसे ही काँच वाली अलमारी के भीतर की चीजें दिखती जरूर हैं, किंतु उसमें से सामान निकाल नहीं पायेंगे। काँच वाली अलमारी में चीजें पड़ी हुई नजर आ रही हैं, किंतु निकालने में रुकावट पैदा हो रही है।

पहला मिथ्यामोह का पर्दा है जो लकड़ी के कपाट के समान है। दूसरा पर्दा मिश्रमोह का है, जो पर्दे लगे हुए के समान हैं। तीसरे में मोह का उदय तो है पर उस उदय से आत्मा की अनुभूति हो रही है। जान तो रहे हैं, किंतु साक्षात् हमारा उनसे मिलन नहीं हो पा रहा है। जैसा आमने-सामने मिलन होता है, वैसा मिलन नहीं हो पा रहा है। मिलने में बाधा है। वो बाधा कर्म की ग्लास है। कर्म की ग्लास की वजह से कारण हम जान रहे हैं, हमें ज्ञान हो गया, किंतु साक्षात् ज्ञान नहीं हुआ, प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हुआ है। ग्लास हट गया तो केवलज्ञान हो गया।

हमने यात्रा प्रारंभ की लकड़ी के कपाट वाली अलमारी से। वहाँ से लकड़ी के दरवाजे से लेकर काँच के दरवाजे तक का हमने रास्ता तय कर लिया। पर कहाँ तक पहुँचना है?

यदि हम प्रयत्नशील बने रहेंगे और अपने कषायों को पतला करेंगे तो चीजें स्पष्ट होती चली जायेंगी। जैसे-जैसे कषायों को पतला करते हुए चले जाएंगे, वैसे-वैसे भीतर की चीजें स्पष्ट होती हुई नजर आएंगी। स्पष्ट होती हुई चली जाएंगी। अत: यह नहीं सोचें कि वर्तमान में मोक्ष होता ही नहीं। केवलज्ञान होने वाला नहीं है। फालतू में एबीसीडी रटकर क्या करना। बाद में भूल जाएंगे। ऐसी नकारात्मक सोच उचित नहीं है क्योंकि जरूरी नहीं है कि एबीसीडी भूल ही जाएं। हमारे द्वारा रटी गई चीजें कभी भी काम में आ सकती हैं। ऐसा नहीं है कि स्कूल में पढ़ी हुई एबीसीडी कॉलेज में काम नहीं आएगी। स्कूल की पढ़ाई कॉलेज में भी काम आती है। यदि स्कूल की पढ़ाई हमारे भीतर तरोताजा रहेगी तो आगे चलकर काम आयेगी। वैसे ही यहाँ हम जितनी भी साधना करेंगे वह हमारे काम की होगी। वह बेकार जाने वाली नहीं है। ये साधना हमें आगे तक ले जानी वाली बनती है।

हमारे सामने इसमें रुकावट के दो बिंदु आते हैं। पहला आरंभ और दूसरा परिग्रह। हम आरंभ से बचने की कोशिश करें। संग्रह से बचने की कोशिश करें। इन दोनों से बचाव करें तो हमारी साधना का पक्ष सुदृढ़ बनेगा। परिणामस्वरूप मोह-ममत्व से बहुत बचाव हो जाएगा। जितना हमारा परिग्रह बढ़ेगा, उतना ही मोह-ममत्व, लोभ बढ़ेगा। इसलिए संग्रह नहीं करना। संग्रह बासी खाने के समान है। आप बासी खाते हो वह छोड़ दो। बासी नहीं खाना।

मैं भगवती सूत्र का अध्ययन कर रहा था। उसमें तामली तापस का वर्णन आया है। तामली एक सेठ था। धनाढ्य सेठ था। उसके घर में सोना, चाँदी, हीरा, पन्ना इत्यादि का अंबार था। सभी प्रकार के रत्नों के भंडार भरे हुए थे। एक रात्रि में उसकी नींद खुल गई। उसके मन में विचार चलने लगा कि मैं क्या कर रहा हूँ।

क्या आपकी भी कभी ऐसी नींद खुली? क्या आपको भी कभी ये विचार आया कि मैं क्या रहा हूँ? तामली तापसी को उत्तर मिला कि धन, सोना, चाँदी, हीरा-पन्ना आदि को बढ़ा रहा हूँ। ये सारे बढ़ाते जा रहा हूँ। ऐसा सोचते हुए उसके भीतर ये प्रश्न खड़ा हुआ कि क्या मैं इन सबको बढ़ाने में ही अपनी जिंदगी लगा दूँ? ये जो मिल रहा है, पूर्व की पुण्यवाणी के योग से मिल रहा है। क्या इस बासी खाने में ही लगा रहूँ या इससे निकलकर कुछ नया करूँ।

क्या हमने कुछ नया करने का विचार किया? कौन जाने हम कितने वर्ष पुरानी कमाई खा रहे हैं। इस जन्म में पुण्य पैदा हुआ वो भोग रहे हैं या बासी जो इकट्ठा कर रखा है उसे खा रहे हैं। पता नहीं कितने दिन खाओगे। यदि ऐसे ही खाते रहोगे, तो ध्यान रखना जिस दिन बैलेंस बिगड़ जाएगा, उस दिन बैंक में आपका चेक स्वीकार होने वाला नहीं है। आज जितनी भी कमाई कर रहे हो, जितना धन उछाल रहे हो, ये सारे बासी हैं। पुराने पुण्य से मिला हुआ है।

तामली सेठ विचार करता है कि मेरे यहाँ सोना, चाँदी, रत्न आदि खूब पड़े हैं, किंतु ये पूर्व की पुण्यवाणी के योग से मिल रहे हैं, भविष्य के लिए मैं क्या कर रहा हूँ? वह यह भी सोचता है कि यह पुण्यवाणी खर्च करते-करते एक दिन पूरी हो जाएगी, उसके बाद क्या होगा? यह किसी सीएम से पूछो कि पाँच और दस साल पूरे हो गए उसके बाद क्या करोगे?

दो-तीन दिन पहले पेपर की एक कटिंग आई थी। उसमें बताया गया है कि राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया से किसी कर्मचारी ने कहा कि लकड़ी का डबल बेड बना लेते हैं जिस पर गद्दे डाल देंगे। उससे आपको आराम महसूस होगा। मोहनलाल सुखाड़िया ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया कि आज मैं मुख्यमंत्री हूँ तो ये सब ऐशोआराम कर लूँगा। डबल बेड की सुविधा ले लूँगा, गद्दे पर सो जाऊँगा, किंतु कल मुख्यमंत्री के पद से हटा तो ये सब सुविधा कहाँ से ला पाऊँगा। जो व्यक्ति ज्यादा आराम देखकर, सुख-सुविधा देखकर उसमें रम जाता है, बाद में वह सुविधाएं नहीं मिलने पर वह दुःखी हो जाता है।

मोहनलाल सुखाड़िया जैसी वृत्ति में जीने वाले व्यक्ति कभी दुःखी नहीं होते क्योंकि वे सीमित रहते हैं, मर्यादाओं में रहते हैं। मर्यादा में रहने वाला व्यक्ति दुःखी नहीं हो सकता क्योंकि वह जैसी स्थितियां मिलती हैं उसमें ही रह जाता है, जी लेता है। आज सुविधाएं हैं तो सुविधाओं में जी लेता है और कल सुविधाएं हट जाएंगी, तो वह जैसी स्थिति होगी उसमें जी लेगा पर दुःखी नहीं होगा।

जिसने जीवन में गुलछर्रे उड़ाए हैं। वह गुलछर्रे उड़ाना बंद हो जाने के बाद सोचता है कि अब लोगों को कैसे मुँह दिखाऊँ। ऐसे में वह जीने से बेहतर मर जाना ही ठीक समझता है। ऐसी स्थिति में मनःस्थिति बदल जाती है।

एक बात गाँठ बाँध लेना, मरना किसी समस्या का समाधान नहीं है। जो आत्महत्या करता है वह आगे के दु:ख का रास्ता खोल लेता है। उसे जन्मों-जन्मों तक दु:ख भोगना पड़ेगा। एक पुस्तक में पढ़ा था कि जो एक बार आत्महत्या करता है वह पाँच-सात जन्मों तक आत्महत्या करने वाला बन जाता है। यह आगम की बात नहीं है। आत्महत्या कोई सीधा रास्ता नहीं है। यह अज्ञान से भरा हुआ रास्ता है। वह अंधेरा वाला रास्ता है। ये सोचना व्यर्थ है कि उस अंधेरे में जाने वाला सुखी हो जाएगा। ऐसी कल्पना व्यर्थ की कल्पना है। जिसने अपनी समझ को सही बना लिया वह सुखी हो जाएगा। जिसने अपनी समझ को सही नहीं बनाया वह दु:खी रहेगा। बहुत लोग इसलिए दु:खी हैं कि मेरे पास कम संसाधन हैं या फिर मेरी कठिनाई ज्यादा है। ऐसे लोग देखें कि उनसे कम संसाधनों में जीने वाले लोग हैं या नहीं! अथवा उनसे अधिक कठिनाइयों का सामना लोग कर रहे हैं या नहीं! ऐसे लोगों को देखेंगे तो लगेंगे कि हम सफल हैं। किंतु वे देखते हैं अपने से ऊपर वाले को देखते हैं रतन टाटा को, अंबानी को, अडाणी को। उन सभी को देखते हैं तो मुँह में लार आती है कि उनके समान बन जाऊँ।

**हे प्रभु मेरी एक पुकार, मैं भी बन जाऊँ अणगार**

जब किसी कहानी की बात होती है तो आवाज अलग होती है। अभी आपकी आवाज में बुलंदी नजर नहीं आई।

(कुछ लोग बोलते हैं- हे प्रभु मेरी एक पुकार, मैं भी बन जाऊँ अणगार)

जिस घर में सुख रहता है, वहाँ हँसने का मौका मिलता है। जिस घर में दु:ख का माहौल होता है उस घर में जाने क्या हालत होती होगी? मैं बोल रहा हूँ भाइयों से तो बहनें सोचती होंगी कि हमें भी समान अधिकार मिलना चाहिए। भाई बोल सकते हैं या नहीं? बाइयों को यहाँ पर बोलना है या फिर घर पर बोलना है। यहाँ बोलना है तो अभी बोलो-

**हे प्रभु मेरी एक पुकार, मैं भी बन जाऊँ अणगार**

बहनें बहुत समझदार हैं। कैसे? बहनें, भाइयों से इसलिए धीरे बोल रही हैं क्योंकि वे पुरुषों की इज्जत करती हैं। वे पुरुषों से ज्यादा आवाज में बोलेंगी तो कहीं पुरुषों की मूँछ न कट जाए। बहनें ही घर की इज्जत होती हैं। वो

चाहें तो एक मिनट में घर की इज्जत को नष्ट कर सकती हैं। एक मिनट में घर की इज्जत चली जाती है। अगर महिला ठान ले कि घर की इज्जत को सड़क पर लाना है तो ज्यादा टाइम नहीं लगेगा। वे जैसे इज्जत को सड़क पर ला सकती हैं वैसे ही वे घर की इज्जत को ऊँचाई भी दे सकती हैं।

आपके इज्जत की चाबी क्या महिलाओं के पास है? आपकी इज्जत का किसने ध्यान रखा?

पुरुष व महिलाएं एक-दूसरे को समझकर चलेंगे तभी परिवार की गाड़ी सही चलेगी। यदि स्पीडब्रेकर आ जाए तो स्पीड पर ब्रेक लग जाते हैं। छोटी-मोटी सड़कों पर स्पीडब्रेकर लगे रहते हैं। गति धीमी करने के लिए स्पीडब्रेकर लगे हुए रहते हैं। यदि आपका बैलेंस सही नहीं रहा तो गाड़ी कहाँ चली जाएगी? हाईवे पर स्पीडब्रेकर प्रायः नहीं रहते। वहाँ पर गाड़ियाँ सरपट दौड़ती हैं।

तामली सेठ ने विचार किया कि मुझे बासी नहीं खाना है। मुझे वर्तमान में कुछ कमाई करनी है, ताकि आने वाले जन्मों में भी किसी का मोहताज नहीं बनूँ। उसके मन में विचार आया कि जब तक यह पुण्यवाणी मौजूद है तब तक सोना, चाँदी, माणक-मोती आदि से भंडार भरे पड़े हैं। उनके रहते हुए मुझे आगे का पुरुषार्थ कर लेना चाहिए। एक अरबपति को लाखों का लाभ होता है। कभी लाखों का घाटा भी होता है। एक करोड़पति को जितना लाभ होता है, उतना घाटा भी हो सकता है। हजार रुपए कमाने वाले व्यक्ति को हजारों का घाटा हो सकता है। करोड़ों, अरबों वालों को यदि घाटा होता है तो वे इतनी चिंता नहीं करते, लेकिन हजार कमाने वालों को चिंता होती है।

तामली सेठ विचार करता है कि जब तक मेरे पास संपत्ति मौजूद है तब तक मुझे आगे का विचार कर लेना चाहिए, जिससे फिर कभी दुःखी न होऊँ। पुण्यवाणी रहेगी तो दुःख नहीं रहेंगे। इसलिए उसने विचार किया कि सुबह होते ही काष्ठपात्र बनाना है तथा पूरे परिवार को आमंत्रित करना है। उन्होंने काष्ठपात्र बनाया और अपने सभी परिजनों, रिश्तेदारों तथा व्यापारियों को सूर्योदय से पहले आमंत्रित किया। आमंत्रित कर सबको भोजन कराया। भोजन कराने के बाद सबको सम्मानित किया। सबको वस्त्र-आभूषण देकर

उनसे कहने लगा कि आपने आज तक हर छोटा-बड़ा कार्य मुझसे पूछ कर किया है वह चाहे पारिवारिक हो या आध्यात्मिक, व्यावहारिक हो या सामाजिक, किंतु अब मैं निवृत्त हो रहा हूँ। आज के बाद मुझसे कुछ नहीं पूछना। सेठ कहता है कि आज से मैं ज्येष्ठ पुत्र को अपनी जगह स्थापित कर रहा हूँ। अत: अब जो पूछना हो आप इससे ही पूछना।

तामली सेठ कहता है कि पृच्छा के लिए अब मेरे पास आने की आवश्यकता नहीं है। तामली सेठ ने इस प्रकार कह कर सारे परिवार वालों के सामने अपने ज्येष्ठ पुत्र को अपना स्थान दिया। उसे जैन धर्म का ज्ञान नहीं था। अत: वह तापस मठ में दीक्षित हुआ। उसी के साथ उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक मेरी जिंदगी रहेगी तब तक मुझे दो-दो दिन का उपवास करना। पारणे में केवल भात गोचरी में लाना है। केवल चावल गोचरी में लाना है। इतना ही नहीं उन चावलों को 21 बार धोकर सेवन करना कल्पता है।

एक बच्चा पाँच-छह वर्ष का था। वह गुरुदेव के पास आया और बोला कि गुरुदेव आप मुझे उपवास करा दो। गुरुदेव ने कहा, क्यों! वह बोला उपवास करूँगा तो मम्मी दूसरे दिन पारणे में मुझे हलवा खिलाएगी।

उसे उपवास किसलिए करना है?

उसे इसलिए उपवास करना है कि उपवास करूँगा तो मम्मी हलवा खिलाएगी। आज उपवास होगा तो कल हलवा बनेगा, ये देखकर कुछ लोग उपवास कर लेते हैं। हमें हलवा खाने के लिए उपवास नहीं करना है। हमें तपस्या अपने कषायों को पतला करने के लिए करनी है। तामली सेठ ने तापस प्रव्रज्या स्वीकार की। उसने साधना का मार्ग भी अपनाया किंतु ज्ञान सम्यक् नहीं होने से यथोचित आत्म शुद्धि नहीं हो पाई। हम कपड़ों पर साबुन का प्रयोग किसलिए करते हैं? आप कौनसा साबुन पसंद करेंगे? ज्यादा कीमत वाला साबुन पसंद करेंगे या जो कपड़े से मैल हटा दे वह? कौन-सा करेंगे?

जो साबुन मैल को काट दे। कपड़ों पर रगड़ने से जो मैल को हटा दे। वैसे ही हमारी तपस्या होनी चाहिए।

तपस्या निर्जरा के लिए होती है। आत्मा की चादर को उजला बनाने के लिए होती है। आज प्रसंग आया और बोल दिया। सारे तप निर्जरा के लिए,

कषायों को पतला करने के लिए तथा आत्माओं की चादर को उजला करने के लिए किए जाते हैं। ऐसा करेंगे तो कषाय मंद पड़ेंगे। ज्ञान व साधना प्रखर होगी। हमारे ज्ञान की शक्ति प्रखर बनेगी। इतना ही कहते हुए अपनी वाणी को विराम।

2 अगस्त, 2021

# 8

# भक्ति करें मन भाव से

**संभवदेव ते धुर सेवो सवे रे, लई प्रभु सेवन भेद**

अजितनाथ भगवान की स्तुति करते हुए जिनेश्वर देवों के मार्ग की पहचान करने का प्रयत्न करने को कहा गया था। संभवनाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहा गया है कि सभी संभवनाथ भगवान की सेवा करें। उनकी उपासना करें। किंतु हम यह सब करें, उससे पहले यह विचार करना है कि उपासना कैसे की जाती है, सेवा और भक्ति कैसे की जाती है।

उस पर विचार करने से पायेंगे कि भक्ति करने के बहुत सारे तरीके हैं। भक्ति के अलग-अलग भेद हैं। द्रव्य से भी भक्ति की जाती है। किसी क्षेत्र-विशेष में भी भक्ति कर ली जाती है और समय विशेष (काल) में भी भक्ति की जाती है, किंतु भक्ति तब तक नहीं हो पाती, जब तक मन उसके साथ नहीं जुड़ता। जब तक मन में भाव पैदा नहीं होते, तब तक सेवा नहीं हो पाती। सेवा कहें, भक्ति कहें या फिर श्रद्धा कहें, ये सभी प्राय: एकार्थक हैं। मन में श्रद्धा होगी तो सेवा होगी। मन में श्रद्धा नहीं होगी तो सेवा नहीं हो पाएगी। मन भक्ति में तन्मय नहीं होगा, भक्ति से नहीं जुड़ेगा तो वह अलग-थलग रह जाएगा। मन से नहीं जुड़ने से शरीर से तो सेवा होगी, किंतु मन में खीझ भी पैदा होगी। मन दु:खी होगा कि क्या यह सब करना पड़ रहा है। मात्र तन से जो सेवा होगी, वह लाचारीवश होगी। विवशता से जो होगी वह सही सेवा नहीं हो पाएगी। जहाँ भाव से सेवा होगी वहाँ श्रद्धा झलकेगी।

जब हमारे भीतर अटूट श्रद्धा होगी तो मन स्वत: ही राजी होगा। जब श्रद्धा नहीं होगी तो मन दु:खी रहेगा। इसलिए हमें सेवा का मौका मिला है तो सेवा करनी है। कभी-कभी सेवा-भक्ति लोभ और लालच से भी होती है। जो

वस्तुतः सेवा-भक्ति नहीं है।

गुरुदेव एक आख्यान सुनाया करते थे कि एक सेठानी के घर में नई-नई बहू आई। सेठानी के घर का सारा कब्जा धीरे-धीरे बहू के हाथ में आ गया। सेठानी वृद्धावस्था में थी तो बहू के हाथ में सारे घर की देख-रेख आ गई। बहू ही सब कुछ करने लगी। सारी सत्ता उसी के हाथ में आ गई। घर के सभी सदस्य व कर्मचारी उसी के अधिकार में थे। घर-परिवार के सारे सदस्य व कर्मचारी उसके अनुसार कार्य करने लगे। सारे कार्य उसके अनुसार होते। ऐसा आपने भी अनेक घरों में देखा ही होगा कि बूढ़ों को घर के सदस्य बोझरूप समझते हैं। कई लोगों के मुँह से सुनने को भी मिलता है कि बूढ़े या बुढ़िया से हमारा पीछा छूटे। हमारा बोझ हलका होवे। कब मारो खाटलो खाली हो जाए। कब मारो साथ छोड़े। कब हमें शांति में जीने देंगे। किंतु मरना और जीना किसी के हाथ में नहीं होता। हम कब तक जीएंगे और कब मर जाएंगे ये हमें भी नहीं पता।

कई लोग चाहते हैं कि वे मर जाएं, किंतु वे मरते नहीं लंबे समय तक जीते हैं। बिल्ली के चाहने पर छींका टूट जाए ऐसा तो हो नहीं सकता। उसके चाहने से छींका नहीं टूटता। मौत जब आएगी तब उसे कोई बचा भी नहीं सकता। कोई चांस ही नहीं है बचा पाने का। मरेगा तो जरूर मगर मरेगा अपनी मौत से। दूसरे के सोचने से नहीं मरेगा।

नई बहू का सेठानी के साथ व्यवहार अच्छा नहीं था। उसने सेठानी के लिए दरवाजे पर खाट बिछवा दी। वहीं पर उनको खाना दिया जाता था, वहीं पर पानी दिया जाता था। एक तरह से सेठानी को घर से निकाल दिया गया। उस घर में कोई कमी नहीं थी। घर में किसी भी चीज की कमी नहीं थी। पाँच-सात मेहमान आ जाएं तो खाना खा सकते थे। आराम से रह सकते थे। मेहमान आते तो उनको मिठाइयाँ खिलाई जाती थीं। उनका बड़े चाव के साथ आदर करते थे। उनकी पूरी तरह से सेवा बजाई जाती। उस घर में कमी थी तो दिल की। वह भी केवल सेठानी के लिए।

घर के सदस्यों के साथ यह विचित्र बात थी। घर में अनबन हो जाना एक बात है। उससे अलगाव का भाव बन जाना संभव है। उसके प्रति हीन भावना बन जाना भी संभव है। उस सदस्य के प्रति मन में अरुचि भाव पैदा हो जाना भी संभव है। पर सेठानी के साथ जो व्यवहार हो रहा था वह अप्रत्याशित

था। सेठानी का अपने परिवार के साथ या बहू के साथ ऐसा कोई व्यवहार नहीं था, जिससे कि उसके साथ उतना रूक्ष व्यवहार किया जाता, किंतु पता नहीं बहू का सास के साथ किस जन्म का वैर था, कौन-से जन्म की दुश्मनी थी जो उसके साथ ऐसा व्यवहार किया जाता था।

सेठानी की एक सहेली थी सुनारन। वह एक दिन सेठानी के घर पहुँची अपनी सहेली का हाल-चाल, साता पूछने के लिए। सेठानी ने अपनी सहेली से कहा, आज तुम यहाँ! तो सुनारन ने कहा कि मैं तुम्हारी हालत पूछने के लिए आ गई। तुम्हारी दशा देखने के लिए यहाँ आई हूँ। देखने आई हूँ कि मेरी सहेली कैसी है। सेठानी की हालत देखकर सुनारन ने कहा, ऐसा कैसे हो गया! तेरे घर में तो कोई कमी नहीं है। सारी सुविधाएँ हैं फिर तुम्हारे साथ ऐसा कैसे हो गया! तो उस सेठानी ने कहा कि मेरे कर्मयोग हैं। मैंने कभी किसी को सताया होगा, उसी का योग मुझे भोगना पड़ रहा है।

अयोग्य व्यक्ति के हाथों जब सत्ता आ जाती है तो बूढ़ों की ही क्या अन्यों की भी हालत पतली हो जाती है। उस घर के नौकर-चाकर सोचते हैं कि अगर हमने कुछ कर दिया तो हमारी हालत गंभीर हो जाएगी, कुछ कर दिया तो सेठानी हमारी खाट खड़ी कर देगी, अत: वे भी कुछ कर नहीं पाते। मन में दर्द होते हुए भी वे कुछ करने में समर्थ नहीं हो पाते।

सुनारन ने देखा कि हालत तो काफी गंभीर है। बेचारी इतना दु:खी जीवन जी रही है। सुनारन ने कहा कि तुम्हारे पास कोई छोटा-मोटा आभूषण है क्या? सेठानी ने जवाब दिया कि मेरे पास एक छोटी-सी अंगूठी रह गई है। सुनारन ने कहा कि मुझे दे दो, मैं कोई तरकीब ढूँढती हूँ। सुनारन ने विचार किया और एक छोटी-सी पेटी बनाकर उस पर हलकी-सी सोने की परत चढ़ा दी। उस पर झोल चढ़ा दिया और उसके भीतर कुछ गोल-गोल पत्थर डाल दिए। पत्थर के छोटे-छोटे कंचे डाल दिए। उनको पेटी में रखकर उस पेटी पर एक छोटा-सा ताला लगा दिया। सेठानी, सुनारन की तरकीब अनुसार समय-समय पर उस पेटी को घुमाया-फिराया करती और फिर उसको छिपा दिया करती। कभी एक तरफ रखती तो कभी दूसरी तरफ।

उस सेठानी की एक नहीं, चार बहुएं थीं फिर भी कभी भी एक बहू का भी ध्यान सेठानी की सेवा की ओर नहीं जाता था। एक दिन एक बहू ने उस

पेटी को देखा और रात में अपने पति से यह बात बताई। वह कहने लगी कि माँ जी के पास एक पेटी है। उस पेटी को वह छुपाकर रखती हैं। यह बात आज तक किसी को पता नहीं है। यह बात बताने के बाद उसके पति ने कहा कि तुम माँ जी की ज्यादा से ज्यादा सेवा करो तो वो पेटी तुम्हारी हो सकती है। वो पेटी माँ जी तुम्हें दे सकती हैं क्योंकि सेवा से ही मेवा मिलता है। यदि सेवा करेंगे तो ही हमको मेवा मिलेगा।

इसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी बहू ने भी सेवा करनी शुरू कर दी। चारों दिन-रात सेवा करने लगी। चारों सोचने लगीं कि पेटी किसको मिलेगी। इस होड़ में माँ जी की खूब सेवा होने लगी। माँ जी पेटी को इधर-उधर करे तो उस पेटी से आवाज आती तो बहुएं सोचती हैं कि उस पेटी में कुछ है। 'कांई है डायमंड या भाटा' मालूम पड़ जाएगा। माँ जी सुनारन को सौ-सौ दुआएं देने लगीं कि भला हो तुम्हारा जो तुमने मेरा बुढ़ापा सुधार दिया।

मुझे बात याद आ गई पुरण बाबा महाराज की, जिनकी दीक्षा ज्ञानगच्छ में हुई थी। सादड़ी सम्मेलन में पाँच प्रतिनिधियों में से एक प्रतिनिधि थे। वे श्रमण संघ में रहे। बुढ़ापे में सेवा का प्रसंग आया, गणेशलाल जी म.सा. ने अपने सेवाभावी संत श्री करणीदान जी महाराज व श्री घेवरचंद जी महाराज को उनके साथ रखा। उन्होंने उनकी ऐसी सेवा बजाई कि पुरणमल जी महाराज कहने लगे नारायण ने मेरी जिंदगी सुधार दी। वैसे ही माँ जी उस सुनारन को दुआएं दे रही हैं कि उसने मेरी जिंदगी सुधार दी। मेरा बुढ़ापा सुधार दिया। भला हो उस सुनारन का जिससे अब बहुएं और सारे बेटे मेरी सेवा के लिए खड़े रहते हैं।

एक दिन माँ जी के शरीर से साँसें निकल गईं। लाश आँगन में पड़ी है। सब लोगों की दृष्टि लाश को छोड़कर उस पेटी पर गई। तभी सुनारन आ गई। सुनारन ने कहा कि लाश पड़ी है, अभी इस पेटी को अलमारी में बंद कर दो। उस पेटी को अलमारी में रखकर के ताला लगा दिया गया। सुनारन ने कहा कि जब आप चारों भाई साथ होंगे तो ही ये पेटी खोलना। पहले अंतिम संस्कार करो उसके बाद सब साथ में पेटी खोलना कहते हुए वहाँ पहुँची जहाँ बहुएं रो रही थीं। बहुओं को चुप कराते हुए सुनारन कहने लगी-

**छाना रो जी छाना रो, मती लगाओ जोर**
**सासुजी रे पेवटी में गुल गुचिया ने बोर**

बेटों ने माँ जी का 12वाँ, 13वाँ दिन अच्छे से कर दिया। माँ जी के मरने के बाद 12वें, 13वें पर उसके बेटों ने खूब पैसे खर्च किए। उन सबकी नजर पेटी पर थी। वे सोच रहे थे कि माँ जी ने खूब धन छुपा रखा है पेटी में।

चारों बेटों ने उस पेटी को एक-साथ रहकर खोला तो उसमें पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े निकले। कंचे निकले। उनको देखकर सभी बेटों तथा बहुओं ने माथा पकड़कर रोना शुरू कर दिया। सभी कहने लगे कि माँ जी तुमने यह क्या कर दिया! माझी मुई मोए मारगी, दिया झोंपड़ा फूँक। हमने तो सोचा कि पेटी में खूब सारा धन होगा, अब क्या करें! हमने तेरे 12वें, 13वें पर खूब सारा धन खर्च किया। खूब माल-मिठाई बनाई। खूब सारे लोगों को बुलाया। गाँव वालों को बुलाया। सभी को खूब मिठाइयाँ जिमायीं।

**'अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत'**

माँ की सेवा किसलिए हुई?

उस पेटी के लिए हुई। समय हाथ से चले जाने के बाद वापस नहीं आता। लोभ के कारण, धन के कारण मन में सेवा की रुचि लगी थी। लोग धन के लालच में अपने माता-पिता तथा बुजुर्गों की सेवा करते हैं। यह सेवा बुजुर्गों की नहीं, धन की होती है। जैसे सेठानी के बेटों और बहुओं ने की।

उनकी आँखें कहाँ गड़ी हुई थीं?

सबकी आँखें पेटी पर गड़ी थीं। सब सोच रहे थे कि पता नहीं माँ जी पेटी किसको देगी? इस लोभ, लालच के कारण माँ जी की सेवा शुरू की गई। यह सच्ची सेवा नहीं थी। ये सेवा पेटी के लालच से थी।

आनंदघन जी कहते थे-

**संभव देव ते धुर सेवो सवे रे...**

तीर्थंकर संभवदेव की सेवा सभी करो। प्रभु सेवा व गुरु सेवा शुद्ध भाव से निरंतर हो, किंतु वह सेवा किसी प्रकार के लोभ-लालच से ग्रसित नहीं होनी चाहिए। किसी भौतिक कामना से नहीं होनी चाहिए। भौतिक कामना से सेवा करेंगे, भक्ति करेंगे तो वह परिणाम नहीं मिलेगा जो मिलना चाहिए।

**भजमन भक्ति युक्त भगवान, भरोसा क्या जिंदगानी का।**
**क्या जिंदगानी का, भरोसा क्या जिंदगानी का।। भज मन...**

नाना गुरु आनंदघन जी की चौबीसियाँ फरमाया करते थे। विनयचंद

जी की फरमाते थे। व्याख्यान के पूर्व उनका उच्चारण किया करते थे। जीवन की अंतिम अवस्था में दो-तीन गीत उनके बड़े पसंदीदा हो गए। एक तो 'भजमन भक्ति युक्त भगवान' दूसरा, 'भोला आत्मा रे दाग लगाईजे मती।' ऐसे ही दो-तीन गीत बहुत नजदीक हो गए। व्याख्यान के पूर्व भी गाने लगे थे।

**'भजमन भक्ति युक्त भगवान...'**

भगवान का भजन करना है तो भक्ति से करो। एकाग्रचित्त होकर करो। ध्यान को इधर-उधर न लगाकर भक्ति से करो। उसमें पूरा मन लगाकर, अपनी आत्मा से करो। भक्ति धन के लिए, लोभ के लिए, कुटुंब-कबीले के लिए नहीं करनी चाहिए। अपने दुःख-दर्द दूर करने के लिए भक्ति नहीं करनी चाहिए। मन में कभी ऐसा मत सोचना कि भक्ति करने से घर की अशांति दूर हो जाएगी। घर में धन आने लग जाएगा। घर शुद्ध हो जाएगा। घर में कलह नहीं होगी। इन सब के लिए भक्ति नहीं है। मन में ऐसा कभी मत सोचना कि व्यापार नहीं चल रहा है तो भक्ति करने से व्यापार चल जाएगा। इस प्रकार की भक्ति करना गलत है। यह रास्ता सही नहीं है। भक्ति करो तो बिना स्वार्थ, बिना लोभ तथा बिना लालच से करो। लोभ-लालच से भक्ति करने से आपका काम नहीं बनेगा। ऐसी भक्ति आप भले ही करते रहो आपको उसका सही परिणाम नहीं मिलने वाला है।

एक नेम प्लेट पर डॉक्टर आशुतोष लिखा था। एक गाँव का एक आदमी उस डॉक्टर के पास चला गया और कहने लगा कि डॉक्टर साहब मेरा पेट सही नहीं है, मेरा पेट बहुत दर्द कर रहा है, आप मेरा दर्द ठीक कर दें। आपकी जो फीस है वह ले लें पर मेरा दर्द दूर करने के लिए जल्दी से जल्दी इलाज शुरू कर दें। उस आदमी ने कहा कि मैं शरीर का डॉक्टर नहीं हूँ। मैं तुम्हारे रोग का इलाज नहीं कर सकता। वह आदमी उस डॉक्टर के पास पेट दर्द के इलाज की गुहार कर रहा है पर उस आदमी ने साहित्य में डॉक्टरी की है इसलिए उसके पेट का इलाज नहीं कर पाएगा। उसने साहित्य में डॉक्टरी की उपाधि प्राप्त की है। वह आदमी डॉक्टर से कहता है कि मैं गरीब हूँ साहब, मेरे पेट का इलाज शुरू कर दो। चाहे आपको जो पैसा लेना है मैं देने के लिए तैयार हूँ। वैसे ही हम भगवान से कहते हैं, संतों से कहते हैं कि मुझे इतना धन दे दो। अब साधु के पास 'कठे धन पड़ियो है', साधु कने कठे सोनो पड़ियो है।

साधु के पास पाँच रत्न हैं- अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। साधु हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म व परिग्रह से सर्वथा दूर रहते हैं। वे मोह-ममता बढ़ने वाला या धन पाने का मंत्र बताएं तो उनके अपरिग्रह महाव्रत में दोष लगेगा। यदि कोई साधु सोचे कि मंत्र बताने से, ऐसा करने से भक्त राजी हो जाएगा तो भक्त तो राजी हो जाएगा पर महाराज के महाव्रतों का क्या होगा! वे तो दोषी हो जाएंगे। भक्त का तो भला हो गया पर साधु का क्या होगा! इसलिए साधु के लिए ऐसे किसी कार्य में लगना दोष का कारण है। फिर भी लोग आकर बोलते हैं कि बाव जी एक बार हाथ ऊँचो कर दो।

किसलिए करूँ भाई! कल्याण के लिए या अकल्याण के लिए! तुम कल्याण चाहते हो या अकल्याण! साधुओं के शरण में अपना कल्याण चाहते हो या अकल्याण चाहते हो, मंगल चाहते हो या अमंगल!

मंगल किसे कहते हैं?

जो सदा टिके वो मंगल है। जो सदा नहीं टिकता वह अमंगल है। धन ने आपको रुलाया या धर्म ने रुलाया। धन, परिवार जैसी चीजें रुलाने वाली होती हैं। मंगल धर्म है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह से धर्म की आराधना होगी। यह आराधना एकमात्र वीतरागता प्राप्त करने के लिए होनी चाहिए न कि भक्त बढ़ाने के लिए। साधना, लालच बढ़ाने के लिए होनी चाहिए या घटाने के लिए? लोभ बढ़ाने के लिए होनी चाहिए या घटाने के लिए? सोचें और विचार करें। विचार केवल आपको ही नहीं हमको भी करना है। हमें यह सोचना है कि हमने वेश किसलिए पहना?

आचार्य महाराज के पास शिष्य आ रहा है। उसकी मनोकामना पूरी हो सकती है। अपना मन पवित्र होता है तो कर्म भी झड़ते हैं। सातावेदनीय का योग बनता है तो यथोचित संसाधनों का भी लाभ होता है। साधना भौतिक लाभ के लिए नहीं करना है। करना है तो सच्चे मन से करना है। अपनी भावना से करना है। कर्मों की निर्जरा के लिए करना है। ऐसा करना ही लाभकारी होगा। कोई भी व्यक्ति लोभ के वशीभूत होकर धर्म आराधना करेगा तो उसको भौतिक लाभ कभी हो भी जाय पर आत्मशांति नहीं मिलेगी।

भक्ति में, धर्माराधना में भौतिक पदार्थों की कामना भक्त को ऊँचाइयाँ नहीं दिला पाएंगी। जैसे कई पक्षी बहुत ऊँचाई तक उड़ जाते हैं। वे पंखों के बल

पर जाते हैं। यदि उनका पंख पानी से गीला हो जाए, उनका पंख पानी से भारी हो जाए तो वे आकाश में उतनी ऊँचाई तक उड़ नहीं पाएंगे। उड़ान भरेंगे तो नीचे गिर जाएंगे। इसलिए उड़ने से पहले वे अपने पंखों से पानी निकाल देते हैं। अपने पंखों से पानी को झटक देते हैं। पंखों को पानी से मुक्त करके फिर पक्षी आकाश में उड़ान भरते हैं। वैसे ही यदि हमारी भक्ति कामना रूपी पानी से भारी हो गई होगी तो हम ऊँचाइयों को स्पर्श नहीं कर पाएंगे। उसको छू नहीं पाएंगे। अत: कामना के पानी को झटक कर, उससे मुक्त होकर भक्ति करें।

कपिल केवली का आख्यान बहुत प्रसिद्ध है। लोभ-लालच के कारण से उसकी क्या हालत हुई? वो दो मासा लेने के लिए गया और पकड़ा गया। आरक्षकों ने उसे राजा के सामने प्रस्तुत किया। अपराध करने वाले को दंड देने का काम राजा का है। राजा ने उसका हुलिया तथा लक्षण देखे। उसकी बॉडी लैंग्वेज को देखा तो राजा ने सोचा यह पुश्तैनी चोर तो नहीं लगता है। यह जो कह रहा है वह सत्य लगता है। दो मासा सोने के लिए निकला होगा। राजा को सच्चाई मालूम हुई तो राजा ने कहा कि मैं तुम्हारी सच्चाई पर खुश हूँ। माँग लो जो तुम्हें माँगना है। उसने कहा, थोड़ा समय मिलना चाहिए। राजा ने कहा कि ठीक है बगीचे में बैठ जाओ। विचार करके बता देना।

विचार करने में उसकी लालसा कहाँ तक बढ़ती चली गई? जहा लाहो, तहा लोहो। लाभ होता है तो लोभ बढ़ता है। उसने सोचा कि दो मासा से क्या होगा, चार मासा माँग लूँ। फिर सोचा कि चार मासा भी माँग लिया तो एक दिन तो उजाला हो जाएगा पर दूसरे दिन फिर अंधेरा हो जाएगा। ऐसा करते-करते उसकी आगे से आगे भावना बढ़ती गई। आठ मासा, सोलह मासा सोचते-सोचते उसकी भावना और अधिक होती चली गई।

कहानी यह बताती है कि उसने राजा का सारा राज्य माँगने की तैयारी कर ली। उससे भी उसे संतोष नहीं हुआ। और चाहिए, और चाहिए, और चाहिए। लोभ की पहचान ही है कि और हो जाए, और हो जाए। ओर का कहीं छोर नहीं आता, इसलिए इनसान को संतोषी होना चाहिए। संतोष होगा तो खाते-खाते भी जिंदगी आराम से निकल सकती है। उसकी सारी पीढ़ियाँ आराम से खा सकती हैं। और, और, और आने दो, आने दो, आने दो। लोभ से एक तरफ से संपत्ति आती है और दूसरे रास्ते से शांति निकल जाती है। दूसरे

मार्ग से समाधि निकल जाती है।

लोभ आने पर व्यक्ति अशांत क्यों हो जाता है?

क्योंकि शांति दूसरे रास्ते से निकल जाती है। उस स्थिति में वहाँ अशांति का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। इसलिए लोभ के आने पर व्यक्ति अशांत हो जाता है। यह स्पष्ट समझ लें कि लोभ बढ़ने से शांति नहीं, बल्कि अशांति होती है। लोभ से निश्चित रूप से अशांति ही होती है।

शालिभद्र के पास धन बहुत था पर उनके पास लोभ नहीं था। लोभ परेशान करता है। सब सुख-चैन छीन लेता है। हमें शांति में नहीं जीने देता है। अशांति पैदा हो जाती है। शांति किसी दूसरे रास्ते से निकल जाती है। संतोष नहीं आता है। यदि संतोष आ जाता है तो धन कितना है, धन की कमी कितनी है, समस्या कितनी है, कोई मायने नहीं रखता। संतोष ही सुख है।

**'संतोषी सदा सुखी'**

किस-किस को सुखी होना है?

ध्यान रखना और, और करते-करते शरीर से आत्मा निकल जाती है पर व्यक्ति धन का उपयोग नहीं कर पाता। वह सुखी नहीं हो पाता। सुख संतोष में है।

एक माँ जी व्याख्यान सुनने गई। परिवार वाले भी गए। घर आकर उसने घर वालों को डाँटना शुरू किया कि तुम लोगों को जरा-सी भी अकल कोनी। महाराज को कितनी तकलीफ थी। किसी एक ने भी इलाज के लिए नहीं पूछा। इलाज करवाना चाहिए था। महाराज को कितनी तकलीफ थी, वह कितने बीमार थे पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। बीमार होने पर भी तुम लोग खाली सुनते रहे। वह दर्द से बोल रहे थे ओयमा, ओयमा, ओयमा। घरवालों ने बोला, महाराज सा ओयमा नहीं बोल रहे थे, वे गोयमा बोल रहे थे।

माँ जी का ध्यान केवल ओयमा पर रहा। उसके अतिरिक्त उसने कुछ सुना ही नहीं। लोभ में भी ऐसा होता है। लोभी अपनी ही तान सुनता है। उससे भिन्न उसे न कुछ सूझता है न कुछ सुनाई ही पड़ता है।

गुरुदेव नानालाल जी म.सा. फरमाया करते थे- 'अति लोभ न कर्तव्यः चक्करी भवति मस्तिष्के' अर्थात् अति लोभ में व्यक्ति का माथा चकरी की तरह घूमता रहता है, उसको क्या दिखता है? हाय, हाय, वो लो,

वो लो, वो लो। कितना भी मिल जाए शांति होती है क्या? दुनिया का सारा धन मिल जाए, कैलाश पर्वत मिल जाए, मेरु पर्वत मिल जाए पर शांति नहीं होगी। मेरु पर्वत किस धातु से बना हुआ है? उसमें कितना सोना लगा है? कितना बड़ा है मेरु पर्वत? एक लाख योजन का है या दस हजार योजन का? उसको बनाने में कितना सोना लगा होगा? दो-चार किलो! दो चार किलो से होता ही क्या है? ऊँट के मुँह में जीरा है। सारा मेरु सोने का है। पूरा का पूरा मेरु स्वर्ण का है। अगर उसको सोने का पूरा पर्वत भी मिल जाए तो मन में शांति नहीं बनेगी। शास्त्रकार कहते हैं कि कैलाश जैसे असंख्य पर्वत भी उसको मिल जाए तो भी उसकी आत्मा तृप्त नहीं होगी।

सिकंदर के गुरु ने सिकंदर से कहा कि भारत के किसी एक संत को लेकर आना। सिकंदर उस एक संत की खोज में निकल पड़ा। रास्ते में एक संत मिल गया। सिकंदर उससे बोला कि तुम मेरे साथ चलो, तो संत ने कहा कि मैं कोई तुम्हारा गुलाम हूँ क्या जो तुम्हारे साथ चलूँ? सिकंदर ने जोर से ठहाका मारकर कहा कि तुम्हें मेरे साथ चलना ही होगा। साधु ने मना कर दिया तो सिकंदर ने तलवार निकाली और कहा कि यदि तुमने मेरे कहे अनुसार नहीं किया तो तुम्हारी गर्दन धड़ से अलग कर दूँगा। साधु ने जवाब दिया कि तुम मुझे नहीं मार सकते। सिकंदर ने कहा कि मैंने कितनों को लूटा है। बहुत सारा धन, सोना मैंने लूटा है। तुम्हारे जैसे बहुतों को मारा तथा उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तुम्हें शायद इसकी जानकारी न हो। तुम सीधे से तैयार हो जाओ अन्यथा तुम्हारी खैर नहीं। साधु ने कहा कि तुमने बहुतों को मारा है, लेकिन उनके शरीर को ही मारा है। उनकी आत्मा को नहीं मारा। तू मेरे शरीर को भी मार सकता है, किंतु मेरी आत्मा को मारने की तुझमें क्षमता नहीं है।

बात ही बात में संत ने सिकंदर से पूछ लिया कि तुम्हारे पास कितना धन है?

सिकंदर ने अपने धन का ब्योरा बताया। संत ने पूछा कि अब! तो सिकंदर ने कहा कि सारी दुनिया को जीतना है। संत ने फिर पूछा कि उसके बाद क्या करोगे तो सिकंदर ने उत्तर दिया कि उसके बाद चुपचाप बैठ जाऊँगा। संत ने कहा कि यह तो अभी भी हो सकता है। अभी भी चुप बैठ जाओ। कहीं-न-कहीं तो विराम लेना ही पड़ेगा।

एक वाक्य लिखा जाता है। वाक्य किसको कहा जाता है? वाक्य, जो किसी अर्थ को स्पष्ट करता है। जिसके बाद में पूर्ण विराम लग जाता है वह वाक्य है। परिग्रह, लोभ, लालच को कहीं भी विराम नहीं लगता। वो जीवन सदा अधूरा रहता है। पूर्ण नहीं हो पाएगा। जहाँ लोभ रहता है वहाँ चिंता, राग-द्वेष, भय, छल-कपट रहेगा। जहाँ चिंता सदा बनी रहेगी, वहाँ आराम तथा आराम की नींद नहीं आ पाएगी। भय बना रहेगा कि कहीं घर में चोर न घुस जाए। इस भय से आराम की नींद नहीं आएगी। उसे जो नींद आएगी वह आराम की न होकर हराम की नींद होगी। थोड़ी-सी आवाज होने पर उसकी नींद कभी भी खण्डित हो जाएगी कि क्या हो रहा है? उसे डर रहेगा कि नींद लूँगा तो कोई घर में आ जाएगा। ऐसी स्थिति में श्री संभवदेव की सेवा-उपासना, भक्ति नहीं हो पाएगी। यदि सचमुच में जिनेश्वर देव की उपासना करना है तो पहले तुमको इन सभी तरह के भय से निजात पाना पड़ेगा। निर्भय होना पड़ेगा। अपने आप को अभय बनना पड़ेगा। आप अभय होंगे तो ही सेवा हो पाएगी। ममता, माया, लोभ, लालच, राग-द्वेष, भय से जब तक हमारा मन मुक्त नहीं हो पाएगा, तब तक हमारी परमात्म भक्ति सही रूप में नहीं हो पाएगी। इसलिए हमें अभय बनना जरूरी है।

राजमाता बनने के लिए कैकेयी ने क्या-क्या नहीं किया। वह राजमाता बनने के लिए बेताब हो गई। मंथरा ने कहा कि भरत को राजा बनाओगी तो तुम राजमाता बन पाओगी। कैकेयी सामान्य औरत नहीं थी, विदुषी थी, समझदार थी, किंतु राजमाता बनने का उसमें लालच आ गया। उससे उसने अपने पैरों पर ही कुल्हाड़ी चला ली। उसको अच्छी नजरों से नहीं देखते। इतना होते हुए भी कैकेयी को समझ आते ही उसने भूल सुधार ली। कैकेयी ने तो अपनी भूल स्वीकार कर ली, इसलिए वह दुःख से बच गई। हमारी स्थिति कैसी है, यह हमारे सोचने का विषय है।

जब व्यक्ति लोभ आदि में रहता है तो उसको भय सताता है। कभी धन का लोभ होता है तो कभी परिवार का लोभ होता है। बहुत सारे लोभ होते हैं। व्यक्ति लोभ के वशीभूत हो अपने जीवन को दुःख के महासागर में डाल देता है। नमिराज ऋषि भी लोभ के कारण दुःखी हुए। उन्हें किस प्रकार का लोभ था? उन्हें लोभ था कि मैं निरोग रहूँ। उनके शरीर में जलन हो रही थी, इलाज

के लिए बहुत सारे डॉक्टर आए, वैद्य आए, फिर भी इलाज नहीं हो पा रहा था।

**जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर जय...**

नमिराजर्षि को क्या हो गया?

उन्हें एक प्रकार से लू लग गई। शरीर में जलन हो रही है। कितने भी उपाय किए गए पर जलन मिटने का नाम ही नहीं ले रही थी। वे रोग से आक्रांत हो पीड़ित हो रहे हैं।

रोग और बीमारी में क्या फर्क है?

रोग, बीमारी नहीं है। बीमारी उसको कहते हैं जो लंबे समय से शरीर के साथ चल रही हो। जैसे- बी.पी., शुगर, आदि। ये कितने वर्षों तक चलती रहेगी, कोई पता नहीं। किसी को डेंगू या कोरोना हो गया वह भगवान के भरोसे बच जाए तो अच्छी बात, नहीं तो राम नाम सत्य है। इसे कहते हैं रोग। ये रोग व्यक्ति को तत्काल आक्रांत कर देते हैं। जो लंबे समय तक शरीर में बनी रहे उसे बीमारी कहते हैं। रोग जल्दी से आक्रांत-असर करने वाला होता है। आक्रांत उसे कहते हैं जो जल्दी से जीवन पर असर करने वाला है।

राजर्षि पीड़ित हो रहे हैं। हाय, हाय कर रहे हैं। डॉक्टर-हकीम आ गए। वे इलाज बताते हैं, पर कोई इलाज कारगर नहीं होता। आज भी कई लोग बीमारी के इलाज हेतु बार-बार अनेक प्रकार की जाँच कराते रहते हैं। कई लोगों की जाँच में किसी भी प्रकार की कोई बीमारी नहीं निकलती। सब नॉर्मल बताते हैं। कागज में नॉर्मल बताने से कोई रोगमुक्त थोड़े ही हो जाएगा।

नमिराजर्षि की चर्चा लम्बी है। एक दिन में पूरी होने वाली नहीं है। किंतु यह अवश्य है कि हमारे मन में एकत्व भावना आ जाए तो बीमारी सताएगी नहीं। एकत्व भावना यानी मेरी आत्मा शाश्वत है। शेष बाहर के भाव हैं। माता-पिता, पुत्र, परिजन, रिश्तेदार सब बाहर से मिले हुए हैं। इन संयोगों का एक दिन वियोग होना है। संयोग से मिले हुए का एक दिन वियोग होने वाला है। पुत्र-पत्नी जो भी मिले हैं उनका एक दिन वियोग होगा या नहीं होगा? हम सबके शरीर का एक दिन वियोग होगा या नहीं होगा? संयोग से मिली हुई हर चीज का वियोग होता है, लेकिन आत्मा का वियोग होने वाला नहीं है। आत्मा अजर, अमर, अविनाशी है। आत्मा अमर है। न कभी मरती है, न कभी जन्मती है। शरीर धारण करना जन्म मानते हैं, शरीर छोड़ना मरण मानते

हैं। जन्म शरीर का होता है। जो जन्म लेगा वह एक-न-एक दिन मरेगा। जन्म लेने वाले का मरना निश्चित है। मरण भी शरीर का ही होता है।

आत्मा मरती है क्या?

नहीं, आत्मा कभी नहीं मरेगी। जन्म शरीर लेता है तो शरीर ही मरेगा। आत्मा नहीं मरेगी। आत्मा न तो जन्म लेती है और न ही मरती है। वह सदा सर्वदा शाश्वत है।

एकत्व की भावना मन में आती है तो शरीर की बीमारियाँ अपने आप तिरोहित हो जाती हैं। आधि, मानसिक रोग को कहते हैं। जो मन आधि में सम रह जाय उसे समाधि कहते हैं। दूसरे अर्थ में आधि हो या व्याधि दोनों में समभाव रखना, मन में किसी भी प्रकार का उतार-चढ़ाव नहीं होना, ऊहापोह नहीं होना, समाधि है।

नमिराजर्षि एकत्व भावना में आते हैं तो उनकी बीमारी पूर्णरूपेण दूर हुई या न हुई हो, उनका मन शांत हो जाता है। मन समाधियुक्त हो जाता है। जब बीमारी थी तब उसकी उपशांति के लिए परिवार के सारे सदस्य लगे हुए थे, फिर भी कोई फायदा नहीं हो रहा था। कोई भी इलाज, किसी प्रकार की दवाइयाँ कारगर नहीं हो रही थीं, किंतु जब एकत्व भावना का प्रसार हुआ तो पुण्य के फूल खिल गए। मन समाधिस्थ हो गया। मन की अशांति दूर हो गई। उन्होंने सोचा शरीर को स्वस्थ रखने के लिए, शरीर को सुदृढ़ रखने के लिए आज तक मैंने क्या नहीं किया! मैंने कितना समय दिया शरीर को। शरीर के लिए मैंने कितने उपाय किए। शरीर की सार सम्हाल उन्होंने ही की या हम भी करते हैं? गोंदपाक व मेथी-सोंठ के कितने लड्डू खिलाए इसको पर बुढ़ापा आया या नहीं! एक गीत की कड़ी में कहा गया है-

**तेरी श्याम सलोनी काया, जिसको तूने नहलाया**
**मन गमता भोज कराया और सुंदर साज सजाया**
**साथ क्या जाएगा?**
**रोना है बेकार छूट सब जाएगा।**

ये फूटरी काया। इसको कितनी बार नहलाया। अब तक इसको नहलाने में कितना पानी खर्च किया। कितना पानी बहाया। इसको खिलने में कितना पानी खर्च किया। है कोई आँकड़ा किसी के पास? हममें से किसी के

पास नहीं है।

खंभात संप्रदाय के आचार्य श्री फरमाया करते थे–

**'काया करोड़पतिनी डीकरी रे'...**

आपको क्या समझ में आया? मोटे घर की लड़की लाएँगे तो उसके नाज–नखरे पूरे करने पड़ेंगे। मोटे ऑर्डर होंगे। उसके सामने छोटे ऑर्डर काम नहीं आने वाले। आज ये करना है, आज यहाँ चलना है। आज ये होना है, वो होना है। पता नहीं क्या–क्या होना है। घर में चाहे कुछ हो या न हो उसकी फरमाइश पूरी होनी चाहिए। उनके पीहर में ज्यादा रईसी रही तो वो बोलती है कि मैं तो अपने पीहर में ऐसा करती थी। क्लब में जाती थी, मीटिंगों में जाती थी। सिनेमा जाती थी। अरे! तूने आज तक पीहर में जो किया बहुत किया, लेकिन अब कहाँ तुझे रहना है? अब तो रहना यहीं है। ऐसी स्थिति में फालतू के गीत गाने से क्या फायदा। सुखी वह रहेगा जो वर्तमान में जीएगा। वर्तमान में जो साधन, सुविधाएँ हैं उनमें जो जीना सीख जाए, वह सुखी होगा। जिसकी न लंबी फरमाइश होगी, न लंबी अपेक्षाएँ होंगी, वह सुखी जीवन जी सकता है। नहीं तो आप फरमाइश करते रहना। लंबी फरमाइश। घर में उतने साधन हैं नहीं तो उसको दुःख होगा। इसलिए करोड़पति घर की लड़की लानी है तो सोच–समझकर लाना। यह शरीर करोड़पति की बेटी से कम नहीं है। महान पुण्य के योग से यह मानव देह मिली है। इसलिए इसके नाज–नखरे पूरे करने पड़ते हैं।

एक ब्राह्मण खेत में अनाज के दाने बीन रहा था। उधर से राजा भोज का निकलना हुआ। उन्होंने ब्राह्मण को एक व्यंग्य भरी बात कह दी। राजा की बात उस ब्राह्मण को लग गई। राजा परीक्षण कर रहा था कि ब्राह्मण कितना सहनशील है। उसमें सहने की कितनी ताकत है। वह ब्राह्मण की क्षमता देख रहा था। राजा ने पहचान करने के लिए एक कील फेंक दी। वह कील उस ब्राह्मण को लग गई। राजा ने कहा था कि ऐसे लोगों का धरती पर जन्म लेना और जीना हराम है, जो उदर पूर्ति के लिए खेल–खलिहान से अनाज के दाने बीनें। यह बात ब्राह्मण को अच्छी नहीं लगी। उसे लगा कि यह मेरी गरीबी पर हँस रहा है। ब्राह्मण के लिए कई बार कहा जाता है कि ब्राह्मण मोदक प्रिय होते हैं। उसको मोदक प्रिय है। मोदक खाने को मिल जाए तो वह मस्त रहता है। किंतु हकीकत में ब्राह्मण वह होता है जो त्यागी हो। वह ब्राह्मण मोदक प्रिय

नहीं था। वह विद्वान् था, पुरुषार्थी था। उसने वापस जवाब दिया कि इस धरती पर उनका जन्म लेना भार रूप है, जिनके पास अनाज होते हुए भी गरीबों को कुछ दान नहीं करते, किसी के काम नहीं आते। उनका जीना हराम है। ब्राह्मण कहता है कि ऐसे लोग जमीन पर भारभूत हैं। वह ब्राह्मण खावण खंडा नहीं था। वह दिमाग वाला था।

राजा हाथी से नीचे उतरा और कहा कि मैं आपकी परीक्षा ले रहा था। आप इस परीक्षा में पास हुए हो। मैं आपको यह हाथी भेंट करना चाहता हूँ। आप ये मेरी भेंट स्वीकार करें। ब्राह्मण को हाथी मिल गया। ब्राह्मण सोचने लगा म्हारो पेट ही नी भरीजे तो ई हाथी रो पेट कहाँ से भर पाऊँगा, कैसे पालूँगा इसको। ब्राह्मण उस हाथी के मुँह के पास अपना कान ले गया और माथा हिलाने लगा। राजा ने देखा कि ब्राह्मण हाथी के मुँह के पास अपना कान ले गया और सिर हिलाने लगा। राजा ने उस ब्राह्मण से पूछा कि क्या बोल रहा है हाथी। ब्राह्मण ने कहा! हाथी बोल रहा है कि तू मेरे को लेकर क्या करेगा। मेरी भी इज्जत जाएगी और तेरी भी जाएगी। इसलिए तेरे लिए अच्छा होगा कि मुझे राजा को वापस सौंप दे। ऐसा करने पर राजा तुम्हें बहुत सारा द्रव्य प्रदान करेंगे। इसलिए मैं इस हाथी को आपको भेंट कर रहा हूँ। आप कृपा कराएं।

कुछ लोग इस कहानी को अलग तरह से कहते हैं। कहते हैं कि राजा ने हाथी को तौलकर ब्राह्मण को उस हाथी के वजन के बराबर सोना दिया। सेठ कितना धन देवे! सौ या पाँच सौ का नोट देता है। ज्यादा से ज्यादा हजार-दो हजार का नोट दे देता है। अगर राजा राजी हो तो छप्पर फाड़ कर धन दे देता है।

जो कुछ भी कहा गया हो, बंधुओ! धन के पीछे लोभ कभी नहीं करना क्योंकि ज्यादा लोभ से समाधि प्राप्त नहीं होती है। धन आए तो त्याग की भावना होनी चाहिए। जिसको धन की लालसा बनी रहती है उसका लोभ उसे सुखी नहीं होने देता है। जिसके मन में तृष्णा नहीं होती है वह सदा सुखी होता है। उसमें ही अभय की भावना आएगी। ऐसी अभय की भावना से ही हम भगवान की सेवा कर पाएंगे। इस मन व तन की दुर्लभता पर विचार करते हुए प्रभु भक्ति से अपनी आत्मा को भावित कर पाएंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

04 अगस्त, 2021

# 9

# पुरुषार्थ से सब संभव

**संभव देव ते धुर सेवो सवे रे...**

संभवनाथ भगवान का नाम भव्यात्माओं को प्रेरणा देने वाला है। उनका नाम यह प्रेरणा देता है कि कोई भी कार्य असंभव नहीं है। बस, रुको मत। बैठो मत। पुरुषार्थ करो। उठो! पुरुषार्थ करो। सफलता प्राप्त होगी। चलने वाले को मंजिल मिलती है। खड़े पाँव, रुके हुए पाँव को मंजिल प्राप्त नहीं हो सकती। भाग्य भरोसे चलने वाला सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। दूसरों पर निर्भर रहने वाला कभी आगे नहीं बढ़ सकता। पुरुषार्थ के बल पर चलने वाला अपने भाग्य के तालों को खोल देता है। पुरुषार्थी अपनी अभिलाषा, अपनी चाह, अपने उद्देश्य को पाने में सफल हो जाता है।

हमें पहले निश्चय कर लेना चाहिए कि मुझे क्या चाहिए। फिर यह निश्चित करना चाहिए कि लक्ष्य प्राप्ति के लिए क्या करना है। उसके बाद यह तय करना होगा कि उसको कैसे करना, किस दिशा में जाना है। दिशा तय करनी होगी। तभी अपनी मंजिल की ओर बढ़ पाएँगे। हमने कुछ भी सोचा नहीं, कुछ पता भी नहीं कि क्या बनना है, कहाँ जाना है, कैसे जाना है, तो मंजिल प्राप्त होने वाली नहीं है। मंजिल मिलने वाली नहीं है। जब हमने कुछ तय ही नहीं किया कि किस दिशा में आगे बढ़ेंगे, आगे बढ़ भी गए तो आगे जाकर क्या करेंगे, जब स्वयं को पता ही नहीं है कि कहाँ जाना है, कहाँ जाकर रुकना है, तब सही दिशा में कैसे जा पाएंगे।

किसी से सुनकर चलने से मंजिल नहीं मिलेगी। किसी से सुनकर व्यक्ति चल पड़े और मार्ग में कोई पूछ दे कि भाई कहाँ जा रहे हो, तो उससे यह बोल देने से कि मंजिल को ढूँढने जा रहा हूँ, मंजिल मिले जाएगी क्या?

नहीं, ऐसे मंजिल नहीं मिलती। आपको तय करना होगा कि जाना कहाँ है। कहाँ जाकर रुकना है।

जब आप यात्रा करते हो तो आपको पता होता है कि आपको किस देश, किस राज्य, किस शहर की यात्रा करनी है। कौन-से कपड़े पहनने हैं। क्या-क्या साथ में लेना है। किस-किस को साथ में चलना है। कौन-सी गाड़ी से जाना है और किस समय गाड़ी आएगी। किस समय हमको रवाना होना है। किसी स्थान पर जाने के लिए आप सारी चीजें तैयार कर लेते हो। अपना पूरा प्लान बना लेते हो। क्या-क्या चीजें साथ में लेनी हैं उन पर विचार करते हो, किंतु जब अपने जीवन के विषय में प्रसंग आता है, तब समझ नहीं आता कि मुझे क्या करना है, कैसे करना है। आपको धर्माराधन करते देख किसी ने पूछ लिया, धर्माराधन किसलिए कर रहे हैं? आपने कहा- मोक्ष जाने के लिए। बोलो! आपको मोक्ष जाना है या नहीं? पर मोक्ष में ऐसे नहीं जा सकते। पहले हमने मोक्ष को क्या समझा! हमने केवल सुनी हुई बात को कह दिया कि हमें मोक्ष में जाना है। हमको मुक्त होना है, सिद्ध होना है।

सिद्ध बनेंगे कैसे? कैसे मुक्त होंगे? कैसे हमको मोक्ष मिलेगा? अभी तक विचार किया है क्या कि हमारे पास उतने संसाधन हैं भी या नहीं?

सारी स्थितियों पर विचार करना पड़ेगा, तभी मंजिल मिल सकती है। तभी मंजिल को प्राप्त कर सकते हैं।

संभवनाथ भगवान की उपासना करो। उनकी उपासना से रास्ता मिलेगा। मार्ग मिलेगा। उस मार्ग पर जाने के लिए आपको सिद्धि मिलेगी। वह आपको अपनी मंजिल तक पहुँचा सकती है। तीर्थंकर देवों की उपासना विधि से की जाय। उनकी भक्ति करने की विधि औपपातिक सूत्र तथा भगवती सूत्र में बताई गई है। वह विधि इस प्रकार है- पहला, सचित्त का त्याग करना। दूसरा, अचित्त का विवेक। तीसरा, उत्तरासन धारण। चौथा, दृष्टिवंदन करना और पाँचवाँ, पर्युपासना।

उक्त विधान के अनुसार हमें सचित्त का त्याग करना चाहिए। बहुत जगहों पर लिखा होता है, 'मोबाइल व इलेक्ट्रॉनिक उपकरण साथ नहीं लावें' फिर भी कई बार फोन की घंटियाँ बजती हैं। यह लोगों की असावधानी है, लापरवाही है। लोग सोचते होंगे पास में पड़ा है तो पड़े रहने दो। बजकर अपने

आप बंद हो जाएगा।

ये लापरवाही मंजिल प्राप्त करने में बाधक होती है। मंजिल प्राप्त करने के लिए सजगता और सावधानी बहुत जरूरी है। सजगता का मतलब जागृत अवस्था में होना। सावधानी का अर्थ होता है अवधानतापूर्वक होना। अवधानता का अर्थ है एकाग्रता। एक दिशा में एक लक्ष्य को लेकर चलना। एक ही दिशा में बढ़ने का अपना उद्देश्य तब सिद्ध होगा जब धैर्य से अवधानतापूर्वक बढ़ेंगे। अवधानता आगे तक पहुँचाने वाली है। कभी इधर देखना और कभी उधर देखना अवधानता नहीं है। कोई आ रहा है, कोई जा रहा है, उन सबको आप देखते हो तो इससे आपके मन की गति किधर जा रही होती है? हम भिन्न-भिन्न स्थितियों में जीने वाले हैं। सभी स्थितियों में अपने जीवन में अवधानता को बनाए रखें। सावधानी रहेगी, अवधानता रहेगी तो आगे बढ़ेंगे।

उपासना विधि के अनुसार पहले सचित्त का त्याग करें। जहाँ भी हमें संत-महापुरुषों के सान्निध्य में पहुँचने का मौका मिले, वहाँ पर किसी भी सचित्त पदार्थ को साथ नहीं लाएं। सचित्त पदार्थ को साथ में लेकर नहीं आने का सबसे सुंदर तरीका है कि आप उसको घर में ही छोड़ कर आएं ताकि निश्चिंतता रहे। यदि सचित्त पदार्थ लेकर आएंगे, तो उसमें चित्त अटका रहेगा। उससे सम्यक्रीत्या उपासना नहीं कर पाएंगे। उपासना के क्षण में किसी चीज की चिंता नहीं होनी चाहिए। यदि आप दस-बीस, पचास हजार या एक लाख रुपये का मोबाइल लेकर आए और वह कुर्ते की जेब में ही रह गया हो, कुर्ता सामायिक की पोशाक बदलने के स्थान पर रखा गया तो आप सोचने लगेंगे कि मोबाइल मैं कल ही लाया हूँ, कहीं कुर्ते की जेब से कोई निकाल न ले। इस प्रकार आप व्याख्यान में, सामायिक में बैठे तो हो पर आपका मन दूसरी ओर चल रहा है। आपका दिमाग तो वहीं लगा हुआ है पर आप सोचते हैं कि मैं सामायिक में बैठा हूँ। मन में खयाल मोबाइल का आ रहा है। ऐसी स्थिति में सामायिक कहाँ याद रहेगी? याद तो मोबाइल की आ रही है।

किसको याद करना है?

भगवान को। तीर्थंकर भगवान को भजने आए थे। आए तो थे भजन के लिए पर रुपया याद रह गया। बात केवल रुपये की नहीं है, जिसमें भी मन

अटका रह जाए उसको घर छोड़ कर आएं। कोई भी महत्त्वपूर्ण चीज, बढ़िया मोबाइल हो या महँगी घड़ी या दूसरे अन्य उपकरण, आप उनको घर पर छोड़कर आएं। व्याख्यान में लेकर आएंगे और मन उसमें ही बना रहा तो सच्ची उपासना, आराधना कैसे होगी? जूते, चप्पल पहन करके व्याख्यान में आए थे। व्याख्यान खत्म होने के बाद बाहर जाकर देखे तो जूते गायब। आपके मन में तो पहले ही डाउट था कि यदि मैं जूते पहनकर जाऊँगा तो पता नहीं वापस ला पाऊँगा या नहीं।

इसलिए जिन चीजों में मन अटक जाय, उन्हें घर पर ही छोड़ो। नहीं तो मन में भय रहता है कि व्याख्यान से जाने के बाद चप्पल मिलेगी या नहीं? कोई लेकर चला गया तो बिना चप्पल के जाना पड़ेगा। पचास हजार का मोबाइल याद आता है या नहीं? आप तो सामायिक में है, आप तो प्रवचन में है, वह कैसे याद आ गया? ऐसा क्यों हुआ? इसलिए याद आ गया क्योंकि हम साथ लेकर आते हैं। इसलिए ऐसी सचित्त व अचित्त वस्तुएं साथ न लाएं। यह सचित्त का त्याग व अचित्त का विवेक होगा। विवेक रखेंगे तो मन भटकेगा नहीं। तीसरा बिंदु है उत्तरासन धारण।

अभी मास्क आ गया है तो आप मास्क लगा लेते हो पर मुँहपत्ती की अपनी महत्ता है। पहले अंगोछा साथ में रहा करता था। बड़ों के सामने जाते वक्त अंगोछे को मुँह पर लगा लेते ताकि कभी उबासी या छींक आए तो मुँह से निकलने वाले थूक के छींटे बड़ों पर या अन्य किसी पर गिरे नहीं। दूसरे पर थूक गिरना अच्छी बात नहीं है। यह सभ्यता का सूचक नहीं है। इसलिए उत्तरासन धारण करने की बात कही गई है।

चौथा है दृष्टिवंदन करना। दृष्टिवंदन करना अर्थात् मन में विनम्र भाव आना। बिना श्रद्धा के, बिना भक्ति के कोई उपासना नहीं हो सकती। जहाँ श्रद्धा होगी वहाँ मन रुकेगा। नहीं तो इधर-उधर भटकेगा। कभी यहाँ जाएगा, कभी वहाँ जाएगा।

यहाँ पर व्याख्यान सुनने जितने भी लोग आते हैं, सभी श्रद्धा से आते हैं क्या?

नहीं, सारे लोग श्रद्धा से नहीं आते। कुछ लोग श्रद्धा से आते हैं तो कुछ यह देखने आते हैं कि यहाँ कितने लोग आए हैं। कितनी तपस्या चल रही

है। गुरुदेव प्रवचन कैसा दे रहे हैं। ऐसे बहुत लोग होते हैं जो सिर्फ देखने के लिए ही आते हैं। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो दूसरों के चप्पल-जूते ले जाने के लिए आ जाते हैं।

एक बार गंगाशहर-भीनासर (बीकानेर) में आचार्य श्री (नानागुरु) का चातुर्मास था। प्रवचन सुनने के लिए वहाँ पर एक सेठ आया करता था। सेठ के जूते रोजाना गायब हो जाते थे। सेठ रोज नया जूता लाता। दूसरे दिन गायब। सेठ परेशान हो गया। सेठ ने सोचा कि आखिर ये चोर है कौन! मैं एक दिन जूता लाता हूँ तो अगले दिन गायब। एक दिन चोर की खोजबीन की तो वह पकड़ में आ गया। उसके घर में दो बोरे जूते से भरे हुए थे। इतने सारे जूतों का क्या करता, पर किसी का शौक होता है चुराने का।

एक बहन ने घर को उठा लिया। घर उठाने का मतलब समझने की बात है। श्रीमान जी ने पूछा कि क्या हुआ तो उसने कहा कि मेरा चम्मच नहीं मिल रहा है। नौकर मेरा चम्मच लेकर चला गया। आज नौकर घर गया तो मेरा चम्मच ले गया। श्रीमान जी ने पूछा कि तू चम्मच कहाँ से खरीदकर लाई थी? बहन ने कहा कि खरीदा कहाँ से मैंने, मैं तो एक फंक्शन में भोजन करने गई थी, वहाँ से मौका देख उठा लाई। वह उठाकर लाई तो उस समय उसके मन में विचार नहीं आया कि चोरी करके चम्मच ले जा रही हूँ, पर यहाँ कह रही है कि नौकर मेरा चम्मच लेकर चला गया। हल्ला कर रही है। घर को सिर पर उठा कर रख दिया। हम अपनी बात पर हल्ला नहीं करते, लेकिन दूसरों पर आरोप लगाने में आगे रहते हैं। पहले अपने भीतर झाँक कर देखना चाहिए।

हम भक्ति के लिए आ रहे हैं, श्रद्धा से आ रहे हैं तो इन सारी स्थितियों से बचाव जरूरी है। उक्त स्थितियों से बचाव होगा तभी हमारी उपासना सफल होगी। तभी हम पर्युपासना सही कर पाएंगे।

उपासना के लिए पाँचवाँ सूत्र है- एकाग्र भाव से वंदना करना। नमस्कार करना। वंदन करते हुए यह मत देखो कि गोपाल जी वंदना कर रहे हैं या नहीं कर रहे हैं। यह मत देखो को वे कैसे वंदना कर रहे हैं। यह मत सोचो कि मेरा पड़ोसी कैसे वंदना कर रहा है। इस पर ध्यान मत दो कि उसका हाथ कैसे घूम रहा है। दृष्टि इधर-उधर नहीं होनी चाहिए। उसी के प्रति एकाकार रहें जिसको वंदना कर रहे हैं। जिसको नमस्कार कर रहे हैं, उसी में लीन होकर

वंदन-नमस्कार करें। वंदन हर किसी के लिए आसान नहीं है। वंदन कोई सामान्य बात नहीं है। हम रात-दिन करते हैं, इसलिए हमको सरल लगता है, किंतु विचार करें कि हमने कहीं क्वालिटी डाउन तो नहीं कर दी! क्वालिटी को बराबर बनाए रखा या नहीं रखा! जिस क्वांटिटी में वंदन-नमस्कार कर रहे हैं, उसमें यदि क्वालिटी हो तो उतने की जरूरत ही नहीं होगी। एक ही वंदन सार्थक होगा। कैसे ही हो वंदना करना रोज का ढर्रा हो गया है।

क्या है क्वालिटी? क्या है वंदना? कैसे होती है वंदना?

तीन बार खड़े होकर बैठना। बैठकर खड़ा होना। अगर खड़ा नहीं हुआ जाता है तो बैठे-बैठे ही करनी है।

**तिक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं...**

तीन बार आवर्तन देना। आयाहिणं, पयाहिणं... दक्षिण दिशा से प्रारंभ करके प्रदक्षिणा देना अर्थात् एकाग्र भाव से आप जिसे वंदना कर रहे हो या जिसको वंदन किया जा रहा है उसके दक्षिण दिशा से प्रारंभ करके जो आवर्तन दिया जा रहा है उसको कहते हैं प्रदक्षिणा। वर्तमान में ऐसा सिस्टम नहीं है। वर्तमान सिस्टम हाथ घुमाने का है। पहले गुरु की प्रदक्षिणा वैसे होती थी जैसे मंदिर में फेरी लगाई जाती है। वह प्रदक्षिणा है। उसी को परिक्रमा कहते हैं। तीन बार परिक्रमा पूरा करके फिर बैठकर आगे का पाठ पूरा करना। तीन बार आवर्तन करके वंदन करना, शीश नमाकर नमस्कार करना यानी कर रहा हूँ। ऐसे ही नमन करना चाहिए। वंदन का दूसरा अर्थ होता है कि विधिपूर्वक स्तुति। श्रद्धा भाव से ओतप्रोत होकर नमन करना। सत्कार करना। सम्मान करना। गुणों का उत्कीर्तन करना।

**कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं...**

ये चारों पद स्तुति रूप है। उत्कीर्तन रूप है। कल्लाणं का अर्थ है कल्य यानी आनंद देने वाले। आप आनंद देने वाले हैं, मुक्ति देने वाले हैं, आप मोक्ष देने वाले हैं। ये भाव हमारे भीतर वंदना करते हुए प्रकट होता है या नहीं! हम उसी प्रकार से अनुभव कर रहे हैं या नहीं! आनंद देने वाले हैं, पर कैसे आनंद दे रहे हैं। उनके दर्शन से हमको आनंद हो रहा है। यदि हमारे मन में कुंठा भरी हुई है तो दर्शन किसी काम का नहीं हो सकता। कुंठा भरे मन से दर्शन सच्चा दर्शन नहीं है।

सच्चा दर्शन तब है जब मन आनंद से पुलकित हो जाए। मन की कली-कली विकसित हो जाए। हृदय पुलकित हो जाए। प्रफुल्लित हो जाए। कहा गया है कि साधु के दर्शन पुण्य रूप होते हैं। साधु तीर्थ रूप होते हैं। वे हमको तिराते हैं। वे हमें जिस माध्यम से तिराएं हम तिर जाते हैं। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका तीर्थ रूप होते हैं इसलिए ये पुण्य के कारण होते हैं। भगवती सूत्र में एक बात कही गई है-

तथारूप श्रमण माहण का नाम-गोत्र सुनना भी पुण्यकारक व कर्म निर्जरा कराने वाला है। उनके सामने जाने, वंदन करने, पर्युपासना करने से होने वाले लाभ का तो कहना ही क्या!

तथारूप किसे कहते हैं?

तथारूप उसको कहते हैं जिसका जीवन पोशाक के अनुरूप है। जैसा पोशाक वैसा ही जीवन। जैसा रूप वैसा जीवन। जीवन और रूप में कोई फर्क नहीं है। दूसरा होता है तथाकथित। जैसा कहा जाता है या कहते हैं वैसा नहीं होना। तथाकथित शब्द उसके लिए लगता है जिसका जैसा रूप होना चाहिए वैसा नहीं है। पलास के फूल का रंग-रूप अच्छा है पर उसमें सुगंध नहीं है। वह खुशबू नहीं देता।

'रूप रंग रो फूटरो रोहिड़े रो फूल।' रोहिड़े रो फूल रंग रूप से बहुत बढ़िया है, सुंदर है, लेकिन उसमें कोई खुशबू नहीं है। जिसमें खुशबू होगी वह तथारूप होगा। जो साधु का सही जीवन जी रहा है, उसका नाम या गोत्र सुनने से महान कर्मों की निर्जरा होती है। खाली उनके नाम और गोत्र सुनने से भी निर्जरा होती है।

कोणिक सम्राट, भगवान महावीर की सुख साता के समाचार सुने बिना कभी भी भोजन नहीं करता था। जब भगवान महावीर की सुख-साता के समाचार मिल जाते तो ही वह भोजन करता। जब हमको दर्शन मिलते हैं तो हम कितने खुश होते हैं, कितना आनंद आता है। नाम, गोत्र सुनने से हमारे सामने उनकी छवि प्रकट हो जाती है। इन तथ्यों को हम अनुभव करते हैं। एकमेव होने की कोशिश करते हैं। तथारूप श्रमण माहण के नाम-गोत्र श्रवण करने से होने वाले लाभ को हमने सुना, फिर उनके सामने जाने, उनका सम्मान करने, उनका स्वागत करने, उनसे जिनवाणी सुनने, ज्ञान की चर्चा करने से होने वाले महान

लाभ का कहना ही क्या है। जब तक हम आनंद नहीं लेंगे, तब तक हमें लाभ की प्राप्ति होने वाली नहीं है। आनंद लेने वाले को ही महान लाभ की प्राप्ति होती है। मोक्ष की प्राप्ति होती है। आनंद नहीं होगा तो मोक्ष भी नहीं होगा। उसकी प्राप्ति नहीं होगी। इसलिए पहले हमको आनंद से सराबोर होना है। जब तक आनंद से सराबोर नहीं होंगे, तब तक मोक्ष मिलना मुश्किल है, दुष्कर है। निराश होकर बैठे रहने वाले लोगों के लिए वहाँ जगह खाली नहीं है। जिसका हृदय कमल की तरह खिल जाता है, उसकी जगह वहाँ बन जाती है। जिसका हृदय कमल की तरह नहीं खिलता है, उसके लिए जगह बनने वाली नहीं है।

**मंगलं...**

मंगलं का अर्थ है- आप मंगल रूप हैं। मंगल अर्थात् मेरे पापों का नाश करने वाले। संतों के दर्शन से भाव पवित्र होते हैं। उन पवित्र भावों से पाप नष्ट होते हैं। देवयं- आप देव रूप हैं।

देव किसको कहते हैं?

देव उसे कहते हैं जिसमें दिव्यता होती है। जिसमें चमक होती है। चारित्र की आराधना से जिनके भीतर दिव्यता प्रकट हो गई, ऐसे दिव्य रूप हैं आप। कहते हैं कि देव अपने मूल स्वरूप में नहीं आते। उनके शरीर से हमारी आँखों को आघात लगने की संभावना रहती है। जैसे देवों की चमक होती है, वैसे ही श्रमण का जीवन तप-संयम से दिव्य होने से वे देव रूप हैं। हम उनके शरीर को नहीं देखते। यह नहीं देखते कि उनका शरीर काला है या गोरा। हम उनके भीतर के पवित्र, दिव्य रूप को निहार करके उनकी पर्युपासना करते हैं। शरीर की उपासना करने से क्या मिलेगा? हम ज्ञान, दर्शन, चारित्र की भावना से पर्युपासना करते हैं। उनकी उपासना से मेरे भीतर श्रद्धा प्रकट हो। मेरे भीतर ज्ञान व चारित्र के भाव पैदा हों। चेइयं- आप चैत्य ज्ञान रूप हैं। जहाँ देखो आप ज्ञान रूप ही है।

तिक्खुत्तो के पाठ से वंदना-नमस्कार करते हैं तो सत्कार-सम्मान व स्तुति भी हो जाती है। पर जब तक हमारे भाव वैसे नहीं बनेंगे, तब तक शाब्दिक उच्चारण तो होता है, किंतु आनंद नहीं मिल पाता। उक्त शब्दों के अनुसार हमारे भाव बनेंगे तो हमारा वंदन भी तथारूप हो जाएगा।

पयाहिणं, पयाहीणं, पय्याहिणं में कौन-सा सही है?

लोग अलग-अलग तरह से बोलते हैं, जिससे अर्थ का अनर्थ हो जाता है। पयाहिणं पद सही है। इसका उच्चारण सही होना चाहिए। 'प' पर जोर देकर बोलेंगे तो शब्द पय्याहिणं बन जाएगा। 'ही' पर जोर देकर बोलेंगे तो शब्द बनेगा पयाहीणं। ये दोनों अशुद्ध हैं। हि हस्व है। उसका उच्चारण भी हस्व होना चाहिए।

तिक्खुत्तो के पाठ के अंत में आता है 'पज्जुवासामि' यानी मैं पर्युपासना कर रहा हूँ। हमारा मन, वचन और काया एकाग्र होने पर हमारी पर्युपासना सिद्ध होगी। तब वंदना सही होगी। जहाँ हम आने वाले को देखते रहते हैं, वहाँ हमारी वंदना तथारूप न होकर तथाकथित हो जाती है। पर्युपासना करते हुए यदि तत्व पृच्छा करनी हो तो वह जिज्ञासापूर्वक होनी चाहिए। कई लोग प्रश्न पूछते समय यह देखते हैं कि अन्य लोगों पर मेरी पृच्छा का रिएक्शन कैसा हो रहा है। वे यह देखते हैं कि मेरे प्रश्न में कितना दम है। ऐसा जहाँ होता है, वहाँ जिज्ञासा खत्म हो जाती है। ध्यान रहे कि जिज्ञासा के बिना ज्ञान हासिल नहीं हो पाएगा। उसके बिना कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है। कितना भी गहरा ज्ञान लेकर चलो, किंतु विनम्र भाव होना जरूरी है। विनम्र भाव से जिज्ञासापूर्वक सुनने का लक्ष्य होगा तो ज्ञान के हकदार बन पाएँगे। तो ज्ञान प्राप्ति की पात्रता प्रकट हो पाएगी।

नमिराज ऋषि का चारित्र भी हमें प्रेरणा देने वाला है

**जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर जय जय जयकार...**

पौधे को सुरक्षित रखना हो तो पहले जड़ को देखना होगा। जड़ को ठीक नहीं किया गया तो पौधा ऊपर से सुरक्षित होने वाला नहीं है। जड़ को ठीक कर दिया तो पौधे को ऊपर से ठीक होने में देरी नहीं लगेगी। इसी प्रकार बीमारी का उपचार ऊपर से करने से थोड़ी देर के लिए वेदना से राहत भले ही मिल जाए, किंतु पूर्णतया राहत मिलना मुश्किल है। यदि हम नहीं चाहते हैं कि हमें कोई दु:ख आए, कष्ट आए, पीड़ा आए तो हमें ऐसा प्रयत्न करना है कि हमसे कर्मों का बंध ही न हो।

वेदनीय कर्म दो प्रकार का है। एक सातावेदनीय कर्म और दूसरा असातावेदनीय कर्म। सातावेदनीय पुण्य रूप होता है। असातावेदनीय पाप रूप। पाप कर्म हमें पवित्र नहीं होने देगा। वह पाप में धकेलता रहेगा। वह

हमको पापी बनाता रहेगा। हमारे सामने परेशानियों के पहाड़ खड़े करके रहेगा। किसी दूसरे के पाप कर्म हमारे काम में नहीं आते हैं। कोरोना काल में किसी को कोरोना हो गया तो चला गया। क्या उसका पुण्य हमारे काम आएगा? कोरोना का मरीज जिस बरतन में भोजन किया, उस बरतन में दूसरे लोग भोजन नहीं करते। किसी को कोरोना हो गया तो उसने जिस साबुन से हाथ धोया उस साबुन को घर के दूसरे सदस्य उपयोग में नहीं लेते। उसका उपयोग कोई नहीं करना चाहता। जैसे उसका साबुन उसी के काम आता है, उसके भोजन की थाली तथा कटोरी उसी के काम में आती है, उसका बिस्तर उसी के काम आता है, वैसे ही अपना पाप कर्म हमें ही भोगना पड़ेगा।

बैंक के खाते में कभी गड़बड़ी हो जाती है। कोई हमारा खाता हैक कर सकता है। धन चुरा सकता है। अकाउंट में रखे नोट को कोई चुरा सकता है, पर हमारे पुण्य को कोई चुरा नहीं सकता। न ही कोई पाप का बँटवारा कर सकता है और न ही पुण्य का। प्रत्येक प्राणी का पुण्य-पाप अपना-अपना होता है। उसका कर्ता भी वही है। उसका भोक्ता भी वही है।

कर्म फिलॉस्फी बहुत गहन है। इसलिए कभी-कभी संत सुनाते हैं-

**कर्मों के खेल निराले हैं**
**ऋषि मुनि भी इनसे हारे हैं। कर्मों के...**

कर्मों के खेल निराले हैं। भगवान श्री महावीर स्वामी के कानों में कीलें ठोकी गईं। किस कारण से? उत्तर होगा- कर्मों का विपाक, कर्मों का परिणाम। यह बात अलग है कि उस परिस्थिति में भी भगवान को गुस्सा नहीं आया। यदि कोई हमारा कान भी मरोड़ दे तो क्या करेंगे हम! क्या गुस्सा नहीं आएगा हमको? शक्रेंद्र ने भगवान से निवेदन किया कि मैं आपकी सेवा में रहना चाहता हूँ ताकि कोई आपको उपसर्ग नहीं दे पाए। भगवान ने कहा कि तुम्हारी भावना प्रशस्त है। तुम्हारा कथन प्रशस्त है। साथ ही भगवान महावीर ने शक्रेंद्र से कहा कि कोई भी तीर्थंकर किसी दूसरे के सहयोग से साधना नहीं करते। वह स्वयं ही साधना करते हैं। भगवान जान रहे थे कि बीज मैंने ही बोया है तो भुगतना मुझे ही है। ''जैसा बीज बोएंगे, वैसा ही फल मिलेगा।'' मैंने बबूल का बीज बोया और पड़ोसी के घर में पके हुए आम का पेड़ देखा तो मेरे मुँह में पानी आने से क्या होगा। मैंने बीज तो बबूल का बोया और सोच रहा हूँ

कि फल आम के मिल जाएं तो क्या संभव है?

एक पटेल ससुराल गया। वहाँ पर उसके खाने-पीने की अच्छी व्यवस्था की गई थी। खाने के लिए ताजे गन्ने के रस के मालपुए बने। पटेल ने इससे पहले कभी वैसे मालपुए नहीं खाए थे। वह पूरा का पूरा मालपुआ एक साथ ही खाने लगा। सब उस पर हँसने लगे। उसकी पत्नी को भी अच्छा नहीं लग रहा था। उसने मौका देख दो अंगुलियाँ उठाकर बताना चाहा कि एक-एक के दो-दो टुकड़े करके खाओ। उसने समझा कि दो-दो मालपुआ एक साथ खाना है। उसने वैसा ही किया। दो पुए एक मुँह में आ नहीं रहे थे। वह ठूँस-ठूँस कर खाने लगा। लोगों की हँसी का तो कहना ही क्या। मालपुए उसको बहुत अच्छे लगे थे। उसको स्वाद आ गया। उसने जमकर मालपूए खाए। वह मन में सोच रहा था कि ऐसे मालपुए तो पहले कभी नहीं खाये।

भोजन के पश्चात् अवसर पाकर उसने साले को बुलाया और उससे पूछा कि मालपुए कैसे बनते हैं। साले ने मालपुए बनाने में उपयोग आने वाले मैटेरियल बताते हुए उसे बनाने का तरीका भी बताया। सुनने के बाद उसने कहा, अरे साहब, दूध-घी म्हारे घर में मिल जाए, पण म्हारे गन्ने की खेती नहीं होती। आप बीज दे दो मैं गन्ना बोऊँगा। जाते हुए वह गन्ने की गाँठें बीज रूप में साथ ले गया। रास्ते में खुशी से उछल-उछल कर जा रहा था कि अब मैं गन्ने की खेती करूंगा और रोज मालपुए खाऊँगा। वह घर गया। खेत में पहले से खड़ी बाजरा और मोठ की फसल को काटने लगा तो पड़ोसियों ने कहा कि क्यों अधपकी फसल को काट रहे हो? उसने कहा कि मुझे तो मालपुए खाने हैं।

उसने खड़ी फसल को काट दिया। उसके स्थान पर उसने गन्ना बोया। दोनों फसल उसके हाथ से चली गई। न बाजरे और मोठ की फसल पकी और न ही गन्ने के बीज उस रेतीली जमीन में उगे। उसने यह भी नहीं सोचा कि गन्ने की खेती के लिए ज्यादा पानी की आवश्यकता होती है और मिट्टी की उर्वरता भी ज्यादा होनी चाहिए। उसने लालच में आकर पहले से खड़ी फसल को काट दिया। वह न इधर का रहा, न उधर का। दोनों के लाभ से वंचित रह गया। हम भी बबूल का बीज बो रहे हैं पर आशा आम की कर रहे हैं तो व्यर्थ है।

कानों में कीलें ठोकने वाले पर भगवान महावीर को गुस्सा नहीं

आया। उन्हें पता था कि मेरे ही बोए हुए बीज हैं। उस समय खयाल नहीं किया, बीज बो दिया तो अब उसको भोगना ही पड़ेगा। जब बबूल को बोएँगे तो काँटों का सामना भी करना पड़ेगा। गुलाब के फूल की सुगंध लेने के लिए उसके पौधे को हाथ लगाएंगे तो काँटे लगेंगे। हमें उन काँटों के घाव को सहन तो करना ही पड़ेगा।

उसी प्रकार से हमें कर्म का भी भोग करना पड़ेगा। नमिराज अभी तो असातावेदनीय कर्म के कारण असातावेदन कर रहे हैं। उनकी बीमारी शांत नहीं हो रही है। वे उनको भोग रहे हैं। आगे क्या स्थिति बनेगी, यह समय पर ज्ञात हो सकता है। अभी तो इतना ध्यान में लें कि पुण्य का फल, आत्मा को पवित्र करनेवाला, आत्मा को साता देनेवाला होता है। पाप का फल आत्मा को कष्ट देनेवाला होता है। इसलिए कोई भी कार्य सोच-समझकर करना चाहिए।

ऐसा करेंगे तो पाप कर्मबंधन से स्वयं को बचा पाएंगे। इतना कहते हुए विराम।

05 अगस्त, 2021

# 10

# फैले घट में ज्ञान प्रकाश

**संभव देव ते धुर सेवो सवे रे...**

सेवा के विभिन्न प्रकार हैं। उसको तीन प्रकार से व्यक्त किया गया है; शारीरिक सेवा, मानसिक सेवा और आध्यात्मिक सेवा। शरीर में पीड़ा होने पर उसे दूर करने के लिए, व्यथा को हटाने के लिए जो कर्म किया जाता है, जो उपाय किया जाता है वह शारीरिक सेवा है। मानसिक तनाव, मानसिक दुर्बलता या मन की अस्थिरता को दूर हटाने के लिए किया गया सहयोग मानसिक सेवा है। समभाव की आराधना की दिशा में आगे बढ़ने के लिए होने वाला प्रयत्न आध्यात्मिक सेवा है।

इन सेवाओं का अपने-अपने स्थान पर अलग-अलग महत्त्व है। तीनों का आपस में संबंध भी रहा हुआ है। कहा जाता है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन वास करता है। वैसे दुर्बल शरीर में भी स्वस्थ मन का वास होता है किंतु अधिकांशत: शरीर दौर्बल्य मन को भी दुर्बल बना देता है। इसलिए हमारा तन-मन जितना सशक्त होता है, आत्मा का भाव भी उतना ही स्ट्रांग होता है। उतना ही सशक्त होता है।

एक योद्धा में दृढ़ता होती है। योद्धा का मनोबल जितना स्ट्रांग होता है उतना दुर्बल व्यक्ति का नहीं होता। भगवान महावीर शारीरिक दृष्टि से सशक्त थे, किंतु अन्य तीर्थंकरों की अपेक्षा उनकी काया लघुभूत थी। जन्म के समय जब शक्रेंद्र मेरु पर्वत पर उनका अभिषेक कर रहा था, उस समय उसके मन में विचार प्रकट हुआ कि इतनी दुर्बल काया, कोमल शरीर, कर्मों का क्षय करने तथा परीषहों को सहन करने में कैसे सक्षम होगा।

शक्रेंद्र की अपनी सोच थी, किंतु उनका शरीर दुर्बल नहीं था। उनका

शरीर छोटा अवश्य था किंतु सशक्त था। अद्भुत शरीर था उनका। ऐसा कहा जाता है कि भगवान महावीर पर आने वाले परीषह एक तरफ थे और तेईस तीर्थंकरों के परीषह एक तरफ थे। भगवान महावीर पर आने वाले उपसर्गों की शृंखला ज्यादा थी, फिर भी उन उपसर्गों को उन्होंने झेला, उन्हें सहन किया। किसी ने भी कैसे भी उपसर्ग दिए हों उन्होंने सब सहन किए। वह सहन सिर्फ शरीर से नहीं हो सकता था। जब तक मन और आत्मा मजबूत नहीं होगी, तब तक शरीर सहन करने में समर्थ नहीं हो पाएगा। यदि मनोबल मजबूत होगा, आत्मबल सुदृढ़ होगा तो शरीर भी साथ देगा। हम विहार करते हैं तो कभी शरीर कहता है कि आराम कर लो, किंतु मन सुदृढ़ होता है तो शरीर को खींच कर दो कदम आगे बढ़ाया जा सकता है। मन में सोच लिया कि चलना कठिन है तो दस कदम चलना भी मुश्किल हो जाता है। फिर वह कहता है कि मेरे से चला नहीं जा सकता। मेरे को दर्द हो रहा है। दर्द इसलिए हो रहा है, क्योंकि उसने पहले ही ठान लिया कि मेरे पैर में दर्द हो रहा है।

एक कहावत है 'मन के हारे हार है मन के जीते जीत।' मन सुदृढ़ रहेगा तो साधना या सेवा जो भी है वह सही तरीके से हो सकेगी।

अब बात है कि मन को सुदृढ़ कैसे बनाएं?

मन को सुदृढ़ बनाने की औषधि की खोज हो चुकी है। वह औषधि पैदा हो चुकी है। उस औषधि का निर्माण हो चुका है। वह दवा आज भी उपलब्ध है, बस उस दवा का सेवन करने वालों की आवश्यकता है। डॉक्टर पर्ची लिख भी दे, किंतु क्या करना है दवा लेकर, जो ऐसा सोचकर पर्ची को अलमारी में रख देगा, दवा नहीं लेगा तो रोग कैसे ठीक होगा? दवाई ले आए पर प्रयोग नहीं किया, उपयोग नहीं किया तो दवा बेचारी क्या करेगी? खैर, मनोबल को मजबूत करने के लिए दवा का निर्माण हो चुका है। दवा मौजूद है, किंतु दवा लेने की तैयारी होनी चाहिए। मन को मजबूत करने वाला श्रुत ज्ञान है। श्रुत ज्ञान से मन सुदृढ़ होता है।

गौतम स्वामी और केशी श्रमण का मिलना हुआ था। केशी श्रमण ने गौतम स्वामी से पूछा कि गौतम, आप जिस अश्व पर सवार हो वह बड़ा दुष्ट है। वह कब आपको पटक दे कुछ पता नहीं। फिर भी आप बहुत सावधानी से उस अश्व पर आरूढ़ हैं, इसका क्या कारण है?

गौतम स्वामी ने उत्तर देते हुए कहा कि मन मेरा अश्व है। मैं उस मन को श्रुत रूपी लगाम से नियंत्रित रखता हूँ। नियंत्रण बहुत महत्वपूर्ण है। यदि हमारा नियंत्रण मन पर होगा तो मन को गलत दिशा में नहीं जाने देंगे। वह गलत दिशा में नहीं जाएगा तो उसकी शक्ति व्यर्थ में खर्च नहीं होगी।

हमारा मन कमजोर क्यों होता है?

मन कमजोर होने के भी कारण हैं। आप उन कारणों को जानते हैं या नहीं?

मेरे खयाल से जानते जरूर हैं। उससे परिचित भी हैं, किंतु समझ में नहीं आने से मन कमजोर हो रहा है। भगवान महावीर ने मन की कमजोरी का निदान किया कि मन कमजोर कैसे होता है।

**अट्टे लोए परिजुण्णे दुस्संबोधे अविजाणए...**

भगवान ने निर्देश दिया कि आर्तभावों में चलने वाले का मन कमजोर होता है। उसका मन जीर्ण हो जाता है, परिजीर्ण हो जाता है। बहुत ज्यादा जीर्ण हो जाता है। वैसी स्थिति में वह बोझ को झेल नहीं पाता। जैसा कि कहते हैं 'भूखे भजन न होंहि गोपाला।' यानी कि भूखा व्यक्ति भजन नहीं कर सकता। भूख से आर्त व्यक्ति, भूख से दु:खी व्यक्ति, जिससे क्षुधा सहन नहीं हो रही है, वह भजन नहीं कर पाएगा, किंतु तपस्वी भजन कर लेता है। जिसने क्षुधा पर नियंत्रण कर लिया या भूख को अपने काबू में कर लिया, उसने अपने मन को कंट्रोल में कर लिया। वह भजन कर लेता है। बात समझ में आई क्या?

डॉक्टर कहते हैं कि कैंसर की बीमारी अब हमारी मुट्ठी में है। एक जमाना था जब कैंसर को लाइलाज माना जाता था। कैंसर के बारे में आज डॉक्टर्स कहते हैं कि वह हमारी मुट्ठी में है। हम उसका इलाज कर सकते हैं। उसे जड़ से भगा सकते हैं। इसका मतलब यह है कि वह उनके कंट्रोल में है। अत: वे उसको नियंत्रित कर सकते हैं। उनके नियंत्रण में आ गई बीमारी। वैसे ही जब हमारी बीमारी नियंत्रित हो जाएगी तो हमें पीड़ा नहीं होगी। जब तक उस पर नियंत्रण नहीं होता है तब तक वो हमें पीड़ा देने वाली होती है। उस पर नियंत्रण हो जाएगा तो वह पीड़ा देने वाली नहीं होगी। भूख भी अनियंत्रित होती है तो दु:ख देती है, पीड़ा देती है।

साधुओं को भिक्षुक भी कहा जाता है। साधु का पर्यायवाची है

भिक्षुक। भिक्षु का निर्वचन करते हुए इसके कई नाम हैं। भिक्षु, मुनि, श्रमण, साधु। ये सारे नाम मुनियों के लिए प्रयुक्त होते हैं। कहा गया– जो क्षुधा का भेदन करने में समर्थ होता है वह भिक्षु है। प्रश्न हो सकता है कि फिर वह खाता क्यों है? यदि क्षुधा का भेदन करने में समर्थ है तो वह खाता क्यों है? इसका समाधान यह है कि उसे मिला तो खा लिया। नहीं मिला तो नहीं मिला। उसके लिए वह हाय–विलाप नहीं करता। वर्षा होने लगे तो वह वर्षा को नहीं कोसता कि पहले हमारा–गोचरी पानी आ जाता, उसके बाद में बरस लेती। वह यह भी नहीं सोचता कि क्या थोड़ी देर के लिए वर्षा रुक नहीं सकती? ऐसे विचार साधु के मन में नहीं आने चाहिए। वैसे विचार नहीं आना ही उसका क्षुधा पर विजय प्राप्त कर लेना है। उसके द्वारा क्षुधा को कंट्रोल में कर लेना है। इसी प्रकार तपस्या करने वाले तपस्वी भी भूख पर अपना नियंत्रण कर लेते हैं। कंट्रोल कर लेते हैं। उनको भूख सताती नहीं है। जिस व्यक्ति को भूख सताती है वो क्षुधा का भेदन करने में समर्थ नहीं होगा। जिसको भूख नहीं सताती है, वही क्षुधा का भेदन है।

एक आदमी को एक समय भोजन नहीं मिले तो त्राहि–त्राहि करने लगता है। एक दिन भूखा नहीं रह सकता। एक दिन भी भूखा रह जाए तो अखबारों में छा जाता है। जैन धर्म में तपस्या का अलग ही आलम है। भगवान महावीर ने साढ़े बारह वर्षों की अवधि में केवल 349 दिन ही भोजन किया।

'एक सती नगर सारा।' एक सत्पुरुष से उस नगर की पहचान हो जाती है। वैसे ही प्रश्न का जवाब देने पर सभा की पहचान है कि यह सभा विद्वानों की है, शूरवीरों की है।

कोई भी जवाब देने वाला नहीं मिले तो फिर समझा जाएगा कि अज्ञानियों की सभा है। ऐसा नहीं समझा जाएगा कि ज्ञानियों की सभा है। हमारे भीतर क्षमता है। हम सामर्थ्यवान हैं। हमें अपनी ज्ञान चेतना को जगाना है। ध्यान रहे, जिस दीये में जलने की क्षमता होती है, माचिस उसी दीये में प्रकाश कर सकती है। यदि दीये में प्रकाश देने की क्षमता ही नहीं हो तो उसमें कितनी भी माचिस रगड़ डालो, प्रकाश नहीं आएगा।

इसको एक उदाहरण से समझें। एक दीपक में पानी भरा हुआ है। उसमें बाती लगी हुई है। उसमें कितनी भी माचिस की तीली रगड़कर लगा देने

से प्रकाश पैदा नहीं किया जा सकता है।

हमारे हीये रूपी दीये में पानी भरा हुआ है या तेल?

तेल भरा हुआ है तब तो ठीक है। यदि एक बार पेट्रोल भरकर दीया जलाना चाहें तो दीया जल जाएगा क्या? जल तो जाएगा परंतु ज्यादा समय तक टिकेगा नहीं। तेल भर कर दीया जलाना चाहें तो न उसमें पानी की जरूरत है न पेट्रोल की। यदि दीये में प्रकाश लाने की क्षमता है तो तेल में ही है। वह तेल हमारे भीतर मौजूद है तो हमारे दीये में प्रकाश आ जाएगा। यदि हमारे दीये में पानी है तो काम नहीं चलेगा। पेट्रोल भर दिया तो दीपक जल जाएगा, किंतु प्रकाश नहीं मिलेगा। प्रकाश तेल से ही मिलेगा। तेल यानी स्नेह। तेल उपमा वाची है। इसमें घी का भी समावेश समझ लें। वैसे ही श्रद्धा रूपी तेल हमारे दीपक में होगा तो हमें प्रकाश मिलेगा। चाहे तेल कम भी हो पर तेल की मात्रा मौजूद है तो ज्ञान की ज्योति जल जाएगी। ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित हो सकती है। जिस दीपक में पानी भरा रहेगा उसमें कितना भी प्रयत्न किया जाए, रोशनी को प्रकट नहीं किया जा सकता।

हमारे में श्रद्धा रूपी तेल है, इसलिए हम नादान नहीं हैं। हमारे भीतर स्निग्धता है। स्निग्धता से हमारे भीतर ज्ञान की ज्योति पैदा होने की संभावना है। संभावना को सार्थक करने की दिशा होनी चाहिए। यदि योग्य साधना और सहयोग मिले तो हमारे भीतर प्रकाश पैदा हो सकता है।

गोशालक के लिए भगवान महावीर ने प्रयत्न भी किए, किंतु उसमें ज्योति प्रज्वलित नहीं हो सकी। ऐसा कहा जा सकता है कि उसका दीपक पानी से भरा हुआ था। गौतम आए भगवान महावीर के पास और उनका दीया जल गया। उनके दीये में रोशनी आ गई। माचिस के तीली की रगड़ लगी और वे 14 पूर्व के ज्ञानी बन गए। केवल एक तीली लगने से 14 पूर्व के ज्ञानी हो गए। माचिस की एक तीली रगड़ने से हमारे भीतर वो शक्ति पैदा नहीं हो रही है, किंतु उस शक्ति को प्रकट करना असंभव नहीं है। हमारे भीतर उसे प्रकट करने की संभावना है। वह प्रकट हो सकता है। बस सही जगह रगड़ लगाने की आवश्यकता होती है। रगड़ सही स्थान पर लगे तो ज्ञान का प्रकाश प्रकट हो जाए।

मैं बता रहा था कि जो ज्ञानी होता है वह आर्त नहीं होता, दुःखी नहीं

होता। क्षुधा का भेदन कर देने वाला भिक्षु भूखा होने पर भी भक्ति करने में समर्थ है, किंतु जिस समय उसके भीतर आर्त भाव आ जाएगा, वह दु:खी हो जायेगा। उस समय उसको दिया गया उपदेश कारगर नहीं होता। उपदेश उसी के लिए कारगर है जो अभिमुख होता है। जिसमें जिज्ञासा होती है। जिज्ञासा का तेल होगा और प्रज्वलित होने के लिए तैयार होगा तो दीया जल जाएगा। वह रोशनी भी देगा। हमारी अभिमुखता होगी तो हमारे भीतर वह ज्ञान प्रज्वलित हो सकता है।

भगवान महावीर से पूछा गया कि भगवन् पर्युपासना करने से क्या लाभ हो सकता है?

एक दिन मैंने तथारूप श्रमण माहण के बारे में बताया था कि तथारूप किसको कहते हैं और तथाकथित किसको कहते हैं। जैसी पोशाक है वैसा ही जीवन जीने वाले को तथारूप कहते हैं और जिसने पोशाक तो बहुत अच्छी सजाई है किंतु जीवन वैसा नहीं है, उसे तथाकथित कहते हैं। एक कहावत है 'ऊँची दुकान फीके पकवान।' फीके पकवान का मतलब है कि पोशाक तो 25 हजार की है, किंतु पोशाक के अनुरूप आचरण नहीं है। यानी तथाकथित। भगवान से कहा गया कि तथारूप श्रमण माहण की पर्युपासना करने से क्या लाभ होता है?

पर्युपासना की विधि दो दिन पहले बताई थी। मन की एकाग्रता व अभिमुखतापूर्वक जब पर्युपासना की जाती है तो क्या लाभ होता है? लाभ यदि मालूम नहीं हो तो मंद बुद्धि वाले की भी उस ओर प्रवृत्ति नहीं होती। जब मंद बुद्धि वाला भी प्रयोजन के बिना प्रवृत्ति नहीं करता है, तो विलक्षण प्रज्ञा वाला बिना प्रयोजन के उस ओर कैसे प्रवृत्त होगा?

भगवान ने कहा कि 'सवणे' यानी सुनने का लाभ मिलता है। तथारूप श्रमण माहण की पर्युपासना करेंगे तो सुनने का लाभ मिलेगा। कोई अखाड़े में जाएगा तो क्या लाभ मिलेगा? अखाड़े में जाने पर मन होगा कि पहलवान से कुश्ती लड़ लूँ। शायद कुश्ती लड़ने की इच्छा हो जाए। जैसी संगत होगी वैसी रंगत होगी। साधुओं की संगत में जाने वाला धीरे-धीरे अपने भीतर साधुता के गुण प्रकट कर सकता है, किंतु पास बैठे रहने से गुण प्रकट नहीं होगा। दूध को यदि दही के पास रख दो तो दही नहीं जमेगा। पास पड़े रहने से दूध, दही नहीं

बनेगा। थोड़ा-सा दही जावण के रूप में डाला जाएगा तो ही दही जमेगा। यदि दूध में दही मिला दिया तो कालांतर में पूरा दूध, दही में परिवर्तित हो जाएगा। अपना आकार बदल देगा। जैसे दूध, दही के रूप में बन जाता है, वैसे ही साधुओं का थोड़ा-सा ज्ञान जिसने अपने जीवन में उतार लिया वह अपने जीवन को तदनुरूप बनाने में समर्थ बनेगा।

साधु के गुण क्या हैं।

समता के लिए श्रम करना साधु की प्राथमिकता है। कषायों को जीतने का प्रयत्न करना साधुता है। हम भी संगत प्राप्त करेंगे तो हमारे भीतर भी वह शक्ति पैदा होगी कि विकट स्थितियों में भी हम कैसे समता रख सकते हैं। हमारे भीतर समत्व का भाव कैसे पैदा हो। बिल्ली अपने बच्चे को भी मुँह में पकड़ती है और चूहे के बच्चे को भी पकड़ती है। क्या दोनों स्थितियों में भाव समान रह पाते हैं? दोनों स्थितियों में उसके भाव एकसमान नहीं रह पाते। अनुकूल-प्रतिकूल दोनों स्थितियों में समान भाव रख सकने को समता कहते हैं। समता प्राप्त करने के लिए यदि हम साधुओं की संगत में जाते हैं तथा उनकी संगत करते हैं तो हमें लाभ मिलता है। पर्युपासना करने से, सुनने का लाभ मिलता है। सुनने से कल्याण व अकल्याण मार्ग का ज्ञान हो पाता है। यथा-

**सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं।**

कल्याण किसका होने वाला है? किसका होने वाला है संसार में कल्याण?

जब हमें सुनने का मौका मिल जाएगा, तब हम अपनी दशा को बदलने की कोशिश करेंगे। दर्पण के सामने आदमी यह देखने जाता है कि कहीं मेरे चेहरे पर कोई दाग तो नहीं लगा है। तिलक टेढ़ा-मेढ़ा तो नहीं लगा है। मेरे बाल बिखरे हुए तो नहीं हैं। यह सब देखने के लिए व्यक्ति दर्पण देखता है। वह दर्पण के सामने जाकर देखेगा कि बाल अस्त-व्यस्त है, राफा बिखरुड़ी (मुँह से निकलने वाली लार, जो गालों पर जम जाती है) है, तिलक टेढ़ा-मेढ़ा लगा है तो वह क्या करेगा? जैसा है, वैसा ही रहने देगा या उसे ठीक करने का प्रयत्न करेगा?

मेरे खयाल से दर्पण के सामने महसूस हो जाए कि चेहरा भुंडा लग रहा है, खराब लग रहा है, ठीक नहीं लग रहा है तो वह उसको ठीक किए बिना

घर से बाहर निकलने की कोशिश नहीं करेगा। वह कहीं मीटिंग में शामिल होने के लिए नहीं जाएगा। किसी भोज में शामिल होने नहीं जाएगा। किसी प्रोग्राम में नहीं जाएगा। वह दोस्तों से दूर रहेगा। वह आदमी पहले अपने मुँह की सफाई करेगा। मुँह को धोकर आएगा, पुन: देखेगा दर्पण में। दर्पण के सामने जाकर यह देखना चाहेगा कि अब मैं कैसा दिख रहा हूँ। जैसे दर्पण के सामने पता चल जाता है कि चेहरे में क्या खराबी है, वैसे ही साधुओं के पास जाने पर इतना ज्ञान हो जाता है कि मेरी चेतना किस कारण से दु:खी है। वह कहाँ फँसी है। क्या रुकाव है, क्या अटकाव है। साधुओं की संगत से सुनने का लाभ मिलता है। यानी स्वयं को समझने का फायदा होता है।

नमिराज ऋषि को वैद्य की संगत से ज्ञात हुआ कि गोशीर्ष (बावना) चंदन का लेप करने से बीमारी दूर हो जाएगी। वह कार्य चालू हुआ। महारानियों ने चंदन की घिसाई शुरू कर दी। महारानियों ने बड़े प्रसन्न भाव से, अहोभाव से कार्य किया कि आज हमें सेवा का मौका मिला है। घिसाई करते-करते रानियों के हाथों में छाले पड़ गए पर उन्होंने चंदन घिसना बंद नहीं किया। छाले पड़ गए तो पड़ गए। उन्हें छालों की कोई चिंता नहीं है। उन्हें बस यह फिक्र है कि उनका नाथ, उनका पति स्वस्थ हो जाए, फिर इन सारी चीजों का समाधान मिल जाएगा। फिर हमारा श्रम सार्थक हो जाएगा। हमारा परिश्रम सफलता देने वाला बनेगा। हमारा परिश्रम व्यर्थ नहीं जाएगा। रानियाँ चंदन घिसती रहीं और नमिराज के शरीर पर लेप लगाया जाता रहा।

**जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर जय जय जय जयकार...**

कोई व्यक्ति सोचता है कि मैं कुछ भी करने में समर्थ नहीं हूँ तो वह बोल भी देता है कि मैं कुछ करने में समर्थ नहीं हूँ। एक चिंतक ने एक व्यक्ति से कहा कि तुम कुछ भी करने में समर्थ नहीं हो तो एक काम करो। और प्रयास करो। क्या करना है काम, क्या प्रयास करना है? क्या प्रयत्न करना है? प्रयत्न यह करना है कि रोज उगते हुए सूर्य को देखना है। उसने वैसा करना प्रारंभ किया।

उगते सूर्य को देखने के लिए वह कितने बजे उठेगा?

ठीक समय पर उठेगा तो दिनचर्या स्वत: सही होने लगेगी। उसने प्रयास किया और सफल हुआ। आपको क्या प्रयास करना है? 13 तारीख को

उपवास करना है। किस उद्देश्य से करना है? मासखमण करने के लिए। रात को मन खिसक जाय तो घबराना मत। भूख पर नियंत्रण करना है तो कुछ प्रयत्न करना ही होगा। कुछ त्याग करना ही होगा। उसके बिना विजय हासिल नहीं हो पाएगी। उसके बिना विजयमाला गले में नहीं पड़ेगी। हमारी जय-जयकार नहीं होगी। व्याख्यान में हमारा कोई नाम नहीं लेगा। नाम की जरूरत नहीं है। कर्मों की निर्जरा के लिए, अपने मन को नियंत्रित करने के लिए, क्षुधावेदनीय पर अंकुश लगाने के लिए यह प्रयत्न करना है। एक दिन, दो दिन, तीन दिन या चार दिन के बाद जल्दी से भूख नहीं सताएगी। उसे परेशानी नहीं होगी। भूख को तीन दिन तक तो सहना होगा। अपना जोर लगाना होगा। मन को सुदृढ़ बनाना होगा।

प्रणत मुनि जी बोल रहे हैं कि इन लोगों को धक्का लगाना पड़ता है। मैं सहज ही विचार में चला गया। लोगों की शिकायत है कि म.सा. आज की युवा पीढ़ी धर्म के नजदीक नहीं आ रही है। आएगी कैसे? नहीं आएगी। क्यों आएगी? उनको क्या लेना-देना धर्म से? जिस धर्म को धक्का लगाना पड़े, उस धर्म के नजदीक वे कैसे आएंगे? धक्का लगाने वाली गाड़ी पर बैठना कोई पसंद नहीं करेगा। आज गाड़ी ऑटोमैटिक चाहिए। रिमोट वाली चाहिए। सेल्फ से चलने वाली चाहिए। फिर चाबी की आवश्यकता किसको है?

आपको कैसी गाड़ी चाहिए? धक्का लगाने वाली या सेल्फ वाली? धक्का लगाने वाली को कितना ही धक्का लगाओ एक बार और, एक बार और, एक बार और, वो स्टार्ट नहीं होती। उसका इंजन चलेगा पर थोड़ी देर तक ही। आगे जाकर फिर धक्का लगाओ, ऐसी गाड़ी कोई नहीं चाहता। पाँच पैसे ज्यादा लग जाएं पर सफर बिना धक्का, बिना चाबी वाली गाड़ी से करना पसंद करेंगे। रिमोट से चलने वाली, इशारे से चलने वाली पर सफर करेंगे। आप हमें देखते हो। हम धक्का लगाएं तो आप उपासना करें। ऐसा धर्म वे क्यों स्वीकार करेंगे? ऐसा धर्म स्वीकार करने की जरूरत नहीं है। ऐसे धर्म में आकर क्या करेंगे? बहुत स्पष्ट है कि हमें धर्म से कुछ मिलता है तो हम आते हैं। धर्म से हमें कुछ मिलेगा तो हमें कहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। जैसे कड़ाके की भूख लगी हो तो बिना बुलाए रसोईघर के समीप पहुँच जाएंगे या नहीं? श्रीमती जी आवाज लगाएं या न लगाएं, आप डाइनिंग टेबल पर बैठ जाएंगे।

गुटखा खाने वाले अपना हाथ पॉकेट में डालते हैं और अपने आप सारा काम हो जाता है। उनको मेहनत नहीं करनी पड़ती। जिस व्यक्ति को शराब पीने की लत है, उसके कदम अपने आप ठेके की ओर चले जाते हैं। वह कैसे गया, उसने क्या किया कुछ पता नहीं चलता। ठीक वैसे ही हमें धर्म से कुछ मिला होता तो फिर धर्म के लिए प्रेरणा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह आवश्यकता ही नहीं पड़ती कि धर्म के लिए लोगों को प्रेरित करें। फिर तो भीतर से प्रेरणा जगती है। स्वत: स्फूर्त जगती है। धर्म की आराधना किसके लिए करना? क्या महाराज सा. के लिए करनी है? सोचें! धर्माराधना करने का लाभ किसको होगा?

दुकान खोली है तो किसके लिए खोली? सेवा के लिए। हमारा प्रकल्प सेवा के लिए नहीं है। अपना लाभ कमाने के लिए दुकान खोली गई है। यह बात अलग है कि उससे दूसरों की सेवा हो जाएगी, आसानी से सामान मिल जाएगा, ब्यावर संघ का नाम हो जाएगा, पर हम लोगों ने अपने लाभ के लिए दुकान डाली है न की लोगों की सेवा के लिए। सेवा करना बहाना है। वास्तविकता है अपने लाभ के लिए डाली गई है। लोगों की सेवा का दिखावा हो सकता है। वैसे ही हमारी धर्माराधना का सारा उपक्रम एकमात्र कर्मों की निर्जरा के लिए है। हमें उससे कुछ लाभ नहीं होता है, ऐसी बात नहीं है। कई बार लाभ तो होता है किंतु मंद गति से होता है, इसलिए मालूम नहीं पड़ता है।

जब बूँद-बूँद करके पानी कलश या बरतन में आता है तो वह दिखता है या नहीं! किसी पाइप से एक-एक बूँद ही पानी आ रहा हो पर उसके नीचे बरतन रखें तो बरतन 1-2 घंटे में भर जाता है या नहीं भर जाता है?

पुराने समय में मटकी में पानी भरा जाता था। वह मटकी चूने वाली होती थी। 'जिती झर्रे बिती ठर्रे।' मटकी के नीचे एक बरतन रख दिया जाता था। कुछ घंटों में बरतन भर जाता था। फिर उसको बाहर खाली कर देते थे। हमारे भीतर झरने की कला है कि नहीं! रूम में लगा ए.सी. जब चालू करते हो तो रूम ठंडा हो जाता है। उसमें भी पानी रहता है। उसकी मशीन से पानी झरना शुरू हो जाता है। यदि हमारी आत्मा ठंडी होगी तो हमारा झरना चलेगा। वह हमको दिखेगा। किसी ने गालियाँ बक दीं किंतु आपके मन में कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई, कोई परिणाम नहीं आया कि किसने क्या गाली दी, तो समझ लो कि

मन से जो पानी झरा था, उससे वह बरतन भरा है। धर्म का ऐसा परिणाम अनुभव करेंगे, तो फिर किसी से प्रेरणा लेने की आवश्यकता नहीं रहेगी। हम स्वत: वहाँ पहुँच जाएंगे।

उधर महारानियों को चंदन घिसने में आनंद आ रहा था। वे चंदन घिसने में लगी थीं। रानियाँ परिश्रम कर रही हैं। मेहनत कर रही हैं। परिश्रम करने से उनके चेहरे पर पसीने की बूँदें दिखती हैं। चेहरे पर पसीने की बूँदें आने से रानियों का चेहरा और भी सुंदर दिखने लगा। वस्तुत: श्रम जीवन का सार होता है। श्रम के बिना मनुष्य जीवन को एक प्रकार से हारने जैसी स्थिति आ जाती है।

रानियों का हाथ बहुत वेग से चल रहा था। उनका हाथ तेजी से चल रहा था। हाथ और बाँह थकने लगी तो भी रानियों का ध्यान थकान की तरफ नहीं गया। उनके मन में उल्लास था कि बस हमारा कार्य सफल हो जाए। वैद्य ने कहा है कि चंदन घिसकर लगाने से नमिराज की बीमारी ठीक हो जायेगी। उनके मन में था कि इसे लगाने से हमारे नाथ, पति की बीमारी ठीक हो जाती है तो यह हमारे लिए सबसे बड़ी उपलब्धि होगी।

**जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर जय...**

चंदन घिसते समय रानियों ने हाथ में कंगन, चूड़ियाँ पहनी हुई थीं। उनके हाथ हिल रहे थे तो कंगन की आवाज आती थी। काव्य में कवि ने अपनी कल्पना का भाव भरा कि कंगन भी पीछे क्यों रहते। जैसे-जैसे महारानियों को चंदन घिसने का जोश आ रहा था, वैसे-वैसे वे भी मस्त बन गए। मस्त होकर वे आवाज कर रहे थे कि हमारे नाथ शीघ्र ही ठीक हो जाएं, स्वस्थ हो जाएं। पर उनके कंगनों से निकल रही ध्वनि नमिराज ऋषि को सुहा नहीं रही थी।

बीमारी में कई बार कोई बोलता है तो आवाज सुहाती नहीं है। उस समय लगता है कि बोलने वाला चुप रहे तो अच्छा। कभी उन कानों को वही शब्द, वे ही ध्वनियाँ बड़ी सुहाती रही होंगी, पर जिस समय व्यक्ति दु:खी होता है, उस समय उसका मन उनको सुनना नहीं चाहता। उस समय उसकी चाहत ही महत्त्वपूर्ण होती है।

सागरमल जी चोरड़िया की दीक्षा हुई। उन्होंने संथारा लिया। शरीर में

वेदना जरूर थी किंतु संथारा करने के बाद शांत भाव से सुन रहे थे। शाम के चार बजे के बाद एक से बढ़कर एक कई गीत चालू किए। पर जैसे ही अरिहंत जय जय, सिद्ध प्रभु जय जय की ध्वनि शुरू हुई, वे उसमें मस्त हो गए। उनकी पीड़ा मानो जैसे शांत हो गई। पीड़ा को भी जीता जा सकता है। पीड़ा जीतने का सुंदर उपाय आपका ध्यान है। पीड़ा से ध्यान हटा दो या फिर पूरा ध्यान उस पर केंद्रित कर लो। ध्यान डाइवर्ट कर लो। देखो मत कि उधर क्या हो रहा है।

बच्चे दौड़ते हुए जाते हैं, खेलते हैं। दौड़ते-खेलते एक बच्चा नीचे गिर जाए, उसे चोट आ जाए तो पहले वह इधर-उधर देखता है कि कोई देख रहा है क्या? यदि कोई देखे तो रोना शुरू कर देता है। यदि बच्चा नीचे गिरा और किसी ने उसकी तरफ नहीं देखा तो वह नहीं रोएगा। उठेगा, मिट्टी झाड़ेगा और पुनः दौड़ने-खेलने लग जाएगा। यदि किसी ने देख लिया तो वह रोने लगेगा। हूं-हूं-हूं करना शुरू कर देगा। नहीं देखने पर वह उठकर भाग जाता है। जैसे ही उसके दिमाग में आएगा कि कोई उसको देख रहा है तो वह हमदर्दी के लिए रोने लग जाएगा।

हमको दर्द कब-कब होता है? वंदना करें तब ये दर्द होता है। कहते हैं कि 'म्हारी कमर दुखे।' वंदना करते वक्त यदि हिम्मत कर ले कि दुखे तो दुखे पर वंदना सही करूंगा तो कर लेगा। जो होना होगा वो तो होगा, किंतु यहाँ आकर हमारी गाड़ी अलग हो जाती है। लेकिन जो व्यक्ति मन में धार लेता है कि मुझे तो करना ही है, वह करके ही रहेगा। आप या तो दर्द पर ध्यान केंद्रित कर लो या कितना भी दर्द हो उसे भुला दो।

किसी को एक छोटी-सी फुंसी थी। उसे उस जगह पर दर्द हो रहा था, लेकिन जैसे ही उसने उस पर हाथ लगाया तो दर्द ज्यादा होने लगा। फुंसी पर ध्यान देने से दर्द ज्यादा होने लगा। यदि उस पर ध्यान नहीं देंगे, दिमाग से वो फुंसी निकल जाएगी तो सब दर्द ठीक हो जाएगा। यदि अपने आप पर ध्यान दिया जाता है तो वो दर्द जल्दी सिकुड़ जाएगा। यदि आपने फुंसी पर ध्यान नहीं दिया तो ज्यादा दर्द नहीं होगा।

नमिराज ऋषि को कंगनों की आवाज सुहा नहीं रही थी। उन्होंने कहा कि यह ध्वनि कहाँ से आ रही है। उनके कहने के लहजे से महारानियाँ समझ गईं कि नाथ को चूड़ियों की आवाज, चूड़ियों की ध्वनि सुहा नहीं रही है।

रानियों ने कितने मनोभाव से चूड़ियाँ सजाईं थीं, किंतु अपने स्वामी की साता के लिए सारी चूड़ियाँ और कंगन हाथ से उतार कर केवल एक-एक चूड़ी रखी। रानियों को आभूषण पहनने का शौक रहा होगा, किंतु दूसरी तरफ पति पीड़ित थे।

पीड़ित अवस्था में क्या करना चाहिए?

चंदन घिस के देना या चूड़ियों की ध्वनि सुहा नहीं रही है तो चंदन घिसना ही बंद कर देना?

चंदन नहीं घिसेंगी तो कंगनों की आवाज स्वत: बंद हो जाएगी। कोई ऐसा बहाना बना भी सकता है किंतु महारानियों ने वैसा नहीं सोचा। वे एक-एक कंगन रखकर अन्य कंगन, चूड़ियों को उतार कर चंदन घिसने में लगी रहीं।

आगे क्या हुआ, कैसे हुआ, समय के साथ विचार करेंगे। अपने आप प्रेरणा लेकर अपने आप से स्वाध्याय, ज्ञान, ध्यान, धर्माराधन करेंगे तो अपनी आत्मा धन्य बनेगी। इतना कहते हुए विराम।

07 अगस्त, 2021

# 11

# सुनो वाणी वीर की

**संभव देव ते धुर सेवो सवे रे...**

तथारूप श्रमण माहण की परिभाषा हम सब सुन चुके हैं। तथारूप का मतलब है कि जैसा मानना हो, जैसा पहनावा हो, जैसी पोशाक हो, उसके अनुरूप ही जीवन जीया जा रहा हो। कोई दिखावा नहीं हो। ऊँची दुकान और फीके पकवान की बात नहीं हो। यानी यथार्थ जीवन हो। जैसा जीवन वैसा ही पहनावा। जैसा पहनावा वैसा ही जीवन।

'जहा अंतो तहा बाहिं' की और हमारी नजर बारीकी से जाए।

मतलब जैसा भीतर है, वैसा ही बाहर है। जैसा बाहर है, वैसा ही भीतर है। बाहर और भीतर एक समान। दोनों में कोई अंतर नहीं। जिसकी कथनी और करनी एक है, उसे कहते हैं जैसा अंदर वैसा बाहर। ऐसा नहीं कि कथन कुछ और है जबकि करना कुछ भिन्न है। जहाँ इस तरह की प्रवृत्ति नहीं है, वहाँ फलित होता है– जहा अंतो तहा बाहिं।

बहुत बड़ा व्यक्ति किसी के सामने मीठा बोलता है। उसके सामने मीठी–मीठी बातें करता है, किंतु जब वह आदमी चला जाता है, तो उसकी जी भर बुराई करता है। उसकी निंदा करता है। ऐसा करना कथनी और करनी में भिन्नता का रूप है। हम किसी के मुँह पर मीठा बोलें, उसके प्रति अच्छी बातें करें, किंतु पीठ पीछे उसकी बुराई करें तो यह एकरूपता नहीं हुई। कुछ लोग किसी के प्रति तब तक मीठी बातें करते हैं, जब तक वह सामने है। उसके बाद वह मीठा कब चरका बन जाए, पता ही नहीं चलता। कुछ लोगों की आदत होती है किसी के सामने बुरा न बनने की। ध्यान रहे, किसी के सामने भले ही बुरा मत बनें किंतु यदि उसके प्रति मन में बुरा विचार है तो उसका प्रभाव उस

पर पड़ेगा। ऐसा नहीं होगा कि उसका प्रभाव नहीं पड़ेगा।

हम जिस सृष्टि में रहते हैं, वहाँ एक-दूसरे से प्रभावित होते रहते हैं। हमारे विचार दूसरों को प्रभावित करते हैं और दूसरों के विचार हमको प्रभावित करने वाले हो सकते हैं। यदि हमारा मनोबल सशक्त न हो तो कोई भी हमें प्रभावित कर सकता है, किंतु यदि हमारा मनोबल सशक्त है तो हमें कोई भी प्रभावित नहीं कर सकता। भगवान ने इसीलिए कहा-

**'सुत्तेसु यावि पडिबुद्ध-जीवी, न वीससे पंडिए आसुपन्ने'**

अर्थात् हे साधक! तू सोए हुए लोगों के बीच में है। उनका विश्वास मत करना। वे तुम्हारे ऊपर कोई प्रभाव न डाल सकें, इसलिए तू सावधान रहना। सावधान व्यक्ति पर किसी दूसरे व्यक्ति का जल्दी से प्रभाव नहीं पड़ता। सोए हुए व्यक्ति को स्वप्न भी प्रभावित कर सकते हैं, किंतु जो जागृत है, जो सजग है, सावधान है उस पर जल्दी से कोई प्रभाव नहीं बना सकता। वह हमेशा अपने को सावधान रखता है, लेकिन अधिकांश व्यक्ति इतने जागृत नहीं होते इसलिए दूसरों का प्रभाव उन पर हावी हो जाया करता है। उनको प्रभावित करने वाला बन जाता है। जब दूसरों के प्रभाव से हम प्रभावित होते हैं तो निश्चित रूप से हमारे भीतर एक अकथनीय काम हो जाता है। हमें मालूम ही नहीं पड़ता कि कब किसने मेरे पर आक्रमण कर दिया। पता नहीं चलता कि कौन किस पर हावी हो गया। इसलिए दूसरों से प्रभावित होना छोड़ दो।

आजकल मोबाइल हैक हो जाता है। उसकी मेमोरी लुप्त हो जाती है। मोबाइल से डाटा चुरा लिया जाता है। मोबाइल जैसी घटना हमारे साथ भी घट सकती है। किसी के भी साथ ऐसी घटना घट जाती है। इस पर वैज्ञानिक प्रयोग भी हुए हैं।

आचार्य गुरुदेव फरमाया करते थे कि ऐसे वैज्ञानिक प्रयोग हुए हैं, जिसमें वैज्ञानिक ने अपने से दो हजार किलोमीटर की दूरी पर बैठे किसी व्यक्ति पर प्रयोग किया। प्रयोग करने वाला दो हजार किलोमीटर दूर बैठे व्यक्ति से कहता है कि सो जाओ, सो जाओ। दूर बैठे व्यक्ति को लगता है कि कोई उसे आवाज लगा रहा है। कोई कुछ कह रहा है। वह सोचता है कि मुझे कौन पुकार रहा है! कौन मुझे गाइड कर रहा है! उसे कोई नजर नहीं आता, किंतु उसको आलस आने लगता है। झपकी आने लगती है। झपकी आने की वजह से वह

सो जाता है। उससे पहले वह एकदम ठीक बैठा था। इस प्रयोग में दो हजार किलोमीटर दूर बैठा व्यक्ति सो गया। उसे कहा गया सोने के लिए और वह निद्रा में चला गया। वहीं से पुन: प्रयोग होता है कि उठ जाओ, उठ जाओ, उठ जाओ। वह हड़बड़ाकर उठ जाता है कि मुझे कौन पुकार रहा है।

एक सेना का अधिपति किसी रास्ते से निकल रहा था तो उसको एक महात्मा नजर आ गए। लोगों ने उस महात्मा को प्रणाम किया तो उसने पूछा कि प्रणाम क्यों किया गया? लोगों ने कहा, ये संत हैं। वह भी महात्मा के पास गया और कहा कि क्या स्वर्ग-नरक होता है? तो महात्मा ने कहा कि हाँ होता है। सेना के अधिपति ने तलवार निकाली और कहा कि मुझे बताओ स्वर्ग और नरक कहाँ है, नहीं तो इस तलवार से तुम्हारी गरदन उड़ा दी जाएगी। साथ ही उसने कहा कि लोगों को क्यों फालतू में परेशान करते हो कि स्वर्ग होता है, नरक होता है। क्या वस्तुत: होते हैं ये?

महात्मा कड़क आवाज में बोले कि चल निकल यहाँ से नहीं तो अभी तुम्हारी खबर ले ली जाएगी। क्या स्वर्ग-नरक लगा रखा है। सैनिक को भी गुस्सा आ गया। वह तलवार घुमाकर आगे बढ़ने लगा। महात्मा ने कहा, रुको! तुमको इतना ताव क्यों आया? सैनिक बोलता है कि तुम ऐसी बात बोलोगे तो क्या आएगा? महात्मा ने कहा कि यही नरक है। उसने थोड़ी देर सैनिक की प्रशंसा की। प्रशंसा से सैनिक खुश हो गया। उसके खुश होने पर महात्मा ने कहा कि यही स्वर्ग है।

जहाँ हम प्रसन्न हो जाएं, खुश रहें, वहीं स्वर्ग है। संक्लेश में जीना ही नरक है। वह सीधा-सा नरक नहीं है किंतु उसका कारण रूप होने से वह नरक रूप कहा जाता है। प्रसन्नता में जीना ही स्वर्ग है। मैं बताना यह चाह रहा था कि महात्मा की कड़कती आवाज से सेना के अधिकारी का क्रोधित होने का मतलब है कि दूसरों के विचारों से व्यक्ति प्रभावित होते हैं।

एक आदमी हमको गाली देता है उसे गलत मानेंगे या सही?

किसी की गाली से हमारे मन में, हमारे विचारों में उथल-पुथल होती है, हमारे मन में उतार-चढ़ाव होता है तो वह दूसरे का प्रभाव हुआ या नहीं! वही दूसरी जगह हमारी प्रशंसा कर रहा हो, मंच पर हमको बुलाया जा रहा है, माला पहनाई जा रही है, उस समय हमारे विचारों में फर्क होता है नहीं! इससे

साफ है कि हम बाहरी भावों से, दूसरे लोगों से प्रभावित होते हैं। इस तरह प्रभावित होना हमारी कमजोरी है। वस्तुत: क्या किसी के कहने मात्र से हम बुरे हो गए! किसी के कहने से हम नादान हो गए! किसी ने मूर्ख कह दिया तो उसके कहने मात्र से क्या हम मूर्ख हो गए! वस्तुत: उसकी बात पर क्रोधित होकर हम अपनी मूर्खता का परिचय दे रहे होते हैं। मूर्ख कहने पर यदि कोई गुस्सा करता है तो गुस्सा करने वाला अपनी मूर्खता प्रकट कर रहा है या नहीं? यदि मैं मूर्ख नहीं हूँ तो दुनिया कुछ भी कहे, मेरा क्या जाएगा। दुनिया का क्या करना। किसी के कहने से मैं कैसे मूर्ख हो सकता हूँ!

अगर आप अंधे नहीं हो और कोई आपको कह दे कि अरे अंधे क्या कर रहा है, कुछ दिखाई नहीं देता तो क्या आपको गुस्सा आएगा? क्या आपको पीड़ा होगी? आपके दिल को चोट लगेगी। यदि आपको पीड़ा हुई तो क्यों हुई? चोट लगी तो क्यों लगी? अगर आप अंधे नहीं हो तो किसी के कहने से अंधे थोड़ी हो जाओगे। लेकिन हमारी ऐसी स्थिति बनती है कि किसी के ऐसा कहने से हम जल-भुन जाते हैं। जलने की बात थी नहीं। अपने को ठंडा रहना था, क्योंकि किसी के कहने से अच्छे या किसी के कहने से हम बुरे नहीं होंगे। कोई कभी प्रशंसा कर दे तो ऐसा सोचना गलत है कि मैं महान हो गया। किसी ने हमारे मुँह पर हमारी तारीफ क्या कर दी, हम तो चढ़ गए आकाश। वह हम को चढ़ा रहा था और हम चढ़ गए। इसका मतलब हुआ कि हम किसी के चढ़ाने से चढ़ते हैं, जबकि यह सच्चाई नहीं है। किसी के चढ़ाने से चढ़ना एक प्रकार से मूर्खता कही जा सकती है। अपनी क्षमता अपने आप में ज्ञात होनी चाहिए। यह ज्ञात होना चाहिए कि मेरा सामर्थ्य क्या है, मैं कैसा व्यक्ति हूँ, मेरे भीतर क्या स्थिति है। व्यक्ति स्वयं से प्रेरणा ले, क्योंकि दूसरा कोई नहीं जान सकता कि वह कैसा है। जितना व्यक्ति स्वयं को जान सकता है उतना कोई दूसरा नहीं जान सकता। विशिष्ट ज्ञानी जान सके वह बात न्यारी है। उनका जानना अलग है। 14 पूर्व के ज्ञानियों की बात, केवलज्ञानियों की बात अलग है।

केवलज्ञानी कितने होते हैं?

केवली चार प्रकार के बताए गए हैं; श्रुत केवली, अवधि केवली, मन:पर्याय केवली और केवलज्ञानी केवली। केवली यथार्थ को सम्यक् प्रकार

से जाननेवाले होते हैं। केवलज्ञानी जैसा जानते हैं, 14 पूर्व के ज्ञानी भी तत्त्व को उसी प्रकार से जानते हैं। वे भी उसी प्रकार से प्ररूपणा करने में समर्थ होते हैं। एक प्रसंग है कि तीर्थंकर भगवान के सान्निध्य में देव ने कहा, निगोद की व्याख्या सुनना चाहता हूँ। तीर्थंकर भगवान ने निगोद की सूक्ष्म व्याख्या की। उसी देव ने पूछा कि भगवन् क्या भरत क्षेत्र में भी वर्तमान में ऐसे सक्षम आचार्य हैं जो निगोद की बारीक व्याख्या करने में समर्थ हैं? भगवान ने कहा कि हाँ, भरत क्षेत्र में इस समय, इस काल में ऐसे आचार्य मौजूद हैं जो निगोद की बारीकी से व्याख्या करने में समर्थ हैं। देव ने उनका नाम पूछा। भगवान ने नाम बताया तो वह भरत क्षेत्र में श्यामाचार्य के समक्ष प्रस्तुत हुआ, उनके सामने अपनी जिज्ञासा रखी, अपने भाव रखे कि मैं निगोद की व्याख्या सुनना चाहता हूँ।

आचार्य ने जिस प्रकार निगोद की व्याख्या की उसे सुनकर देवता दंग रह गया। देवता ने देखा कि जैसी तीर्थंकर भगवान ने व्याख्या की वैसी ही ये आचार्य भी कर रहे हैं। देव ने जाते हुए कहा कि आप शुद्ध ज्ञान में प्रखर हैं, मैं जानना चाहता हूँ कि मेरा आयुष्य कितना है? ऐसा कहते हुए ब्राह्मण वेशधारी देव ने अपना हाथ आचार्य के सामने किया। हाथ देखकर श्यामाचार्य ने जान लिया कि यह मनुष्य कोई और ही है। यह साधारण मनुष्य नहीं है। इसकी आयुष्य रेखा सागरोपम की ओर जा रही है। उसने कहा कि तुम मनुष्य नहीं हो। तुम कोई देव हो। इंद्र हो।

इस कहानी से हम आगे बढ़ते हैं। इस कहानी से हमारा कोई लेना-देना नहीं है। केवली भगवान जो फरमाते हैं उसी प्रकार से श्रुत केवली भी व्याख्या करने में समर्थ हैं।

केवली भगवान और श्रुत केवली में केवल इतना फर्क होता है कि केवली साक्षात् जानते हैं, देखते हैं और श्रुत ज्ञानी तीर्थंकर भगवान द्वारा व्यक्त किए हुए ज्ञान के माध्यम से जानते हैं। तीर्थंकर भगवान जितना जानते हैं, देखते हैं उतना बोल नहीं पाते पर जितना वे कह पाते हैं उतना श्रुत ज्ञानी जान पाते हैं, वह कथन करने में भी समर्थ है।

मुख्य रूप से छह प्रकार के द्रव्य होते हैं। उनके गुण और पर्याय होते हैं। इनसे अलग कोई पदार्थ नहीं होता। बात कहीं ऊपर से न निकल जाए। द्रव्य

कितने प्रकार के होते हैं? द्रव्य छह प्रकार के होते हैं। द्रव्य छह नहीं हैं, अनंतानंत हैं। जैन सिद्धांत बत्तीसी में आप देख लेना, बात समझ में आ जायेगी। द्रव्य छह नहीं हैं। द्रव्य अनंत हैं। उनके प्रकार छह हैं। द्रव्य के प्रकार छह हैं; धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय। जीवास्तिकाय-अनंत जीव द्रव्यों का समूह है। वैसे ही पुद्गलास्तिकाय भी द्रव्य रूप से अनंत है।

किसी ने आलू का एक कण सुई के अग्रभाग पर उठाया। उसमें कितने जीव हैं? उसमें अनंत जीव हैं। इसे समझने के लिए हमें प्रतर व श्रेणी आदि का ज्ञान करना पड़ेगा। एक कॉपी लें। उसका प्रत्येक पेज एक-एक प्रतर के रूप में मान लें। उनमें खींची लाइनों को श्रेणी रूप व उसमें लिख गए अक्षरों को गोले के रूप में समझें। इसे थोड़ा और स्पष्ट कर देता हूँ।

कॉपी का एक पेज एक प्रतर हो गया, दूसरा पेज दूसरा प्रतर हो गया। इस प्रकार से प्रत्येक पेज एक-एक प्रतर रूप है। थोड़ी कठिनाई आनी संभव है। नींद मत लेना, जगे रहना। एक प्रतर में असंख्यात श्रेणियाँ होती हैं। जो मैं अंश बता रहा हूँ आलू के भाग का, उसमें असंख्यात प्रतर होते हैं। एक-एक प्रतर में असंख्यात श्रेणियाँ हैं। मतलब एक-एक पेज में जो लाइनें खींची हुई होती हैं, उन एक-एक लाइन को एक-एक श्रेणी समझ लें। ऐसी असंख्यात श्रेणियाँ एक-एक प्रतर में होती हैं। एक-एक श्रेणी में असंख्यात गोले होते हैं। एक लाइन में जैसे अक्षर लिखे होते हैं। कितने लिखे होते हैं? सामान्य पेज है तो एक लाइन में लगभग 12 से 15 शब्द हो जाएंगे, किंतु मैं अक्षर की बात कर रहा हूँ। लगभग 20 से 30 अक्षर होते होंगे। वैसे ही एक-एक श्रेणी में असंख्यात-असंख्यात गोले होते हैं और एक-एक गोले में असंख्यात शरीर होते हैं। उनमें से प्रत्येक शरीर में अनंता-अनंत जीव होते हैं। कैलकुलेशन कैसे करेंगे?

इसके साथ ही एक मजे की बात और ध्यान में लें। वह मजे की बात यह है कि उन सारे जीवों का जन्म-मरण साथ में होता है। सभी एक शरीर में होते हैं। एक शरीर में अनंता-अनंत जीव साथ रहते हैं। उनका शरीर अलग-अलग नहीं है। जन्म भी साथ में होता है और मरते भी साथ में हैं।

ऐसी अवस्था में हम भी बहुत बार गए हुए हैं। एक-दो बार नहीं,

अनंता-अनंत बार ऐसा जन्म हमने भी लिया है। उस समय हमारी ज्ञान ज्योति अत्यल्प थी। उस समय हमारे भीतर समझने की औकात भी नहीं थी। वर्तमान में हमें यहाँ तथारूप श्रमण माहण से सुनने का लाभ होता है। सुनकर, समझकर रास्ता हमें तय करना होगा। अनजान रास्ता कई बार अटपटा लगता है। जिस रास्ते पर कई बार चलते हैं, वह रास्ता आसान लगने लगता है। वह रास्ता जाना-पहचाना हो जाता है। बार-बार किसी रास्ते पर चलने से वो रास्ता सुगम व सरल लगता है। अच्छी तरह से पहचान में आ जाता है। आने-जाने में सुगम हो जाता है।

6 प्रकार के द्रव्य अनंत हैं। जीवास्तिकाय में प्रत्येक जीव अलग-अलग द्रव्य है। अनंतानंत जीव द्रव्य हैं। पुद्गल के भी अनंतानंत द्रव्य होते हैं। द्रव्यों की बात करेंगे तो वे अनंत हैं। और प्रकार की बात भी करेंगे तो प्रकार छह हैं। छह प्रकार में सबका समावेश है। कोई पूछ ले कि ब्यावर में जातियाँ कितनी हैं? जैसे ओस्तवाल, कांकरिया और बाफना आदि-आदि। किसको पता है कितनी जातियाँ हैं? सोचो! एकदम परफेक्ट बताओ। समझ लो हमने बताया कि सौ जातियाँ हैं। जातियों के रूप में ग्रुप अलग-अलग हो गए। हम कहेंगे कि ओस्तवाल खड़े हो जाएँ तो वे खड़े होंगे। हम कहें कि कांकरिया जाति के लोग खड़े हो जाएँ तो वे लोग खड़े होंगे। बाकी लोग खड़े नहीं होंगे क्योंकि अलग-अलग ग्रुप का नाम लिया जा रहा है। जाति उनकी पहचान बन गई। वैसे ही धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य के प्रकार बन गए।

जातियाँ सौ हो गईं, किंतु आदमी उसमें सौ ही हैं क्या? सौ से ज्यादा हैं। जातियों से ज्यादा है आदमी। जाति एक होती है। उस जाति में अनेक लोग होते हैं। उसी तरह द्रव्य के प्रकार छह हैं, किंतु द्रव्यों की संख्या अनंतानंत है। सारे द्रव्यों की संख्या जैसे केवलज्ञानी जानते हैं, वैसे ही श्रुतज्ञानी भी जानते हैं। केवलज्ञानी सर्वपर्यायों को जानते हैं किंतु श्रुतकेवली सर्वपर्यायों को नहीं जान पाते। वह पर्यायों को जानते हैं, किंतु सीमित को जानते हैं, समग्र को नहीं।

अगर मैं आपके वर्तमान को जान लूं, किंतु भूत-भविष्य को नहीं जानूं तो मेरा यह ज्ञान अधूरा है। केवलज्ञानी भगवान भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों को जानते हैं। सारी पर्यायों को अपने ज्ञान से जानते-देखते हैं।

बात चली थी, देव द्वारा निगोद में व्याख्यान सुनने की। देव ने

केवलज्ञानी भगवान से महाविदेह क्षेत्र में जैसी निगोद की व्याख्या सुनी, वैसी ही व्याख्या भरत क्षेत्र में श्यामाचार्य से सुन संतुष्ट हुआ। तथारूप श्रमण माहण की पर्युपासना से कैसा लाभ होता है, यह हम उक्त देव के वृत्तांत से जान सकते हैं। तथारूप श्रमण माहण से सुनना भी हर किसी के लिए संभव नहीं है। जीव जब चरमावृत्त में आ अर्ध पुद्गल परावर्तन काल के भीतर प्रविष्ट हो जाता है तो उसे तथारूप श्रमण माहण से सुनने का लाभ मिल पाता है। सुनने से मिले लाभ को कैसे व्याख्यायित करें? कैसे बताएं कि सुनने से लाभ होता है? इसको व्याख्यायित कैसे करें?

मेरे खयाल से कहेंगे तो समस्या हो जाएगी। हमको पुद्गल में जाना पड़ेगा। परावर्तन को समझना पड़ेगा। जब हम अंतिम चरमावृत्त में प्रवेश करते हैं तो आधा पुद्गल परावर्तन निकल जाता है और आधा शेष रहता है। जब हम इसके लिए श्रुत बन जाते हैं तो सुनने की विधि समान हो पाती है। उसके बाद हम सुन पाते हैं। उसके पहले सुनना भी हमारे लिए संभव नहीं है।

यूं समझें, जब हमारी आँख खुलती है तब प्रवचन सुनने का मौका मिलता है। बात समझ में आ रही है? सुनने में आसान है या कठिन है? अनंत काल तक हम निगोद में रहे। अनंत काल का व्याख्यान करना बहुत कठिन है। नेति-नेति कहते हुए विराम लिया जा सकता है। ऐसा सुना गया कि विष्णु सहस्रनाम को नेति-नेति लिख कर पूरा किया गया था। विष्णु जी के कितने नाम हो सकते हैं। उनके नामों की एक सारिणी बनाई जाए। नाम लिखते गए। लिखते-लिखते एक हजार नाम लिखे गए। एक हजार नाम जब लिखे गए, तब एक नाम और सामने आ गया। उस स्थिति में कहा गया कि लिखो नेति-नेति। अर्थात् हजार नाम ध्यान में आए उन्हें तो लिख दिए, पर नाम इतने ही नहीं हैं। ऐसा ही एक वाकया सुना गया कि जब ओसवाल समाज के जातियों की गणना होने लगी तो 1444 जातियाँ लिखी गईं। एक व्यक्ति आया, उसने कहा एक जाति डोसी लिखना रह गया तब लिखने वाले ने कहा- एक और डोसी और घणा होसी।

कोरोना काल में कहते थे कि कोरोना की वैक्सीन पहुँचाना बहुत कठिन है, रास्ते दुर्गम हैं लेकिन वोट माँगने का समय आता है तो रास्ते आसान हो जाते हैं। वोट माँगने के लिए पहुँच जाएँगे किंतु उसी स्थान पर जब काम की

बात आती है तो गाड़ी नहीं जा पाती है। ट्रेक्टर जा नहीं सकते या वहाँ काम आने वाली मशीनरी नहीं पहुँच सकती। यह हमारी सोच है। हमारी थिंकिंग है। जिस समय वोट लेना होता है उस समय कैसा भी रास्ता हो, किसी-न-किसी साधन से चले जाएंगे, पर वैक्सीन के लिए नहीं पहुँच पाते हैं। ऐसी हमारी दशा है। जरूरत होती है तो हम कहीं भी पहुँच जाते हैं, नहीं तो लास्ट मूवमेंट तक नहीं पहुँच पाते।

निगोद की व्याख्या करना असंभव नहीं किंतु कठिन अवश्य है। निगोद में कितने जीव हैं गणना करना बहुत मुश्किल है। हम वर्तमान गणित से उनकी गणना नहीं कर पाएँगे, क्योंकि काल अगम है। उसको गिना नहीं जा सकता।

उत्तराध्ययन सूत्र के दसवें अध्ययन में मनुष्य जीवन की दुर्लभता का वर्णन किया गया है। निगोद आदि की अनेक घाटियाँ पार होने पर बहुत लंबे समय के बाद मनुष्य जन्म मिल पाता है। पुण्य की प्रबलता से आठ बार निरंतर मनुष्य जन्म मिल सकता है। इससे अधिक बार लगातार मनुष्य जन्म नहीं मिलेगा। उसके बाद देव, नरक या तिर्यंच में जाना पड़ेगा। यदि उन आठ जन्मों में मोक्ष का पुरुषार्थ साध लिया तो बात अलग है। मनुष्य जन्म में लगातार आठ बार से अधिक बार नहीं आ सकते।

ये कान बहुत मुश्किल से मिलते हैं। ये दुर्लभ कान मिले हैं। बहुत कठिनाई से मिले हैं। ये निंदा सुनने के लिए नहीं मिले हैं। कानों को निंदा से मत भरो। इन कानों के माध्यम से मन में मैल मत भरो। यदि भरना है तो जिनवाणी का अमृत भरो। यदि कानों में कचरा भरा और कभी विस्फोट हो गया तो कचरे में आग लग जाएगी। कहते हैं कि पानी में भी आग लग गई। पानी में आग लग जाती है? कैसे लगती है पानी में आग? पानी में आग लगने की बात सुनकर अचंभा हो गया। पानी में भी आग लग जाती है। पानी में पेट्रोल डाल दिया जाता है तो उस पानी में भी आग लग जाती है। पानी में आग नहीं लगती, ऐसी बात नहीं है। पानी में आग लगना भी संभव है। पानी में करंट फैल जाता है, यह तो आप लोग भी जानते ही हैं।

ध्यान रहे, पानी में आग लगती नहीं है, लगाई जाती है। वह एक प्रकार से कृत्रिम आग है। वह हकीकत में लगती नहीं है, लगाई जाती है। वैसे

ही अमृत में आग लगना आश्चर्य है। अमृत में आग लगती नहीं। कानों में अमृत भरेंगे तो तिर जाएंगे। कान में कचरा भरेंगे तो कान फट जाएंगे। फिर वापस कान मिल पाएंगे? कानों के बिना सुन नहीं सकते। कान से सुनते हैं। अनंता अनंत काल बीतने के बाद पुण्य का योग होता है तो प्रवचन सुनने का मौका मिलता है।

इस मायने में हम कितने श्रेष्ठ हैं, कितने वीआईपी हैं कि हमें तीर्थंकर देव के प्रवचन सुनने को मिलते हैं, किंतु हम इसका महत्त्व कहाँ समझते हैं! हम महत्त्व दुकान का समझते हैं। अपने धंधे का महत्त्व समझते हैं। पगार का महत्त्व समझते हैं और पैसे का महत्त्व समझते हैं। बाहें चढ़ाने का महत्त्व समझते हैं। जिनवाणी के महत्त्व को नहीं समझते हैं।

बिना भाग्य के भली वस्तु का योग कैसे मिलेगा?

तीर्थंकर देव दीक्षा के पूर्व एक वर्ष तक एक प्रहर रोज दान देते हैं, किंतु वह दान अभवी के हाथ नहीं आता। इसी प्रकार जिनके पुण्य का योग नहीं होगा, उन्हें सुनने का मौका नहीं मिलेगा। हमारा भाग्य नहीं होगा तो कितनी भी वस्तुएँ हमारे सामने आएं हमको मौका नहीं मिलेगा। हम वह चीज हाथ में नहीं ले पाएंगे। पुण्य है तो मंजिल की डगर पाएंगे। पुण्य है तो सुनने का मौका मिला है और सुन रहे हैं।

**जय, जय, जय नमिराज ऋषि...**

चंदन घिसती रानियों के चूड़ियों की आवाज हो रही थी। नमिराज ऋषि को वो आवाज नहीं सुहा रही थी। रानियों ने एक-एक कंगन रखकर बाकी कंगन उतार दिये।

ज्यादा महत्त्वपूर्ण क्या है, पति का जीवन या चूड़ियाँ?

रानियों के लिए नमिराज ऋषि का जीवन महत्त्वपूर्ण था। उनके लिए अपने पति की साता महत्त्वपूर्ण थी। नमिराज को साता पहुँचाने के लिए रानियों ने चूड़ियों को त्याग दिया। सुहाग के रूप में केवल एक-एक चूड़ी रखी। मंगल स्वरूप एक-एक चूड़ी रखी। मंगल क्या होता है? मंगल चार प्रकार का होता है- नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। इसकी विशेष व्याख्या का अभी अवसर नहीं है।

सुनना भी बहुत मंगल है। पर क्या सुनना मंगल है? निंदा सुनना मंगल

रूप है या जिनवाणी सुनना मंगल है? जिनवाणी सुनना, गुणों को सुनना मंगल है। उन्हें सुनना सिद्धत्व दिलाने वाला वाला होता है। इन्हें सुनने से सिद्धत्व फलीभूत हो सकता है। बिना सुने हमें कभी भी सिद्धत्व की प्राप्ति नहीं होगी। सुनने का मतलब क्या हुआ? यथार्थ में सुनने का मतलब हुआ; दूध में दही का जावण डाल देना। सुनने का मतलब है कि हमारी आत्मा में कुछ चला गया। जो चला गया वह हमारी आत्मा में रहकर सारी अवस्थाओं को बदलेगा।

यदि हमारा दूध सही है, हमारी भावना ठीक है, मौसम अनुरूप है तो दूध से दही जमेगा। दूध यदि ज्यादा गरम है तो जावण देने से फट जाएगा। फट गया तो दही चकाचक नहीं जमेगा। यदि मौसम के अनुरूप जावण दिया जाएगा तो ही सही जमेगा। इसी उदाहरण से हम स्वयं को भावित करें। हमारा सुनना जावण का काम कर पाए तो ही वह सार्थक समझा जाएगा।

सुनना सामान्य बात नहीं है। दूध में जावण डालने के समान है। यदि जावण पड़ गया तो एक दिन दही जमेगा ही। यदि जावण देने वाला खानदानी है तो दही सही से जम जाता है। वैसे ही हमें विश्वास होगा तो हमारा सुनना भी सार्थक होगा। सुनना हमें चरम सीमा तक ले जाने वाला होगा।

हम ऐसा प्रयत्न करेंगे तो हम अपने लक्ष्य की ओर बढ़ेंगे व अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे। इतना कहते हुए विराम।

08 अगस्त, 2021

# 12

# भाव मंगल जानें, स्वीकारें

**संभव देव ते धुर सेवो सवे रे...**

श्रमण माहण की पर्युपासना करने से सुनने का फल मिलता है, लाभ मिलता है। कल हम जान गए कि सुनना कितना महत्त्वपूर्ण है। श्रवणेन्द्रिय की प्राप्ति भी कितनी दुर्लभ है। अनादिकाल से हमने स्पर्श इन्द्रिय का अनुभव किया, स्पर्श इन्द्रिय में जन्म-मरण करते रहे। हमें स्पर्श इन्द्रिय प्राप्त होती रही। बहुत सारा पुण्य इकट्ठा हुआ तो हम बेइन्द्रिय बने। बेइन्द्रिय बनने के लिए कितनी बार एकेंद्रिय में गए होंगे। जैसे-जैसे पुण्य प्रकट होता है, हमारी इंद्रियों का विकास होता है। पंचेद्रिय की प्राप्ति इंद्रियों की अपेक्षा संपूर्ण विकास है।

यह सोचने का विषय है कि विकास की घड़ियों को, विकास के प्रसंग का हम किस रूप में उपयोग कर रहे हैं। मनुष्य भव की प्राप्ति को दुर्लभ बताया गया है किंतु देव भव की प्राप्ति को दुर्लभ नहीं बताया गया। अन्य किसी भव की दुर्लभता का कथन नहीं किया गया, लेकिन मनुष्य भव की दुर्लभता की बात कही गई है। इससे स्पष्ट है कि एकमात्र मनुष्य जीवन में अन्य भवों से विशेष संभावना है। वह संभावना है मोक्ष की। मनुष्य ही मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। यह संभावना मनुष्य में है। एकमात्र आशा का दीप मानव है, जो मुक्ति को वरने में समर्थ है। हमारे ऊपर कितनी बड़ी आशा है।

माता-पिता अपनी संतान के प्रति कितनी आशा लगाए बैठे होते हैं कि बेटा बड़ा होगा तो नौकरी लगेगी। हमें खुश रखेगा। धन कमाएगा। हमारा बुढ़ापा सुधर जाएगा। माता-पिता बेटे से बहुत सारी आशा कर लेते हैं। बहुत सारी आशा बाँध लेते हैं। वैसे ही हमारे लिए बहुत सारी आशा है कि जिसे मनुष्य भव मिल गया वह मुक्ति को प्राप्त करने में समर्थ हो पाएगा। इसलिए

अन्य किसी भव के लिए वह बात नहीं कही गई जो मनुष्य भव के लिए कही गई है। चार परम दुर्लभ अंग बताए गए हैं, जिसमें मनुष्य भव पहला अंग है। चार दुर्लभ अंग में परम अवस्था मोक्ष की है। मोक्ष के चार परम दुर्लभ अंग हैं; मनुष्यत्व, श्रुति, श्रद्धा और संयम में पराक्रम। मोक्ष जाने वाले को इन चार अंगों से गुजरना पड़ेगा। मनुष्य जन्म को प्राप्त करना पड़ेगा और भगवान की वाणी को सुनना होगा। उस पर श्रद्धान और पराक्रम करना होगा। तभी वह मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। इनके बिना मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है। भगवान ने कहा कि सुनने से ही कल्याण मार्ग का ज्ञान होता है और सुनने से ही पाप मार्ग का ज्ञान होता है। सुनना केवल कानों से नहीं होता।

यह ध्यान रखना! सुनने की क्रिया तब पूरी होती है जब हम सुने हुए को स्वीकार करें। यदि स्वीकार नहीं कर रहे हैं या स्वीकार नहीं कर रहे होते हैं तो सुनने की क्रिया पूरी नहीं होगी। स्वीकार करने का अर्थ है–

**''राग-द्वेष पतला करो...''**

इस तथ्य को स्वीकार करना होगा। इसे स्वीकार करेंगे तो सुनने की क्रिया पूरी हो पाएगी। यदि इस पर विश्वास नहीं किया गया तो सुनना नहीं हुआ। उसको कहते हैं कि इधर से सुना और उधर से निकाल दिया। भगवान महावीर ने गोशालक को विधिवत् दीक्षा नहीं दी थी फिर भी भगवान महावीर ने गोशालक को अपने शिष्य रूप में स्वीकार किया था। जब भगवान महावीर ध्यान में थे तब गोशालक ने निवेदन किया कि मैं आपका शिष्य बन रहा हूँ, मैं आपके शिष्यत्व को स्वीकार कर रहा हूँ। भगवान महावीर कहते हैं कि मैंने उसकी बात को सुना। मैंने वापस निषेध नहीं किया। इसलिए उसको शिष्य रूप में मान्य किया कि गोशालक मेरा शिष्य है।

सुनना सामान्य बात नहीं है। सुने हुए को हृदयंगम करना है। उसको गहरे में उतारना है। उसको स्वीकार करना है। स्वीकार करने से वह ज्ञान आपका बनेगा। यदि आप उसको स्वीकार नहीं करेंगे तो वह ज्ञान आपका नहीं बनेगा, पराया रह जाएगा।

एक सेठ अपने लड़के का संबंध करने कन्या देखने के लिए जाता है। वह कई कन्याओं को देखता है। भिन्न-भिन्न कन्याओं को देखता है। पाँच, सात, आठ, नौ, दस, पता नहीं कितनी कन्याओं को देखता है। कई कन्याओं

को देखने के बाद सेठ को एक कन्या पसंद आई। पुत्र से उसका विवाह कराया। इस प्रकार से सेठ उस कन्या को कुलवधू बनाकर अपने घर लाया। जैसे सेठ ने बेटे के लिए कई कन्याएं देखीं पर अपने घर की बहू एक को ही चुना, एक ही उसके घर की सदस्या बनी, वैसे ही जो सुनेंगे, स्वीकार करेंगे वह आपका होगा। जो स्वीकार नहीं करेंगे वह आपका नहीं होगा। भले आपने कितना भी सुना हो, जब तक उसे स्वीकार नहीं किया, तब तक वह आपका नहीं बन पाएगा।

छोटी साधु वंदना में कहा गया है–

**एक वचन श्री सतगुरु केरो, जो पैठे दिल मांय रे प्राणी।**

एक वचन वस्तुत: सुनना हो जाए। हम सुखविपाक सूत्र को देखें, उसमें गौतम स्वामी, भगवान महावीर से पूछ रहे हैं कि भगवान यह सुबाहु कुमार बहुत से लोगों को प्रिय है, मनोज्ञ है। उसको देखने के बाद लोगों की आँखें उससे हटती नहीं हैं। नजरें उस पर ही लगी रहती हैं। लोग उसको देखते रहना चाहते हैं। और तो और वह साधुओं के लिए भी दर्शनीय बना हुआ है। इष्ट–कमनीय बना हुआ है। साधु भी उसको देखते रहते हैं। साधुओं के मन में होता है कि वह हमसे बैठकर बात करे। ऐसी उसने क्या पुण्यवाणी की, ऐसा उसने क्या व्यवहार किया?

**किं वा दच्चा? किं वा भोच्चा? किं वा समायरित्ता? कस्स वा तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा णिसम्म सुबाहुकुमारेणं इमेयारुवा, उराला माणुस्सरिद्धी, लद्धा, पत्ता अभिसमण्णा गया?**

अर्थात् उसने क्या दिया, क्या खाया, क्या आचरण किया और किस श्रमण या माहण से एक भी आर्य धार्मिक वचन को सुना जिससे उसने इस प्रकार की औदारिकी मनुष्य रिद्धि लब्ध की प्राप्त की आदि। यह बात समझ में आ गई होगी कि किसी मुनि के धार्मिक वचन को सुनना, स्वीकार करना महान पुण्य का उपार्जन करने वाला बनता है। सुने हुए वचन को सुना–अनसुना करने पर लाभ नहीं मिलेगा। लाभ मिलेगा उस वचन को स्वीकार करने पर।

हम आगम प्रमाण से जान सकते हैं कि सुबाहु कुमार ने किससे धार्मिक वचन सुना और वह हृदय में बैठ गया जिससे उसे मनुष्य भव संबंधी

महान रिद्धि प्राप्त हुई। भगवान महावीर ने नयसार के भव में मुनि से मार्ग की जानकारी की और वे मार्गी बन गए। मार्गी बन गए का अर्थ है उनको मार्ग मिल गया। उन्होंने मोक्ष मार्ग पर पाँव धर दिया। यह बात अलग है कि बीच में भी उनको अनेक भव करने पड़े, किंतु उन्होंने मार्ग का अनुभव कर लिया इसलिए मार्गी बन गए।

जब तक किसी मुनि से कोई ऐसा वाक्य, ऐसा सूत्र नहीं सुनेंगे तब तक हम मार्गी नहीं बनेंगे। तब तक हम मोक्ष मार्ग पर चलने वाले नहीं बनेंगे। उसके किनारे-किनारे घूमने वाले बन सकते हैं, किंतु मोक्ष के मार्ग पर आरूढ़ होने वाले नहीं बनेंगे। इसलिए सुनने की क्रिया को बहुत महत्त्व दिया गया है।

**परिचय पातक घातक साधुशुं रे, अकुशल अपचय चेत्...**

महत्त्वपूर्ण बात कही गई है। साधु से किया गया परिचय हमारे पातक का, पाप कर्मों का घात करने वाला होता है। वे पाप कर्म कब बँधे? किस प्रकार से बँधे? इसका समाधान बताया गया कि अकुशल चित्त से उन पाप कर्मों का उपार्जन किया था, बाँधा था। सीधी-सी बात है कि अकुशल चित्त के द्वारा जिन पाप कर्मों का मैंने बंध किया उन पाप कर्मों की घात साधु की संगत से होती है। साधुओं की संगत पुरुषों को क्या नहीं उपलब्ध करा देती! किंतु संत की संगत करने का अर्थ क्या है इसे हमें समझना चाहिए। खाली संत का नाम पूछने से काम नहीं चलेगा। हमें उनके पास बैठना होगा। साधु का पुट हमारे भीतर, हमारे मन में आना चाहिए। साधु का मूल भाव है समता। साधुता की मूल भित्ति है- उपशम भाव। हम उसको ग्रहण करेंगे, उपशम भाव में रमण करना जानेंगे। साधुओं की संगत का लाभ तब मिल पाएगा, जब हम उनकी संगति से समता में रम पाएं।

हमें हमेशा परमार्थ के ज्ञाता की संगति करनी चाहिए। क्योंकि जैसी संगति करते हैं वैसी रंगत हो जाती है। हम जैसे पुरुषों के साथ रहते है, उन जैसे संस्कार हमारे भीतर जाते हैं। सही संस्कार हमारे भीतर आएंगे तो ही हमारे जीवन में बदलाव आ पाएगा। अन्यथा पास में रहकर हम भी कुछ लेने वाले नहीं बन पाएंगे। मगशेल (पत्थर) पर कितना भी पानी पड़े, मूसलधार वर्षा हो जाए, किंतु एक बूँद भी पानी उसमें नहीं जाता। पत्थर के भीतर पानी की एक बूँद भी प्रवेश नहीं करती। इसी प्रकार हमारे भीतर समभाव नहीं आया तो

साधुओं की संगत सार्थक नहीं हो पाएगी।

मैंने कल कहा था कि सुनना अर्थात् जीवन में जावण देना। जब तक दूध में जावण नहीं मिलेगा, तब तक दही नहीं बनेगा।

दूध और दही के बरतन को एक-दूसरे से सटाकर या जोड़कर रख दें या फिर एक-दूसरे को ऊपर-नीचे भी रख दें तो दूध का दही नहीं जमेगा। दूध का दही तब जमेगा जब उसमें जावण लगाया जाएगा। दूध में जावण का अर्थ आप क्या समझते हो? दूध में दही को ऐसे ही डाल दिया तो जावण नहीं लगता। दूध को गर्म करके उसमें यथोचित रूप से यथायोग्य जावण दिया जाएगा तो जमेगा। हम अपने आपको देखें कि हममें जावण लगा या नहीं! हम कितने जम पाए हैं! सुनना हमारे भीतर कितना गहराई में उतरा है, हमने सुनना कितना सार्थक किया है? हमारे भीतर समभाव की वृद्धि हुई या नहीं! हम कितने पानी में हैं! हमारे भीतर छोटी-छोटी बातों में उछाले तो नहीं आ जाते हैं!

जब तक हमारे भीतर सहनशीलता नहीं बढ़ेगी, तब तक सुनना सार्थक नहीं होगा। जब तक सहनशक्ति नहीं बढ़ेगी, सहिष्णुता नहीं आएगी, जब तक हमारे भीतर धैर्य का प्रवेश नहीं होगा, तब तक सुनना सार्थक नहीं होगा। जब सुनना सार्थक हो जाएगा तो हमारे भीतर उछालें होनी बंद हो जाएंगी।

**साधु भाव समुच्चय कहा, कोई मत करजो ताण...**

पहले व्याख्यान के पश्चात् बोलते थे कि साधु भाव समुच्चय रूप से कहते हैं अत: कोई किसी भी बात को लेकर खींचे नहीं। कोई यह नहीं समझे कि हमारे ऊपर ही कही जा रही है। (मुझे उसने ऐसा कह दिया। उसने मुझ पर गुस्सा कर दिया मैं तो व्याख्यान में नहीं जाऊँगा) व्याख्यान में समुच्चय रूप से कथन होता है, किंतु लगता उसी को है जिसको घाव होता है। बारिश होने पर जो छतरी ओढ़ लेता है या बरसाती पहन लेता है, उसको पानी नहीं लगता, किंतु जिसका शरीर खुला है, उसको पानी लगेगा। वैसे ही बात उसी को कटु लगती है, जिसमें वैसा कुछ रहा हुआ होता है। वही बात यदि सही रूप से लगे तो वो बात लगनी हमारे लिए बहुत पुण्य का कारण बन जाएगी। वह हमारे जीवन में बदलाव लाने वाली बनेगी। हमने सही तरीके से नहीं लिया तो पेट्रोल

वाला काम हो जाएगा। हमारे भीतर दाह पैदा करने वाला बन जाएगा। मैंने दो-तीन दिन पहले तेल, पानी और पेट्रोल के बारे में बताया था।

**परिचय पातक घातक साधुशुं रे...**

साधु से परिचय करना यानी नाम या जात पूछना नहीं है, अपितु उनके ज्ञानमय जीवन से परिचय करना है। क्या आपको पता है कि ज्ञानमय जीवन कैसा होता है? मुनि के लिए एक शब्द आता है श्रमण। वैसे मुनि के लिए बहुत सारे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। वे पर्यायवाची हैं। यथा- साधु, संत, यति। श्रमण भी कहा जाता है। भिक्षु भी कहा जाता है। श्रमण का अर्थ है श्रम करने वाला। किसी ने पूछ लिया कि श्रम करने वाला साधु माना जाता है तो क्या इसका मतलब यह समझें कि जो किसी खेत में काम करने वाला है अथवा मजदूरी करने वाला या हल, कुदाली वगैरह चलाने वाला, वह साधु है?

नहीं, वह साधु नहीं है। फिर किसको कहेंगे साधु? जो समता की प्राप्ति के लिए श्रम करता है, वह साधु होता है। इसी प्रकार श्रमणोपासक का अर्थ होता है कि जो श्रमणों की उपासना करे। उपासना करना मतलब साधुता के निकट होना। जो साधुता के निकट नहीं आया वह श्रमणोपासक नहीं कहलाएगा। साधु समता के लिए श्रम करता है, परिश्रम करता है, मेहनत करता है। कोई बात हो जाये तो वह उसको बाँधकर नहीं रखता। उसकी गाँठ नहीं बाँधता। गाँठ बाँधने वाला साधु नहीं होता। साधु को निर्ग्रंथ कहा गया है। निर्ग्रंथ का तात्पर्य है ग्रंथरहित। श्रमणोपासक यानी श्रमण के समीप रहने वाला। उसे ग्रंथि वाला होना चाहिए या ग्रंथिरहित? यदि वह पूर्ण रूप से ग्रंथिरहित नहीं बन सके, तब भी उसकी गाँठें निबिड़ नहीं होनी चाहिए। उसकी ग्रंथि शिथिल होनी चाहिए।

हम विचार करें कि हम अपने भीतर कितनी गाँठें बाँध लेते हैं। कई बार अनुभव होता है कि राजनीतिक क्षेत्र में रहने वाले लोग प्राय: गाँठ नहीं बाँधते। दूसरी पार्टी वाले कुछ भी कह देते हैं, किंतु वे गाँठ नहीं बाँधते। वकील कोर्ट में धाम-धूम मचा देते हैं, किंतु गाँठ नहीं बाँधते हैं। हम धर्मसभा में बैठने वाले हैं किंतु छोटी-छोटी बातों को लेकर गाँठ बाँध लेते हैं। बिना मतलब की बात की गाँठ बाँध लेते हैं। इससे नुकसान केवल स्वयं को नहीं होता, समाज और परिवार को भी हानि उठानी पड़ती है, क्योंकि वह परिवार और समाज का एक अंग है।

हमारे शरीर के किसी अंग में फोड़ा होगा तो वह पूरे शरीर को तनाव देने वाला बनेगा। पीड़ा देने वाला बनेगा। जैसे एक जगह फोड़ा हुआ, एक जगह फुंसी हुई, वह पीड़ा देने वाली होती है, वैसे ही परिवार के एक सदस्य से पूरा परिवार प्रभावित होता है। पूरा परिवार संक्लेश में जाता है। आने वाला कल संक्लेश में जाता है। परिवार में संक्लेश का प्रभाव छा जाता है। उसकी छाया से परिवार तथा वंश बचा नहीं रह पाता। वह समाज का अंग होता है इसलिए समाज में भी उसका दुष्प्रभाव हुए बिना नहीं रहता। वह विचार कर ले कि मैं घर में बैठ जाऊँ, तो घर बैठना समाधान नहीं है। व्यक्ति को सोचना चाहिए कि मैं समाज का अंग हूँ। मेरे कारण से समाज में किसी प्रकार की कलुषिता नहीं आनी चाहिए। मेरे कारण से मेरे समाज में, परिवार में संक्लेश का वातावरण नहीं बनना चाहिए। एक व्यक्ति कितनों के कर्म बंधनों का, अंतराय का कारण बन जाता है, यह विचार करने की आवश्यकता है। यदि हम विचार नहीं कर पाते हैं तो अभी हमारा सुनना भी नहीं हो पाया है। अभी हमारे भीतर दही बनने की क्षमता प्रकट नहीं हो पाई है। दूध का दूध ही रह गया। दही नहीं बन पाया। दही और दूध का अंतर आप जानते हो?

एक बात आपने कभी देखी होगी कि किसी के यहाँ मांगलिक कार्यक्रम में दही-गुड़ दिया जाता है। दूध और गुड़ नहीं दिया जाता है। दही को मंगल क्यों माना गया? दूध को मंगल क्यों नहीं माना गया? दही समता वाला बन गया। यदि जमे हुए दही में किसी ने एक कंचा या कंकड़ फेंका तो वह उसमें समा जाएगा। दही उछलेगा नहीं। वही कंचा या कंकड़ दूध में डाले तो दूध उछलेगा। इसलिए उसे मंगल नहीं माना जाता। वैसे ही हमारी मनोवृत्ति भी उछलने की होगी तो थोड़ा कुछ कहने से हम उछलने लगेंगे। ऐसी क्षुद्र वृत्ति श्रमणोपासक की नहीं होनी चाहिए। इसके विपरीत यदि हम दही जैसे बन जाएंगे तो छोटी बातों को लेकर नहीं उछलेंगे। हमारा पैठा गहरा हो जाएगा, गंभीर हो जाएगा। हम उन बातों को पचाने की, हजम करने की कोशिश करेंगे।

मगध सम्राट श्रेणिक के विषय में देवलोक में चर्चा हुई कि उसे धर्म से विचलित नहीं किया जा सकता। एक देव को यह बात नहीं भायी। वह साधु की पोशाक पहन कंधे पर जाल (मछली पकड़ने का साधन) रखकर सड़क पर चल रहा था। दूसरी तरफ से मगध सम्राट श्रेणिक आ रहे थे। उन्होंने साधु

वेषधारी देव को देखते ही कहा, मुनिराज! ये क्या कर रहे हैं आप? यह मछली पकड़ने वाला जाल आपको शोभा नहीं देता।

मुनिराज ने कहा- राजन ज्यादा गहराई में मत उतरो। जहाँ इतने साधु रहेंगे वहाँ गोचरी-पानी कहाँ से मिलेगी। हम तो स्पष्ट करने वाले व स्पष्ट बोलने वाले हैं।

उसकी बातें सुनकर मगध सम्राट को जरा-सा भी संशय नहीं हुआ कि यह साधु कह रहा है तो पता नहीं कितने साधु भीतर-ही-भीतर माँस-मछली का सेवन करते होंगे। वह साधु वेषधारी देव क्या बोला? वह कहता है, मैं बहुत स्पष्ट कहने वाला हूँ जो आपके सामने खुलकर आ गया। ऐसे कम लोग होते हैं जो खुलकर करते हैं। बाकी लोग गुपचुप करते हैं। ऐसा सुनकर भी मगध सम्राट के मन में कोई संशय पैदा नहीं हुआ, बल्कि उन्होंने सोचा कि यह कोई धूर्त है। भगवान महावीर के साधु ऐसे नहीं हो सकते।

उसी देव ने एक गर्भवती साध्वी का रूप बनाया। उसे देख सम्राट श्रेणिक ने कहा, साध्वी जी ऐसी स्थिति कैसे बन गई। उस साध्वी रूप देव ने कहा- राजन् आपको नहीं मालूम, आप नहीं जानते हैं। आप साधु-साध्वी के गहराई में नहीं उतरे। उतरेंगे तो मालूम पड़ेगा कि कौन कितने पानी में हैं? सम्राट ने कहा, भगवान महावीर के साधु-साध्वी ऐसा नहीं कर सकते हैं। उन्हें भगवान महावीर के साधु-साध्वियों पर कोई संशय नहीं हुआ। कोई भ्रम पैदा नहीं हुआ क्योंकि एक तो भगवान महावीर के साधु-साध्वियों की साख थी। उनकी छाप थी। दूसरा सम्राट प्रगाढ़ श्रद्धावान था। इसलिए उसको लगा कि ये किसी धूर्त का काम है जो साधु-साध्वी को बदनाम करना चाहता है।

हमारे सामने ऐसा प्रसंग आ जाए तो हमारे मन की क्या दशा होगी, यह तो हमारा मन ही जान सकता है, लेकिन लगता है ऐसी स्थिति में बहुत जल्दी संशय पैदा हो जाएगा कि यह क्या है, ऐसा कैसे है? ऐसा इसलिए हो जाता है क्योंकि हमारे भीतर अभी दही जम नहीं पाया। अभी श्रद्धा गहरी हो नहीं पाई। यदि गहरी हो जाएगी तो ऐसे विचार पैदा नहीं होंगे। अब थोड़ी नमिराज ऋषि की भी हम चर्चा कर लें।

**जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर जय जय जयकार...**

चार प्रकार के मंगल बताए गए हैं; नाम मंगल, स्थापना मंगल, द्रव्य

मंगल और भाव मंगल। किसी का नाम मंगल रख दिया वह नाम मंगल है। जैसे मंगलचंद। किसी ने मंगल की आकृति बना दी, किसी ने मूर्ति बना दी तो वह स्थापना मंगल है। द्रव्य मंगल तीन प्रकार का बताया गया है। 'ज्ञ' शरीर द्रव्य मंगल, भव्य शरीर द्रव्य मंगल तथा तद्व्यतिरेक। ये बातें कोई नई नहीं हैं। पुरानी हैं। हजारों साल पुरानी है। प्राय: टीकाओं में ये चर्चा मिलेगी। टीकाकार या ग्रंथ रचनाकार सबसे पहले मंगल का कथन करते हैं। मंगल का कथन क्यों किया जाता है? आप देखते हैं कि संत भी मंगलाचरण से व्याख्यान चालू करते हैं। भगवान की वाणी मंगल रूप है, फिर भी मंगल क्यों किया जाता है? इसका उत्तर इस प्रकार बताया गया- ताकि शिष्य अपनी बुद्धि में यह व्याख्यान मंगल रूप में बरते। टीकाकार टीका करने से पहले मंगल करते हैं। जहाँ मंगलाचरण नहीं मिलता है, वहाँ पर वे भाव मंगल कर लेते हैं जिससे द्रव्य मंगल की आवश्यकता नहीं पड़ती। जहाँ भाव मंगल हो गया, वहाँ द्रव्य मंगल की आवश्यकता नहीं रहती। भाव मंगल अर्थात् किसी प्रकार की तपस्या की गई है। तप अपने आप में भाव मंगल है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप को भाव मंगल में लिया गया है। भाव मंगल जिन्होंने कर लिया वे द्रव्य मंगल नहीं भी करें तो चलेगा। मंगल शब्द लिखना भाव मंगल नहीं है। वह स्थापना मंगल या द्रव्य मंगल में रह सकता है। मंगल के विषय में थोड़ा अच्छे से विचार करना है, अच्छी तरह से जान लेना है। मैं प्रयत्न करूँगा कि विषय आपको आसानी से समझ में आ जाए। साधु को मंगल मानते हैं कि अमंगल? प्रमाण क्या है?

**''चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं**
**साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं''**

इसमें अरिहंत, सिद्ध के साथ साधु को भी मंगल बताया गया है। जो साधु जिस समय ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना कर रहा होता है, उस समय वह भाव मंगल रूप साधु होता है। वही साधु काल धर्म को प्राप्त कर जाय तो वह 'ज्ञ' शरीर द्रव्य मंगल है क्योंकि वह पहले मंगल को जानने वाला था। ज्ञान को जाना था, दर्शन को जाना था, मंगल को जाना था वो 'ज्ञ' शरीर मंगल माना जाता है। भव्य शरीर द्रव्य मंगल यानी जिसने अभी साधु जीवन स्वीकार नहीं किया है, किंतु आने वाले समय में साधु जीवन स्वीकार करने वाला है। जैसे आप मुमुक्षुओं को देख रहे हो। भव्य शरीर द्रव्य मंगल अर्थात् आने वाले

समय में मंगल अवस्था को स्वीकार करने वाले हैं। तद्व्यरिक्त उसे कहते हैं जो न तो जानता है न जाना है और न जानेगा। जैसे दही, कुमकुम, मोली आदि। कुमकुम का तिलक लगाते हैं, मोली बाँधते हैं। ये तद्व्यरिक्त हैं, क्योंकि दही आदि ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र को न जाना है न जानते हैं और न जानेंगे ही, पर लोक व्यवहार में मंगल रूप से मान्य है। ये तीनों द्रव्य मंगल रूप हैं। भाव मंगल ही प्रधान है। जहाँ भाव मंगल नहीं होता है, वहाँ लोग द्रव्य मंगल से काम चला लेते हैं। जिस साधु में ज्ञान, दर्शन, चारित्र का उपयोग नहीं है, उसे भी द्रव्य मंगल कहा गया है अर्थात् जो ज्ञान आदि से शून्य है, मात्र साधु जीवन की पोशाक में हैं। वह पोशाक द्रव्य मंगल रूप है क्योंकि वह साधु की है। जिसका मन साधुता में लगा हुआ होता है वो साधु भाव मंगल रूप होता है। यह मंगल की व्याख्या है।

महारानियों ने मंगल भाव से एक-एक कंगन रखा। यह द्रव्य मंगल है। पुराने समय में पति की मृत्यु हो जाने पर पत्नी के हाथों की सारी चूड़ियाँ उतरवा देते व माथे का तिलक भी हटा देते। उसे पतिव्रता कहा जाता था।

भोली जनता भ्रम में जीती है। क्षीर समुद्र का पानी छोड़कर खारा जल पीती है। करे भी क्या? उसे उसी में संतोष करना पड़ता है।

भाव मंगल शाश्वत सुख देने वाला होता है, किंतु द्रव्य मंगल शाश्वत सुख देने वाले नहीं होते। कभी सुख की बात हो जाना, साता की बात हो जाना अलग बात है, किंतु सदा के लिए वो मंगल बने रहने वाले नहीं होते। शादी करने वालों ने मंगल मनाया होगा। कुंभ कलश लगाया होगा। मेहंदी रचाई होगी। कांकण डोरे बाँधे होंगे। तोरण भी बाँधा होगा। ये सारे मंगल किए जाने पर भी शादीशुदा एक साथ मरते हैं या अलग-अलग मरते हैं? अलग-अलग मरते हैं तो मंगल किस काम का!

आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. जिस समय श्रमण संघ के उपाचार्य थे, उस समय जावरा चातुर्मास होने वाला था। लोगों ने बताया कि अमुक तिथि को प्रवेश कराना है। पूज्य नानालाल जी म.सा. ने पूछ लिया कि उस समय प्रवेश क्यों करना? संघ के लोगों ने कहा कि हमारे राज ज्योतिषी ने मुहूर्त बताया है। राज ज्योतिषी की बात चली तो पता लगा कि उनकी तीन जवान पुत्रियाँ बाल विधवा हैं। मुहूर्त से शादी होने पर तीनों बाल विधवा क्यों बन

गईं ? इसलिए द्रव्य मंगल शाश्वत सुख देने वाला नहीं हो सकता।

महारानियाँ एक-एक कंगन रखकर चंदन घिस रही हैं, लेप लगा रही हैं। नमिराज ऋषि को भी साता पहुँचा रही हैं। आगे क्या प्रसंग प्रस्तुत होगा यह भावी के गर्भ में है। हम भाव मंगल को अपने चिंतन में लें, उस पर मनन करें व उसे स्वीकारें। ऐसा होने पर धन्य हो पाएँगे। इतना कहते हुए विराम।

09 अगस्त, 2021

# 13

# समाधि : परमात्मा का पथ

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा...**

यह बात कही गई है कि सुमतिनाथ भगवान के चरणों में स्वयं को समर्पित कर दो।

स्वयं को अर्पित किसलिए करना?

क्योंकि उनके चरण कमल दर्पण की भाँति विकार रहित हैं। इतना ही नहीं, मति को तृप्ति मिलती है। यह केवल मेरी बात नहीं है। बहुत-से लोगों के अनुभव की बात है। यह बहुमत की बात है। यों कहूँ कि सर्वानुमति से है। सर्व अनुमत यानी जिन्होंने भी स्वयं को पूर्णत: अर्पित किया उन्होंने वो तृप्ति प्राप्त की है। एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं होगा जिसको तृप्ति नहीं मिली हो। जिसने जितना बचाया यानी पूर्णत: अर्पण नहीं किया वह बचा हुआ रह गया। वह उस तृप्ति को प्राप्त नहीं कर पाया।

एक जेल में संयोग से एक बार राष्ट्रपति ने दौरा किया। जेल के कैदियों से उन्होंने पूछा कि तुमको क्या तकलीफ है, क्या कमी है, किस चीज की जरूरत है? उन्होंने कहा कि किसी भी प्रकार की यदि आप लोगों को कोई शिकायत है तो मुझे बताओ।

उनके पूछने पर एक कैदी ने कहा कि बाकी सब तो ठीक है, पर यहाँ मच्छर ज्यादा काट रहे हैं। एक ने कहा कि भोजन अच्छा नहीं मिलता। भोजन में किरकिरी रहती है। किसी ने कहा कि सब्जी में नमक, मिर्ची, मसाला पूरा नहीं है। हमको खाने में कुछ स्वाद नहीं आता। किसी ने कहा, अमुक सुविधा नहीं है।

राष्ट्रपति ने कैदियों की बातों को सुना और सुनकर उनकी फरियाद को

पूरा करने की बात कही। उन्होंने कहा कि इन कैदियों की जो भी शिकायत है वह दूर होनी चाहिए। उन्हें किसी भी प्रकार की सुविधा से वंचित ना रखा जाए। उन्हें सुरक्षा दी जाए। राष्ट्रपति ने कहा कि इनकी शिकायतें दूर हो जानी चाहिए। एक कैदी ने एक कागज दिखाते हुए कहा कि सर ये कागज मेरी रिहाई के लिए हैं। यदि इस कागज पर आप हस्ताक्षर कर दें तो मैं यहाँ से रिहा हो जाऊँगा। उस कैदी की चाहत के अनुसार राष्ट्रपति ने हस्ताक्षर कर दिया। उस कैदी को मुक्ति मिल गई। अन्य कैदियों में ऐसी समग्रता नहीं थी। वे केवल मच्छर और मच्छरदानी में रह गए। वे लोग सब्जी, नमक, मिर्ची में ही रह गए। वे अपने आपको उससे ज्यादा ऊपर नहीं उठा पाए, जिससे वे बाहर आ सकें। यदि वे भी उस कैदी की तरह समझदार होते तो बाहर आ सकते थे, मुक्त हो सकते थे, किंतु उनके भाग्य में योग नहीं था। जिसकी जैसी चाहत होगी उसको वैसा ही मिलेगा। चाह केवल शब्दों से होगी तो काम नहीं चलेगा।

शब्दों के तो हम शूरवीर हैं। शब्द कुछ होते हैं किंतु भीतर कुछ और चाहत होती है। दोनों में समानता नहीं होती। जैसी भीतर की चाहत होती है, वैसी जुबान नहीं होती। उसमें घुमाव-फिराव रखते हैं। अपनी बात को घुमा-फिराकर कहते हैं। सीधी-सीधी बात नहीं करते। ऐसी कोई मशीन हो जिसको लगाने से वह बता सके कि हम हकीकत में जिनवाणी को कितना महत्त्व देते हैं और धन को कितना महत्त्व देते हैं और उसको हमारे भीतर लगाया जाए तो मालूम पड़ जाए कि हम कितने पानी में हैं या कितने कीचड़ में हैं। जैसे मानो कि कोई ऐसी मशीन हो जिससे मालूम पड़े कि कितना बुखार है और कैसा है? जो बुखार हुआ है वो सामान्य बुखार या कोरोना का? टी.बी. या टाइफाइड से भी बुखार का संबंध होता है। बुखार से निजात पाने के लिए खूब दवाइयाँ तो ले लीं। महँगे से महँगे डॉक्टर को दिखा दिया। महँगी से महँगी दवाइयाँ खा लीं, किंतु दवाइयाँ काम नहीं कर रही हैं।

अभी कुछ दिन पहले मैंने सुना कि एक मरीज को 16 करोड़ का इंजेक्शन लगाया फिर भी वह मरीज बच नहीं पाया। 16 करोड़ का एक इंजेक्शन उसको जिंदा नहीं कर पाया। लोग कहते हैं कि जान बची तो लाखों पाए, मैं तो कहता हूँ लाख नहीं आप करोड़ों पाएं। लाखों का खेल नहीं है, यहाँ 16 करोड़ का इंजेक्शन लगा। अब आप विचार करें कि जान बचाने के

लिए आप क्या नहीं कर रहे हैं!

भगवान कहते हैं कि जान बचाने की चिंता मत करो। मरना तो एक दिन है ही। फिर क्या इस जान का बचाव करना! बचाव इसलिए करना पड़ता है, क्योंकि हम जीना चाहते हैं पर तरीका हमें मालूम ही नहीं है कि कैसे जीना है। हम कैसे जी रहे हैं? हम जीवन जी रहे हैं या जीवन को ढो रहे हैं? हमको विचार करना पड़ेगा कि हम सचमुच में जी रहे हैं या भार ही ढो रहे हैं। एक तो माथे पर भार ढोना पड़ता है और एक आराम से चलना होता है। ग्लूकोज की बोतल हाथ में लेकर चल रहे हैं। जब तक वह बोतल हाथ में है उसका भार लगेगा। जैसे ही ग्लूकोज नसों में जाएगा, उसका भार नहीं लगेगा। जैसे एक लीटर दूध को हम जब हाथ में रखेंगे तो उसका भार लगेगा, किंतु जैसे ही उसको हम पी लेंगे, उसका भार नहीं लगेगा। शरीर में जाने के बाद उसका भार नहीं लगेगा। वह जीवन का अंग बन गया।

यदि हमें संतुष्टि नहीं है तो जीवन जीने का क्या मतलब! यदि रो-रोकर जीवन जी रहे हैं तो ऐसा जीना किसलिए! मौत नहीं आ रही इसलिए जी रहे हो? कई लोग इंतजार करते हैं कि कब मौत आ जाए। ऐसे लोग केवल मुँह से ही कहते हैं कि मौत कब आ जाए पर मन से नहीं कहते कि मौत आ जाए। यदि आप मन से कह रहे हो तो कर लो संथारा। पर नहीं, वे केवल मुँह से ही चाहते हैं कि मौत आ जाए। मुँह से चाहने से मौत नहीं आने वाली है। किसी दिन मौत आ भी गई तो आप कहोगे कि अभी थोड़े दिन और रुको। अभी क्या जल्दी है। हम मौत को अन्तर से नहीं केवल शब्दों से चाह रहे हैं। सबसे बड़ी चीज है शांति और समाधि। यदि जीवन में वह नहीं है तो जीवन जीना बेकार है। बिना शांति और समाधि के जीवन जीया नहीं जा रहा है, उसको ढोया जा रहा है। जबरदस्ती जीवन को धक्का लगाया जा रहा है। थोड़ा और, थोड़ा और...

आप लोग अपने सीने पर हाथ रखो और बताओ कि आप में से कितने लोग ऐसे हैं जो शांति तथा समाधि में हैं। यदि दुनिया समाधि में होती तो गीत बनाने वाले को गीत लिखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह क्यों गीत लिखता, क्यों गीत बनाता!

**मैं तो ढूंढियो रे सहु जग मांय, सुखी ना मिलियो एक भी...**

उसको गीत बनाने की आवश्यकता नहीं होती। वह गीत नहीं बना

सकता था, किंतु उसने (गीत बनाने वाले ने) अनुभव किया कि इस दुनिया में बहुत से आर्त मनुष्य हैं जो दु:खी हैं। किसलिए दु:खी हैं? क्योंकि उनको मनुष्य जीवन मिल गया। मनुष्य जीवन मिलना उनके लिए दु:ख का कारण है, जिन्होंने उसकी महत्ता को नहीं जाना। इसलिए कई लोग बोलते हुए मिलते हैं कि जन्म से पहले ही भगवान उठा लिए होते तो अच्छा होता। यह दु:ख देखने को नहीं मिलता। कई लोग कहते हैं कि पहले ही मर जाते तो अच्छा होता। दु:ख नहीं देखना पड़ता।

यदि दुनिया की चाबी तुम्हारे हाथ में होती तो तुम दुनिया का कभी नाश कर देते। तभी तो दुनिया की चाबी तुम्हारे हाथ में नहीं है। यदि परमाणु बम की चाबी तुम्हारे हाथ में लग जाए तो तुम उसका ताला खोलने में ज्यादा समय नहीं लगाओगे। चाहे वह अपने ऊपर ही क्यों न फटे। जब तुम उसे खोलोगे तो सबसे पहले तुम्हारा ही नाश होगा क्योंकि उस बम के सबसे नजदीक तुम खुद ही रहोगे। समझने की बात है कि हकीकत में हमारा जन्म दु:खी होने के लिए नहीं हुआ है। हम सोच लेते हैं कि हमारी जिंदगी में दु:ख ही लिखे हुए हैं तो हमारी सोच के अनुसार हमारे ऊपर दु:ख, समस्या, परेशानियाँ, कठिनाइयाँ बढ़ेंगी। यह हमारी सोच हो सकती है, हमारी समझ हो सकती है, किंतु यदि हम विचार कर लें और सही तरीके से विचार कर लें तो न कोई समस्या है, न कोई परेशानी। परेशानी है तो अपनी सोच की कि मेरी समझ अभी तक वहाँ नहीं जा पा रही है और न ही जाएगी क्योंकि मैं अनात्मभावों में चल रहा हूँ।

मन चंगा तो कठौती में गंगा। यदि हमारा मन पवित्र होगा, सही होगा तो हमें समस्या का समाधान मिलेगा। यदि मन पवित्र नहीं होगा तो समस्या हमारे ऊपर हावी रहेगी। हम रोते रहेंगे कि आज यह हो गया, वह हो गया। मन पवित्र होगा तो हर समस्या का समाधान मिलेगा। अन्यथा जैसे मकड़ी जाल बुनकर खुद उसमें फँस जाती है, वैसे ही तुम भी अपने विचारों में फँसते जाओगे। निकलने का रास्ता नहीं मिलने वाला। लोग अपने ही चक्रव्यूह में फँस जाते हैं। निकलने का रास्ता ही नजर नहीं आता। इसलिए बहुत सारे लोग समस्या में जूझते रहते हैं। उन पर समस्या पर समस्या आती रहती है। उनको बाहर निकलने के लिए कोई रास्ता नहीं मिलता। कोई समाधान नहीं मिलता। शांति नहीं मिलती। तृप्ति नहीं मिलती। समाधि नहीं मिलती।

पूछा गया, भंते! तथारूप श्रमण माहण (उत्तम साधु) को प्रासुक एषणीय (निर्दोष) अशन, पान, खादिम और स्वादिम देने से श्रावक को क्या लाभ मिलता है?

उत्तर में भगवान ने फरमाया, वह एकांत निर्जरा करता है। तथारूप श्रमण की परिभाषा मैं विगत दिनों कर चुका हूँ। पोशाक के अनुरूप जीवन जीने वाला, कथनी करनी जिसकी एक हो, ऐसा उत्तम साधु।

भगवती सूत्र में चर्चा है कि तथारूप श्रमण माहण 'प्रासुक एषणीय' जैसा जीवन जी रहा है। जैसी पोशाक है, वैसा ही जी रहा है। कथनी और करनी एक है। उसमें भेद नहीं, भिन्नता नहीं।

## 'फासुयं एसणिज्जं'

गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से पूछा तो भगवान ने जो उत्तर दिया वो उत्तर बना बनाया नहीं था। भगवान ने जैसा देखा, वैसा ही कहा। भगवान ने कहा कि तथारूप श्रमण जैसे स्वयं समाधि में जीता है, वैसे ही सबको समाधि देने वाला होता है।

प्रासुक का क्या अर्थ होता है? क्या अर्थ है बताओ? इतने सारे लोग बैठे हैं, कोई भी नहीं बता सकता क्या? बताएंगे कैसे? कुछ पढ़ेंगे तब तो बोलेंगे!

प्रासुक का अर्थ होता है अचित्त वस्तु। सचित्त वस्तु साधु के लिए ग्राह्य नहीं होती। अचित्त वस्तु भी वह ग्राह्य होती है, जिसमें साधु के निमित्त किसी भी जीव की विराधना नहीं हुई हो। साधु के निमित्त से बनाया गया अशन आदि प्रासुक नहीं होता। यदि किसी जीव को कष्ट देकर अशन-पान आदि का निर्माण किया जाए तो वह आहार साधु के लिए शुभ नहीं है। उसके लिए उपादेय नहीं है। गृहस्थ द्वारा जो स्वयं के लिए बनाया गया है, जिसको बनाने में साधु के लिए बनाने का कोई भाव नहीं हो, ऐसा प्रासुक आहार साधु के लिए ग्राह्य होता है।

प्रासुक के साथ दूसरा विशेषण है, एषणीय। उसका अर्थ होता है- साधु द्वारा शुद्धता की जानकारी लेकर किया गया भोजन। साधु एषणीय आहार ग्रहण करने वाला होता है। खोज किया हुआ आहार ग्रहण करने वाला होता है। खोज करने का मतलब है यह जानना कि आहार शुद्ध है या नहीं! आहार

निर्दोष है या नहीं! निर्दोष आहार हो तो ग्रहण करना, नहीं तो ग्रहण नहीं करना। चाहे कितनी भी भूख हो, वैसे आहार को ग्रहण नहीं करना। एषणीय आहार नहीं है, शुद्ध आहार नहीं है तो उस आहार को स्वीकार नहीं करना।

ऋषभदेव भगवान शुद्ध आहार के अभाव में एक वर्ष तक भिक्षा के लिए भ्रमण करते रहे। वे रोजाना भिक्षा के लिए निकलते थे। जैसे ही भिक्षा काल पूरा हो जाता, भिक्षा नहीं मिलती तो वैसे ही लौट आते। यहाँ नहीं मिले तो बेला-तेला करना मुश्किल हो जाएगा। सबके लिए मुश्किल नहीं होगा, पर कइयों को तकलीफ हो जाती है। ऋषभदेव ने पूरे वर्ष तक निरंतर भिक्षा के लिए भ्रमण किया पर वे कभी भी निराश नहीं हुए कि भिक्षा नहीं मिली, अब भूखा कैसे रह सकता हूँ। उनके चेहरे पर हमेशा खुशी रहती थी। भिक्षा के लिए जाना और खाली हाथ लौट आना रोज का काम हो गया था। उनमें जितनी क्षमता, ताकत और सहनशीलता थी, उतनी सहनशीलता और क्षमता होना कठिन है। साधु एक बार थोड़ी देर तक सहनशील बन भी जाए, किंतु लोग उसे बनने नहीं देंगे। श्रावक लोग बोलेंगे कि आज म.सा. के लिए गोचरी नहीं आई, आज म.सा. भूखे कैसे रहेंगे, उनका दिन कैसे निकलेगा। श्रावक चर्चा का विषय बना देते हैं।

अरे! भाई भिक्षा नहीं आई तो नहीं आई। नहीं आई तो क्या फर्क पड़ा! एक दिन भ्रमण करने से, उपवास करने से क्या फर्क पड़ता है? कितना ही घूम-फिर के आ जाए गोचरी के लिए, किंतु जब तक किसी की भावना, इच्छा नहीं होगी गोचरी-पानी देने की, वह नहीं देगा। आप कितने ही फिर लो। किसी के मूल में अंतराय कर्म का योग होगा तो नहीं मिलेगी गोचरी। हमारे अंतराय कर्म हैं तो भिक्षा नहीं मिलेगी। अगर अंतराय कर्म का तदनुरूप उदय भाव नहीं होता तो भिक्षा सुलभ होती। हमारे कर्म प्रगाढ़ होंगे तो घूम लेने पर भी भिक्षा प्राप्त नहीं हो पाएगी। ऋषभदेव के वे ही कर्म आड़े आ रहे थे, इसलिए उन्हें भिक्षा नहीं मिली।

## 'कस्सऽट्ठा'

शुद्ध खाने की खोज करने का उपाय है- 'कस्सऽट्ठा? केण वा कडं? अर्थात् किसने बनाया, किसलिए बनाया गया। उससे पूछा जाएगा कि इस खाने के पीछे क्या उद्देश्य था। कहीं हमारे आने का पता तो नहीं था कि

म.सा. गोचरी के लिए आएंगे इसलिए खाना बनाकर रखें। यदि ऐसे विचारों में खाना बना होगा तो उस खाने को स्वीकार नहीं करना। अगर आपके भीतर यह विचार बना है, यह भावना बनी है तो वह आहार साधु के लिए अग्राह्य हो जाएगा। बहुत बारीक बात है। इसीलिए कहा गया है कि जो गृहस्थ प्रासुक व एषणीय आहार मुनि को देता है, वह समाधि प्राप्त करने वाला होता है।

भगवान कहते हैं कि जो साधु को शुद्ध आहार देगा, वह कर्मों की निर्जरा करने वाला, समाधि को प्राप्त करने वाला होगा। इसका मतलब क्या है? जो आहार हम साधु को दे रहे हैं, वह यदि प्रासुक नहीं है, संपूर्ण दोषों से रहित नहीं है तो उन्हें समाधि नहीं। ऐसे आहार से संत का पेट भर सकता है, किंतु समाधि, शांति, तृप्ति, नहीं मिल सकती। पेट भरना अलग बात है। साधु, समाधि, शांति, तृप्ति चाहता है या पेट भरना? हमारा लक्ष्य साधु को समाधि पहुँचाने का होना चाहिए। वह रूखे-सूखे भोजन से भी संभव है। धन्ना अणगार बची-खुची भिक्षा लाते थे। सब जनों के खाने के बाद वे भिक्षा लेने जाते थे। जैसा भी खाना होता, रूखा-सूखा, बचा हुआ, रात का खाना भी होता तो ले आते थे। वे वैसा भी खाना ले आते थे जिसे खाने के लिए कुत्ता व कौआ भी तैयार नहीं हो। वैसा खाना लाते और खाते थे। ऐसा आहार ही समाधि देने वाला बनता है।

भोजन समाधि और असमाधि का हेतु नहीं है, किंतु इसके पीछे रही हुई भावना महत्त्वपूर्ण होती है। वह यदि निर्दोष होगी तो समाधि देने वाली बनेगी। वह भोजन भी समाधि देने वाला होगा। अन्यथा वह आहार हमारे भीतर कहीं-न-कहीं ऊहापोह पैदा करने वाला होगा। साधु जीवन मस्ती है। हम मस्ती की बात करते हैं और कोई साधु मस्ती में नहीं है तो वह मस्ती कहाँ चली गई है। साधु के मन में उथल-पुथल पैदा नहीं होना चाहिए। यदि उसके भीतर उथल-पुथल होती है तो कहीं-न-कहीं आहार की गड़बड़ी संभव है। यदि उसके भीतर कोई गड़बड़ी नहीं है तो असंतोष नहीं होगा, असमाधि नहीं होगी, मन में ईर्ष्या नहीं होगी, मन का संतुलन नहीं बिगड़ेगा।

कई बार मन का संतुलन प्रेशर के कारण से भी बिगड़ जाता है। कई बार प्रेशर भी हो जाता है। वह किसी कार्य को लेकर भी हो जाता है, किंतु ये बहुत तुच्छ बातें हैं। जिसने बहुत ऊँचा उद्देश्य प्राप्त कर लिया वह कैसे उलझे

तुच्छ बातों में! यदि वह तुच्छ बातों में उलझता है तो क्या प्राप्त करता है? वह शांति या समाधि को प्राप्त कर रहा है अथवा कर्मों के स्रोत को प्राप्त कर रहा है?

एक नल से धीरे-धीरे पानी आ रहा है और एक नल से फुल पानी आ रहा है। जिस नल से फुल पानी आ रहा है उसके वॉशर को घुमाएं तो उसका पानी थोड़ा-थोड़ा आने लग जाएगा। दूसरे नल की पूरी टोंटी खोल दी जाए तो पानी प्रेशर से आने लग जाएगा। इसी प्रकार हमारा मन, हमारी काया, हमारे वचन जितने संक्लेशमय होंगे, उतनी सक्रियता से हमारे कर्मों का बंध होगा। जितनी संक्लेशित स्थिति हमारे मन की रहेगी हमारा मन कर्मों को उतना ही ग्रहण करेगा।

पानी का एक नाला शांत गति से चल रहा है। यदि उसी नाले में पीछे से वेग से पानी आए तो उस नाले का पानी बहुत वेग से चलेगा। वेग पानी को आगे की ओर धकेलता हुआ बहाएगा। इसी प्रकार हमारे योग जितने सक्रिय होंगे, हमारा मन जितना सक्रिय होगा, हमारे वचन जितने सक्रिय होंगे, मन-वचन की शक्ति जितनी तीव्र होगी, हमारे कर्मों का बंधन उतना ही ज्यादा होगा। जैसे पानी सामान्य अवस्था से चलता था, वैसे ही सामान्य गति से योग प्रवर्तित होते हैं तो कर्मों का बंध भी सामान्य होगा। जैसे हिमालय क्षेत्र में जहाँ बर्फ जमी रहती है, वहाँ यदि तापमान बढ़ जाता है तो बर्फ पिघलती है। पिघलने से वह पानी समुद्र में आता है तो समुद्र की सतह को उठाने वाला होता है।

कहते हैं कि वहाँ पर कभी वर्षा नहीं होती है, किंतु अभी वहाँ पर सात अरब टन पानी की वर्षा हुई है। यह शुभ संकेत नहीं है। इस कारण समुद्र में पानी बढ़ता जा रहा है। कहते हैं कि इसी प्रकार बर्फ पिघलती रहेगी तो समुद्र के किनारे पर बने सारे शहर नष्ट हो जाएंगे। 20 फीट तक पानी में डूब जाएँगे। तीन लोगों को एक के ऊपर एक करके खड़ा कर दिया जाये, उतनी ऊँचाई वाले शहर डूब जाएंगे। 20 फीट तक पानी भर जाएगा। इसलिए समुद्र के तट वाले शहरों में रहने वालों की चिंता बढ़ रही है कि मौत नजदीक आ रही है।

यह सब क्यों हो रहा है, क्या इस पर कभी विचार किया? चिंतन-मनन किया? इस बारे में हमने सुना और सुनकर अनसुना कर दिया। कभी

दिमाग चलाया कि नहीं चलाया? कभी यह भी सोचा कि मैं यहाँ का ही प्राणी हूँ! मैं यदि पर्याय प्रकृति को, कुदरत को नष्ट कर रहा हूँ तो मेरे को ही एक दिन नुकसान उठाना पड़ेगा! यह भी सोचा क्या आपने कि मैं भी उन सभी लोगों के साथ हूँ, जो अपने पैर पर कुल्हाड़ी चला रहे हैं। यह विचार किया कभी आपने कि मैं भी उसमें हिस्सेदार हूँ, मेरा भी उसमें सहयोग है। पर्यावरण को नष्ट करने में मेरा भी पूरा योगदान है। मैं भी उन परिस्थितियों में सहभागी बन रहा हूँ।

मैं जहाँ तक सोच पाया हूँ इसके पीछे हमारी स्वार्थ भरी सोच है; क्योंकि हम भी चाहते हैं कि वर्तमान में जैसे अन्य लोग जी रहे हैं, उनके जैसा जीऊँ। हम भी वर्तमान स्टेटस के अनुसार जीवन जीना चाहते हैं। हमें शांति और समाधि की आवश्यकता नहीं है। मुझे तो वर्तमान जिंदगी को जीना है। यदि यहाँ बैठे हुए लोगों पर सर्वे किया जाए तो शांति और समाधि चाहने वाले लोग बहुत कम मिलेंगे। यहाँ बैठे हुए लोगों में शांति और समाधि चाहने वाले लोग कौन-कौन हैं? जो लोग हैं वे एक बार अपना हाथ खड़ा करें कि म.सा. मैं शांति और समाधि चाहता हूँ।

(एक भी हाथ नहीं उठा)

क्या हुआ? इतने सारे लोग बैठे हो पर एक भी हाथ खड़ा नहीं हुआ। आपको डर है कि कहीं म.सा. दीक्षा की बात न कह दें। यदि समाधि और शांति चाहने वाले भयभीत होंगे तो समाधि और शांति मिलेगी कैसे? हमने रास्ता भी बदल लिया, सड़क भी बदल ली तो भी हमको वह मिलने वाली नहीं है। कोई कह रहा है कि गुरुदेव आपने हाथ खड़े करने के लिए कहकर भय पैदा कर दिया। यदि हाथ खड़े करने से आपको भय है तो आप समाधि और शांति को प्राप्त नहीं कर सकते। कोरोना का इंजेक्शन लगवाते समय जब आप लाइनों में खड़े रहे तो वहाँ पर आपको डर नहीं लगा। वहाँ पर आपको भय नहीं लगा। वहाँ पर तो जबरदस्ती आगे घुसते जा रहे थे। वहाँ पर तो आपने कई घंटों का इंतजार किया, लाइनों में खड़े रह करके वैक्सीन लगवा ली।

यू.एस.ए से एक खबर आई। पता नहीं सही है या अफवाह। बहुत सारे समाचार पत्र ऐसी खबरें छापते रहते हैं। वह खबर उलटी-पुलटी है या सही, नहीं मालूम। वह खबर ऐसी है कि जिसको कोरोना के दोनों टीके लग गये, उसको कोरोना होने का ज्यादा खतरा है। उसके पीछे तर्क यह है कि

पोलियो का टीका बनाने में लगभग 15 साल लगे। शोध करने में 15 साल का समय लगा था, तब जाकर वह टीका तैयार हो पाया था, किंतु कोरोना की वैक्सीन दो साल में निकाल दी। बड़ी-बड़ी कंपनियों ने पैसा कमा लिया। यथार्थ जो भी हो, किंतु इस तर्क के लिए दिमाग तो चला कि जब 15 साल में पोलियो का टीका तैयार हो पाया और मलेरिया का टीका भी कई सालों के शोध और परीक्षण करने के बाद बना तो कोरोना का टीका इतनी जल्दी कैसे तैयार हो गया। यह सवाल कि ताबड़तोड़ कैसे बन गया? लोग भयभीत हैं और सरकार ने यह कह दिया कि जिसको भी दो टीके नहीं लगे हैं उसको प्लेन, ट्रेन आदि में यात्रा नहीं करने देंगे। उसको दूसरे देशों की यात्रा नहीं करने देंगे। उसको वीजा नहीं मिलेगा। ट्रेन का टिकट नहीं मिलेगा। वह ट्रेन में नहीं जा सकता है। जिसको भी दो टीके लग चुके हैं वह सफर कर सकता है। वह रेल यात्रा कर सकता है।

मैंने एक दिन कहा था कि चाहे खरबूजे पर चाकू पड़े या चाकू पर खरबूजा पड़े, कटना तो खरबूजे को ही है। उसके बावजूद हम कितने सुख-समाधि से जी रहे हैं, यह अपने मन से अनुभव करना चाहिए। जब हम सही दिशा में चलना प्रारंभ नहीं करेंगे तो कहाँ से मिल पाएगी समाधि।

साधु के लिए अशांति एक प्रकार से पानी में आग की तरह है। जैसे पानी में आग लगती है तो कई लोग कहते हैं कि लावा फटने से समुद्र में भी आग लग जाती है। ऐसा कभी हुआ या नहीं, इस हकीकत को हम नहीं जानते। चर्चा जरूर होती रहती है। चर्चा कुछ भी हो, समुद्र में आग लगती हो या नहीं लगती हो, पानी में आग नहीं लगती है। यदि हमने समुद्र में थोड़ा-सा पेट्रोल छिड़क दिया तो वह पेट्रोल पानी में फैल जाएगा, उससे पूरे समुद्र में आग लग जाएगी। हम पहले भी चर्चा कर चुके हैं कि यदि समुद्र में पेट्रोल छिड़क दें तो आग ललग सकती है। पेट्रोल से पानी में आग लग सकती है। उसके साथ थोड़ा पानी भी जलता है। ऐसा नहीं है कि सिर्फ पेट्रोल जलेगा। उसके साथ थोड़ा पानी भी जलेगा।

जैसे चूल्हे पर रखे तवे के ऊपर थोड़ा-थोड़ा पानी डालते रहने से वह पानी सूख जाता है या भाप बनकर उड़ जाता है। ऐसा नहीं है कि समुद्र में भी आग लगने से पानी कम हो जाएगा। समुद्र का पानी शायद कम नहीं पड़े किंतु

तवे पर पड़ने वाला पानी सूख जाता है। वैसे वीतरागी पुरुषों के समक्ष कैसे भी प्रसंग आ जाएं, उनकी समाधि भंग नहीं होती। उनकी समाधि बनी रहती है। हमारी समाधि तवे पर पड़ने वाली बूँदों के समान अल्प है। इसलिए हम छोटी-छोटी बातों में उलझ जाते हैं। जब हम छोटी बातों में अटक जाते हैं तो असमाधि होती है। फिर हम अशांति से निकल नहीं पाते हैं। इसलिए हमें यह विचार करना है कि हमारा लक्ष्य क्या है, हमारा उद्देश्य क्या है? हमारा लक्ष्य समाधि का है तो हम छोटी-छोटी बातों में नहीं उलझें। छोटी-छोटी बातों से बाहर निकलकर शांति के मार्ग पर अग्रसर होवें।

सरदारशहर चातुर्मास की बात है। मैंने कहा था कि सब संत एकसमान नहीं होते। सबकी रुचि एकसमान नहीं हो सकती। मेरे पास नवदीक्षित सदस्य भी थे। मैंने उनसे कहा कि यह मौका है। यही तुम्हारे लिए अवसर है। जो काम आपको करना है वह काम करो। यह मत सोचो कि दूसरा साधु कर रहा है या नहीं कर रहा है। जो भी तुम्हारे सामने काम आ जाए उसको तत्काल कर लो। ऐसा मत सोचो कि दूसरा कुछ कर रहा है या नहीं कर रहा है। मन में यह भावना नहीं होनी चाहिए कि वह नहीं कर रहा है तो मैं क्यों करूँ। यही तुम्हारे कर्मों की निर्जरा का प्रसंग है। काम करने से आपका नुकसान कुछ होने वाला है नहीं। काम करने से आपका नॉलेज बढ़ेगा। काम करने से आपको कुछ-न-कुछ फायदा तो जरूर मिलेगा। आज नहीं तो कल। एक दिन उसका परिणाम जरूर मिलेगा। यह बात स्पष्ट है कि जो जितना काम करेगा, जितना तपेगा उसका उतना ही एक्सपीरियंस बढ़ेगा। उसकी सोच बढ़ेगी। काम करने से उसका अनुभव बढ़ेगा। उसमें काम करने के तरीके आते रहेंगे। सुनने से आपका अनुभव उतना नहीं बढ़ने वाला है जितना आपके द्वारा काम करने से बढ़ता है। किताबें कितनी भी पढ़ लो वो नजर नहीं आ सकती।

एक बात गुरुदेव के समय की बता दूँ, जब कुछ संत अलग हुए थे। 6 मई की बात है। 8 मई को उनका पुन: आने का प्रसंग बना। रात्रि में हम सब बैठे हुए थे। आपस में चर्चा चल रही थी। इतने में गुरुदेव का उठना हो गया। सुरेंद्र जी सेठिया भी वहाँ मौजूद थे। उन्होंने कहा कि युवाचार्य श्री जी स्थविर प्रमुखों को आपसे बहुत शिकायतें हैं। क्या शिकायतें हैं मैंने कहा। महापुरुषों का मैं उपकार मानता हूँ कि जितना 20 सालों में नहीं सीख पाया वह कुछ ही महीनों

में सीख लिया। जब तक प्रसंग सामने न हो, प्रैक्टिकल नहीं हो तो समझ कम आती है। जब तक आदमी स्वयं अपने हाथों से काम नहीं करता है तब तक उसका प्रैक्टिकल अधूरा होता है। जब स्वयं करना शुरू करता है तब उसका प्रैक्टिकल पूरा होता है। आप जितना प्रैक्टिकल करोगे आपकी तैयारी उतनी बढ़िया होगी। उतना ही आपमें निखार आएगा। यदि डॉक्टर बहुत बड़ी उपाधि प्राप्त कर ले, किंतु उसके हाथ से एक भी मरीज नहीं निकले तो उसका अनुभव नहीं बढ़ेगा। यह हमने अनुभव किया है।

हमारे एक संत की तबीयत बिगड़ी, उसे स्पेशलिस्ट डॉक्टरों को दिखाया गया। डॉक्टरों ने बड़े-बड़े पर्चे लिख दिए। दवाइयाँ लिख दीं और कहा कि ये दवाइयाँ लेते रहना, ठीक हो जाओगे। उन दवाइयों का उन पर कोई असर नहीं पड़ रहा था। वे ठीक नहीं हो पाए। उनकी तबीयत और नाजुक होती गई। फिर दूसरे डॉक्टर को दिखाया गया। वह न तो सर्जन था और न उसके पास बहुत सारी उपाधियाँ थीं। वह एम.बी.बी.एस. किया हुआ डॉक्टर था, लेकिन उसके हाथ से बहुत मरीजों का इलाज हुआ था, इसलिए वह अनुभवी था। उसको पता लगा कि बीमारी क्या है। उसने देखा और पाँच दिन की दवा देकर कहा कि पाँच दिन यह दवा ले लेना। पाँच दिन में आपका रोग खत्म हो जाएगा। हकीकत में उस संत का रोग पाँच दिन में खत्म हो गया।

हमारी ऐसी मानसिकता हो जाती है कि हम बड़े म.सा. के ही व्याख्यान सुनें। यह गलत धारणा है कि छोटे म.सा. के व्याख्यान तो रोज ही चल रहे हैं और रोज ही हम सुनते रहते हैं। ज्ञान का क्या छोटा या क्या बड़ा। ज्ञान, ज्ञान है। एक बार मैंने प्रयोग भी किया रायपुर में। वहाँ मेरा चातुर्मास चल रहा था। वहाँ 9 बजे ही दरवाजा बंद कर देते थे। 9 बजे के बाद जो बाहर हैं वे बाहर। जिनको व्याख्यान सुनने की रुचि नहीं है उनको जबरदस्ती भर्ती करने से क्या फायदा है? आज लेट हो गए तो कोई बात नहीं है, कल सुन लेना। लेट तो वेट। आप जितना ज्यादा लेट करोगे आपको उतना ही वेट करना पड़ेगा। आज जो वेट करेगा वह कल जल्दी आकर पहले ही अपना स्थान ग्रहण कर लेगा।

यदि आपकी ट्रेन 9 बजे है और आप 10 बजे जाते हो तो ट्रेन आपका वेट नहीं करती। यदि आप एक घंटा जल्दी पहुँच गये और एक घंटा ट्रेन लेट है तो आपको ट्रेन का वेट करना पड़ेगा, किंतु यदि आप 5 मिनट भी

लेट हो गये तो ट्रेन आपका वेट नहीं करती है। ट्रेन 5 मिनट लेट हो गई तो आपको इंतजार करना होगा कि अब आ रही है, अब आ रही है, अब आ रही है। पता नहीं कहाँ रह गई! अभी तक आ जानी चाहिए थी। क्यों नहीं आई। वेट आपको ही करना पड़ेगा। ट्रेन आपका वेट नहीं करने वाली। ऐसा नहीं है कि व्याख्यान में जो रोज आ रहे हैं तो उनका वेट किया जाए। ऐसा कुछ नहीं है।

बंधुओ! मैं तो इसमें खुश हूँ। मुझे ज्यादा भीड़ की ख्वाहिश नहीं रहती है। कल प्रणत मुनि जी ने कहा था कि एक महीना तो हो गया अब तीन महीने और बचे हैं। ज्यादा से ज्यादा व्याख्यान सुनना है। उस समय मेरे मन में विचार आया कि ज्यादा भीड़ होगी तो मुझे जोर से बोलना पड़ेगा, नहीं तो कहेंगे कि म.सा. म्हाने लारे तक सुनाई नहीं देवे। मुझे तेज आवाज में बोलना पड़ेगा। मुझे ज्यादा भीड़ इकट्ठा नहीं करना है। यदि कम लोग भी सुनना चाहें तो मैं उनको व्याख्यान सुना दूँगा। यदि 50 आदमी भी होंगे या चार भी ग्रहण करने वाले होंगे तो यह सबसे अच्छी बात है। वह ज्यादा काम की बात है। ज्यादा भीड़ एकत्र करने से कोई मतलब नहीं है। कितने भी हों जिनवाणी को ग्रहण करने वाले होने चाहिए। ज्यादा आ तो जाएंगे, लेकिन वे ढंग से नहीं सुनेंगे तो उनका आना सार्थक नहीं होगा।

एक दुकान पर दिन भर ग्राहक आते रहे पर कोई बिक्री नहीं हुई तो क्या उसका माल निकलेगा? निकलेगा कहाँ से, ग्राहक तो सारे खाली जा रहे थे। भगवान की पहली वाणी खाली गई। उसका आचरण करने वाला एक भी नहीं निकला, इसलिए भगवान की पहली वाणी खाली गई। वाणी को आदरने वाला, स्वीकार करने वाला होना चाहिए। यदि पाँच भी होते हैं और पाँचों ही सही हैं तो लाभ है। लेट होने वाले कई लोग सोचते हैं कि कब म.सा. का एक व्याख्यान पूरा होवे और कब मैं मांगलिक में जाऊँ! ऐसे में फायदा क्या है बताओ? ऐसे किसको समाधि मिल जाएगी? ऐसे कौन मोक्ष को प्राप्त कर सकेगा? किसको तृप्ति मिलेगी? इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि उसका अंतराय कर्म टूटा नहीं जिससे उसके भीतर रुचि पैदा नहीं हो रही है। इसीलिए जिनवाणी सुनने की उसकी श्रद्धा और आस्था नहीं है, जबकि जिनवाणी वह अमृत है जो हमारी कलुषित आत्मा को पवित्र बना दे। उसका यह महत्त्व जिसके समझ में आ गया वह उसे बड़ी श्रद्धा से, उत्कंठा से सुनेगा।

जैसे तीन दिन से भूखे व्यक्ति को लूखी-सूखी रोटी भी मिले तो उसकी मंशा उसे खाने की बन जाती है। उसी को खाने के लिए यदि खीर, मलाई और घेवर मिल जाए तो वह उन्हें कितनी रुचि से खाता है। वैसे ही श्रावक के लिए बताया गया है कि उसकी रुचि ऐसी होनी चाहिए कि सारे काम गौण करके पहले जिनवाणी का स्वाद ले, जिनवाणी का स्वाद चखे। हकीकत में अगर हमारे भीतर यह भावना होगी तो उसका रसायन अलग ही होगा। वह जज्बा अलग ही होगा। उसकी झलक अलग ही दिखेगी।

बीकानेर के एक श्रावक जी की बात है। वे छोटे से छोटे संत का व्याख्यान सुनते थे। बड़े दिल से सुनते थे। बड़े इत्मीनान से सुनते थे। चाहे संत बड़े हो तो भी वे सुनते थे और यदि नवदीक्षित संत हो तो भी सुनते थे। यदि कोई ऊँची-नीची बात आ गई तो वे आहार-पानी के पश्चात् उनकी पर्युपासना करते, वंदना करते, नमस्कार करते। वे कहते कि आप धन्य हो। आपने इतनी छोटी उम्र में दीक्षा ग्रहण कर ली। वे संत की अनुमोदना करते, प्यार से अनुमोदन करते। उनके ज्ञान की अनुमोदना करते। वह श्रावक नवदीक्षित संत से कहते कि पहले मैंने बड़े म.सा. से ऐसा सुना था। आप बड़े म.सा. से पूछकर इसका समाधान बताना कि आपने बताया वह सही है या बड़े म.सा. ने बताया वह सही है। नवदीक्षित संत बड़े संतों के पास जा उस बारे में चर्चा करेगा या नहीं? करेगा क्योंकि श्रावक को समाधान देना है। इस प्रकार से उन्होंने उस मुनि को विनय की ओर प्रेरित कर दिया। यह बहुत महत्त्व की बात है। ऐसे ही श्रावकों को अम्मा-पिया कहा गया है। ऐसे ही श्रावक साधु जीवन की सुरक्षा कर सकते हैं। साधु के जीवन को विकसित करने में सहायक हो सकते हैं। श्रावक का विनय, उसका वात्सल्य साधुओं को प्रेरित करने वाला हो सकता है। आज का छोटा साधु कल बड़ा बनने वाला है। श्रावक यदि साधु की कदर नहीं करेगा तो धर्म का उत्थान कैसे होगा? इसलिए छोटे से छोटे साधु को भी सुनना चाहिए। उनसे ज्ञान, ध्यान के विषय में पूछना चाहिए, पर यह सारा कार्य विनय से हो व श्रावक अपना कर्त्तव्य समझ कर करे।

इस युग में लोग अपना बड़प्पन स्थापित करने की चेष्टा में ज्यादा नजर आते हैं। उनको इसकी फिक्र नहीं होती कि उनके व्यवहार से धर्म की कितनी हानि होगी। रही सही कसर समाचार तंत्र ने पूरी कर दी है। वाट्सएप,

इंस्टाग्राम, फेसबुक आदि में क्या-क्या बातें घूमती रहती हैं। इनसे हिंसा तो होती ही है, वैचारिक प्रदूषण भी फैलता है। समय की बर्बादी भी होती है।

मुझे याद आ रहा है एक प्रसंग जो 2015 का है। 2015 में मेरा चातुर्मास हैदराबाद में चल रहा था। उस समय किसी ने जयपुर में संथारा लिया था। वह चर्चा में आ गया। मीडिया में खूब चर्चा चली। चर्चा के साथ ही इतने बरसाती मेढक पैदा हो गए कि आए दिन अपने-अपने नाम से समाचार पत्रों में वक्तव्य देने लगे। उन भाइयों से कोई पूछ ले कि संथारा क्या होता है तो 'नमो अरिहंताणं।' बहती गंगा में हाथ धोना था सो धो लिया। दूसरे की देखा-देखी नाम कमाने का मौका हाथ लगा था। ऐसा मौका मिलता कहाँ है कि बहती गंगा में स्नान कर लें। ऐसा एक बार पहले भी हुआ था साबुदाना को लेकर। ऐसे लोग मौके पर ही जगते हैं। शेष समय कुंभकर्ण जैसी गहरी नींद में सोए रहते हैं।

किस-किस को नाम का शौक है? वकील साहब आपको नाम का शौक है? कई जनों को शौक रहता है। आप देख लो महेश जी नाहटा को। इन्हें नाम पसंद है। कितने ही कागजों में महेश नाहटा नाम आ जाए फिर भी इनके मन को संतोष नहीं है। जिस समय शरीर छूट जाएगा, उस समय ये सारे नाम किस काम आएँगे, यह हर कोई देखने वाला नहीं है। कागज फाड़ कर फेंक देते हैं। ये नाम आदि जो दीवारों पर लिखे हुए हैं, उन पर जब तक पानी नहीं पड़ता है, तब तक ठीक है। यदि उन पर पानी गिर गया तो सारे नाम मिट जाएंगे। कई लोग नील को घोलकर नाम लिखे देते हैं, वे लिखे गए अक्षर बहुत चमकीले लगते हैं, पर जैसे ही उन पर पानी पड़ जाए वे दीवार को खराब कर देते हैं। पेंट से लिखे गए नाम भी कब तक रहेंगे! यदि मकान गिर गया तो नाम गिरेंगे या नहीं? क्या पड़ा है इन नामों में। काम ऐसा करो कि हृदय में नाम छप जाए। लोगों के दिलों में नाम छप जाए।

प्रतापगढ़ वालो! 24 तीर्थंकरों के नाम बताओ। याद है या नहीं? भरत क्षेत्र के 24 तीर्थंकर हुए थे, उनके नाम बता दो। जो 20 विहरमान वर्तमान में हैं, उनके नाम बोलो। उनके नाम बताओ। क्या नाम बताएँ? हमें तो हमारे नाम की पड़ी है कि म्हारो नाम क्यों नहीं आयो और उनका नाम क्यों आ गया। मैं कौन-सा कम हूँ, क्या वो मुझसे बड़ा हो गया और मैं छोटा हो गया। मुझे

कम मत समझ लेना। परिस्थिति कभी भी बदल सकती है।

जिस घड़े का मुँह खुला होगा वह ऊपर से आने वाले पानी से भर जाएगा। जिस घड़े का मुँह बंद होगा पानी उसके ऊपर से बह जाएगा। यह हकीकत बात है। ये समस्याएँ हमारे सामने आई हुई हैं। दीक्षा पत्रिका में अमुक का नाम आ गया, जगह-जगह अमुक नाम आ गया, मेरा नाम नहीं आया। अरे! नाम से कल्याण होगा क्या? क्यों रो रहे हो नाम को लेकर कि मेरा नहीं आया, उसका आ गया। कल्याण, काम से होगा। हम नाम चाहते हैं या काम! नाम अच्छा लगता है। काम अच्छा नहीं लगता है। काम शब्द कड़वा लगता है और नाम शब्द अच्छा लगता है। काम करने का अपने आपको भरोसा नहीं है। काम में भरोसा करो तो नाम अपने आप हो जाएगा, अन्यथा जैसे दूध में पड़ी मक्खी को निकाल दिया जाता है, वैसे ही तुम यूज करके फेंक दिए जाओगे। काम करने वाले की सदा-सर्वदा जरूरत रहती है। नाम वाले की जरूरत शायद कभी-कभी ही पड़ती हो।

जिसको नाम की चाह होगी वह सदा दु:खी रहेगा। जो निष्काम होकर काम करेगा वह सुखी होगा। काम करना है मुझे। नाम से क्या करना। किसी से कोई अपेक्षा नहीं। जहाँ अपेक्षा रहेगी, वहाँ उपेक्षा भी रहेगी। आज हम अपेक्षा चाहते हैं या उपेक्षा? हम ज्यादा अपेक्षा में जीते हैं। हमारे भीतर ज्यादा अपेक्षा रहेगी तो वह दु:ख पैदा करने वाली बनेगी। हमें उपेक्षा में भी जीना सीख लेना चाहिए।

मैं बता रहा था समाधि भाव के बारे में। आज साधुओं का समाधि भाव भी घट गया है। उसका कारण है कि आज हमारी समझ अच्छी नहीं है। हमारी समझ में हमने अपेक्षा जोड़ ली। नाना गुरु मुनि अवस्था में थे। उन्होंने पहला चातुर्मास फलौदी में किया। युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. के साथ। गणेश गुरु का उससे अगला चातुर्मास बीकानेर खुला हुआ था। सरदारशहर में चातुर्मास देना जरूरी हो गया था, वैसी स्थिति में जवाहराचार्य ने उनका चातुर्मास बीकानेर से सरदारशहर में कर दिया। मुनि नानालाल जी को बीकानेर ही रखा गया। उनको टाइफाइड हुआ था, बुखार चल रहा था। गर्मी के दिन थे। धरती धोरों में उन्हें विहार में तकलीफ होती इसलिए उनको वहीं संतों के पास रखा।

एक बार एक संत ने प्रेम जताते हुए कहा कि आप कितना काम करते हो। आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता है। एक बात मैं आपको बता दूँ कि युवाचार्य श्री ने यह अच्छा नहीं किया। आपकी तबीयत ठीक नहीं थी और आपको यहाँ अकेले छोड़ दिया। गुरुदेव को आपको अपने साथ रखना चाहिए था।

ये काचर के बीजवत् बातें हैं। यह बीज फाड़ने वाला काम करता है। गर्म दूध में यदि काचर पड़ जाता है तो दूध फट जाता है, किंतु ऐसी बात तो ठंडे दूध को भी फाड़ सकती हैं। लेकिन नानालाल जी म.सा. कच्ची मिट्टी के नहीं थे। उन्होंने कहा कि गुरुदेव ने मुझे आपके पास छोड़ा है। आप मेरे लिए पराये नहीं हो। मुझे क्या चिंता है। ऐसा कहने पर उस साधु के मुँह से दूसरी बार ऐसी बात नहीं निकली। नानालाल जी म.सा. के इस जवाब को सुनकर वे चुप हो गए। अगर वैसा नहीं होता तो रोज नई-नई चर्चा हो सकती थी। इस जवाब से यह चर्चा बंद हो गई।

बीकानेर वाले श्रावक जी छोटे संतों से निवेदन करते कि बड़े म.सा. से पूछकर बताना कि हकीकत क्या है। आपने कहा वह ठीक है या म.सा. ने कहा वह ठीक है? वह मुनि बड़े संतों से विनयपूर्वक पूछता और श्रावक जी को समाधान देता। इससे वह मुनि विनय के प्रति प्रतिज्ञा का पालक तो हुआ ही, साथ ही उसे भूल सुधार का अवसर भी प्राप्त हुआ। उसे सद्बोध भी मिला। गीतार्थ मुनि का प्रसाद भी मिला।

मैंने प्रासुक एषणीय संबंधी बात प्रारंभ की। उस पर चिंतन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रासुक एषणीय आहार ग्रहण करता हुआ व उसका उपयोग करता हुआ साधु समाधि भाव को प्राप्त करता है। श्रावक यानी जो उस प्रकार का आहार दे रहा है वह भी तृप्ति का अनुभव करता है। उसके लिए वह प्रसंग समाधि देने वाला, कर्मों की निर्जरा कराने वाला बनता है। उससे श्रावक की साख भी बनी रहती है।

टेबल पर बहुत सारी प्रासुक वस्तुएं रखी हुई हैं। खुदा न खास्ता किसी ने कच्चा पानी पीकर गिलास टेबल पर रख दिया। उसी समय म.सा. गोचरी लेने के लिए आ गये। आप प्रतिलाभित होने के लिए, भिक्षा देने के लिए तत्पर हुए, किंतु कच्चे पानी का गिलास देख आप विचार में पड़ गए। आप संत से

कहते हैं 'भगवन् अभी वस्तुएँ असूझती हैं।' संत लौट गए। आपको लगा कि म.सा. मोहल्ले में गोचरी करते हुए कुछ समय में वापस पधार सकते हैं। ऐसी स्थिति में आप क्या करोगे? पहला विकल्प गिलास को वहाँ से हटाने का है। दूसरा विकल्प टेबल पर रखे प्रासुक वस्तुओं को स्थानांतरित कर देने का है। आप क्या करेंगे?

श्रोता– प्रासुक सामान वहाँ से अलग रख देंगे।

ऐसा करना विवेक होगा या अविवेक?

श्रोता– ऐसा करना विवेक होगा।

अन्य किसी को कुछ कहना है? बहुत सारे लोगों की एक ही राय है। साधु के लिए प्रासुक वस्तु को भी असूझते से सूझता करना उचित है क्या?

(आवाज आती है– यह तो श्रावक का विवेक है)

यह विवेक नहीं, अविवेक है। उक्त प्रकार से करना अयुक्त है। विवेक उसे कहा जाएगा जब स्वाभाविक रूप से पदार्थ सूझता हो जाए। जैसे किसी ने पानी पीने के लिए गिलास को उठा लिया अथवा कोई एकासन या भोजन करने नीचे बैठा, उसको परोसने के लिए सामान वहाँ से उठाया। उसे परोसकर वापस वहाँ नहीं रखकर अन्यत्र प्रासुक स्थान पर रख दिया। इसे विवेक कहा जाता है। साधु के लिए पदार्थ असूझते स्थान से सूझते स्थान पर रखना विवेक के अंतर्गत नहीं आ सकता, क्योंकि उसमें जो क्रिया की जा रही है, वह साधु के लिए की जा रही है। यह उचित नहीं है। सही नहीं है।

देख लिया तो क्या करना है? अंकुश जी बोलो? उस पर अंकुश लगा देना। क्या म.सा. की भावना है कि गिलास वहाँ से हटा दे। उस गिलास को हटाने से क्या काम सफल हो जाएगा? क्या वहाँ से गिलास हटाने से हमारा फायदा हो जाएगा?

वकील साहब क्या करेंगे? अपने कानून की धारा लगाइए। पहले तो लोग जमीन पर बैठकर खाना खा लेते थे। वह शुद्ध माना जाता था लेकिन वर्तमान में टेबल के बिना खाना कैसे हो सकता है! उसके बिना काम चलेगा नहीं! अब ज्यादातर घरों में डाइनिंग टेबल होती है। उस पर ही बैठकर खाना खाते हैं। इसमें चांस यह है कि या तो किसी ने पानी पीने के लिए गिलास उठाया या दूसरा कोई जो नीचे बैठकर एकासन कर रहा उसके लिए वहाँ से

भोजन उठाया या ऊपर बैठकर ही खा रहा तो उसको परोसने के लिए भोजन उठाया और वापस उस टेबल पर नहीं रखा।

हमारे मन में सदैव ऐसी भावना रहनी चाहिए कि साधु को प्रासुक आहार बहरावें, जिससे साधु को भी शांति व समाधि हो सके। हम उनको शुद्ध आहार देंगे तो हम भी समाधि को प्राप्त करने वाले बनेंगे। समाधि की प्राप्ति होगी तो निश्चित तौर पर आप और हम धन्य हो जाएंगे। इतना कहते हुए विराम।

24 अगस्त, 2021

# 14

# प्लान अपना चलना स्वयं को

कहा जाता है कि ठहरा हुआ पाँव मंजिल नहीं पाता। यह भी कहा जाता है कि 'पड़ा गंदेला होय' यानी पानी एक ही जगह पड़ा रहे तो कालांतर में वह गंदा हो जाएगा। साधु के लिए कहा गया है कि 'साधु तूं रमता भला दाग न लागे कोय।' पानी एक ही जगह पड़ा हो तो गंदगी से भरता है। वह गंदला हो जाता है।

चलने और वॉकिंग करने में भिन्नता है। चलते हैं मंजिल पाने के लिए और वॉकिंग होता है स्वास्थ्य के लिए घूमना-फिरना। घूमना-फिरना, चलना नहीं होता है। वह उससे भिन्न क्रिया है। चलने का अर्थ है मंजिल की ओर गति। लक्ष्य बनाकर चलना कि मुझे अमुक स्थान पर पहुँचना है। हमारा लक्ष्य क्या है? हम चल रहे हैं, गति कर रहे हैं। कोई पूछे हमसे कि हमारा लक्ष्य क्या है तो क्या बतायेंगे? क्या लक्ष्य है, मैं पूछता हूँ आपसे? बताओ आपका लक्ष्य क्या है? बोलो क्या है लक्ष्य? आपका गन्तव्य क्या है?

घर से चलना और जवाहर भवन पहुँचना। जवाहर भवन से घर जाना। क्या यही गन्तव्य है आपका? या इससे अलग भी कोई लक्ष्य है?

(श्रोता- मोक्ष का लक्ष्य है)

बहुत अच्छी बात है पर ध्यान रखें, सफलता तब मिलती है जब हम अपने लक्ष्य की ओर गति करते हैं। लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रवृत्त होते हैं। लक्ष्य तो बना लिया मोक्ष का, किंतु उसकी प्राप्ति के लिए कोई उपाय नहीं सोचा, उसके लिए साधन नहीं जुटाया तो लक्ष्य कहाँ से मिलेगा? कैसे मिलेगा?

व्यापारी, दुकान, शो रूम, फैक्टरी या अन्य जो भी प्रतिष्ठान बनाता है वह प्लान कर बनाता है। वह प्लानिंग करके, गणित करके चलता है कि इस साल इतनी आमदनी होगी और आने वाले पाँच सालों में यहाँ तक मैं पहुँचूंगा।

मेरे पास खूब पैसे होंगे, गाड़ियाँ होंगी, अच्छा घर होगा। ऐसा वह लक्ष्य बनाता है।

आने वाले पाँच साल में आप कहाँ तक पहुँचेंगे, है कोई लक्ष्य?

बस एक सामायिक कर रहे हैं। वह भी होगी तो भला नहीं तो नहीं होगी। आने वाले पाँच साल में सामायिक बढ़ेगी या घटेगी? मैं चाहता हूँ कि घटे। मैं नहीं चाहता कि सामायिक पाँच साल में बढ़े। मैं क्या चाह रहा हूँ? सामायिक घटे। कभी भी न बढ़े। क्यों बढ़े, किसलिए बढ़े। आप सोचो क्यों बढ़े। एक सामायिक में संतोष नहीं है, एक सामायिक में तृप्ति नहीं है तो हम दस सामायिक करते हैं। पाँच-सात सामायिक करते हैं, किंतु तृप्ति एक में भी नहीं है। ऐसी स्थिति में सामायिक किस काम की। इसलिए मैं चाहता हूँ कि सामायिक की संख्या भले घटे पर तृप्ति बढ़े। जीवनपर्यंत के लिए एक सामायिक स्वीकार कर लेना सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसलिए मैं कह रहा हूँ कि हमें सामायिक बढ़ाना नहीं, घटाना चाहिए। न तो पालना पड़े और न ही चितारना पड़े, इसलिए सामायिक बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है।

हम धर्म क्रिया कर रहे हैं और नाम मोक्ष का ले रहे हैं। भीड़ इतनी इकट्ठी हो गई कि छँटनी करना कठिन हो गया। सरकार की तरफ से एक पोस्ट के लिए वैकेंसी निकलती है तो आवेदन हजारों होते हैं। इसका मतलब क्या है? इसका मतलब हो गया कि हम सही रास्ते पर नहीं हैं। हम बेरोजगार हैं। वैसे ही जब मोक्ष की वैकेंसी आती है तो हजारों-लाखों खड़े होते हैं और टिकट किसी एक को मिलता है। इसका मतलब हमें मोक्ष जाने की चाह है, पर तरीका ज्ञात नहीं कि मोक्ष कैसे पाएंगे, मोक्ष कैसे मिलेगा। पहले आप यह तय कर लो कि मुझे छठे आरे में नहीं जाना है। मुझे सिर्फ मोक्ष ही जाना है। मोक्ष में जाना है तो अच्छी बात है, किंतु यह भी फाइनल करो कि मुझे छठे आरे तथा नरक व निगोद में नहीं जाना है। इतना तय कर लिया तो फिर मोक्ष की प्राप्ति आसान हो जाएगी।

लोग कहते हैं कि 'थारा काम ऐसा है कि नरक में जगा कोनी मिले।'

बढ़िया है कि वह नरक से बच गया। कभी ऐसा काम होता है कि नरक का स्थान भी हमारे लिए छोटा पड़ता है।

नानागुरु ने छठे आरे का वर्णन सुना। न केवल सुना बल्कि उसे गुना

भी। उस पर अनुप्रेक्षा की। अनुप्रेक्षा ने नानागुरु को झकझोर दिया। उन्होंने स्वयं से पूछा कि क्या मुझे भी उस जीवन में जाना पड़ेगा! उत्तर मिला– मुझे उस जीवन में जाना पड़ेगा तो मैं नहीं जाना चाहता छठे आरे के मनुष्य भव में।

साथियो! निर्णय अपने हाथ में है कि हमको छठे आरे में जाना है या नहीं जाना। आप कौन से रास्ते से घर पहुँचोगे यह आपकी मर्जी है। सड़कें बहुत हैं, किस सड़क से जाना है फैसला आपका है। किस रास्ते से जाना है, निर्णय आपको करना है। शॉर्टकट जाना है या घूम के जाना है, यह निर्णय आपको करना है। अगर रास्ता एक है तो सोचने की कोई बात नहीं है। किंतु कई रास्ते हैं तो बात आती है कि किधर से जाऊँ? किस रास्ते से जाऊँ? ये शॉर्टकट पड़ेगा या वह पड़ेगा! कभी किधर तो कभी किधर से चले जाते हैं। हो सकता है कि घर कभी देर से पहुँच गया तो कभी समय पर। जैसे भी पहुँचे पर पहुँच गए। आपने क्या टारगेट बनाया कि कितने भवों में मोक्ष को प्राप्त करना है? आपका टारगेट क्या है? एकाभवतारी होना भी कठिन नहीं है।

क्या कठिन नहीं है?

एकाभवतारी होना कठिन नहीं है। एकाभवतारी का एकाभवतारीपना उसमें झलकने लगता है। मटकी का पानी देखने के लिए मटकी खोलने की जरूरत नहीं है। मटकी में पानी देखने के लिए ढक्कन खोलने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मटकी की गीली ठीकरी देखकर यह अनुमान लगाया जाता है कि इसमें कितना पानी है। मटकी की ठीकरी आधी गीली है तो समझ लेते हैं कि उसमें आधा मटकी पानी है। ठीकरी ऊपर तक गीली है तो समझ लेंगे कि पानी ऊपर तक है। उसका ढक्कन खोलने की आवश्यकता नहीं है। उसी तरह किसी को बोलकर कहने की आवश्यकता नहीं है। एकाभवतारी की एकाभवतारीपना की झलक उसके जीवन में आने लगेगी।

ज्ञानीजन कहते हैं कि मनुष्य यहाँ से कौन–सी गति में जाएगा, इसका ज्ञान छह महीने पहले हो सकता है, बशर्ते बहुत सावधानी से अपने जीवन का निरीक्षण करें, परीक्षण करें। अनेक बार मृत्यु के छह महीने पहले जीवन में रूपांतरण होने लगते हैं। उनके आधार पर निर्णय किया जा सकता है। शास्त्र कहते हैं कि आयुबंध के समय जो लेश्या होती है जीवन के अंतिम समय वही लेश्या होती है। वह उसी लेश्या में मरता व जन्म भी उसी लेश्या में लेने वाला

होता है।

हमें मालूम होना चाहिए कि हम कौन-सी लेश्या में जी रहे हैं। हमें मालूम होना चाहिए कि मेरा जीवन कैसे अध्यवसायों में चल रहा है। उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कौन सी गति में जाना है इसलिए बहुत जरूरी है, अपने जीवन पर ध्यान देना। ऐसा नहीं कि जीवन जी रहे हैं तो जी रहे हैं।

**दीया जले जितना जले, जलता रहे,**
**क्यों थोड़ा सा भी तेल व्यर्थ में जले।**

क्यों दीया जले जितना जले। जब संत किसी के घर में जाते हैं तो कई बार टी.वी., लाइट, पंखा, कूलर चलता है। टी.वी. चल रही है पर कोई उसको देखने वाला नहीं है। सब घर से बाहर खड़े है, किंतु टी.वी. बंद करने वाला कोई नहीं है। रूम में पंखा चल रहा है कोई उसकी हवा लेने वाला नहीं है। जैसे ये सब चल रहे हैं, वैसे ही दीया जल रहा है। हमने दीये के प्रकाश का उपयोग किया क्या? प्रयोग किया क्या? दीये में कोई तेल जलता है। हमारे जीवन में आयु का तेल जल रहा है। उसका सम्यक् उपयोग हो रहा है या नहीं? हम जीवन का उपयोग नहीं कर सकें तो जीवन मिला या नहीं मिला क्या फर्क पड़ा। हम क्यों चाहें कि आने वाला जीवन मोक्ष मिले। मोक्ष मांगने की आवश्यकता क्यों? एक व्यंग्य में तो यह बताया गया है कि मनुष्य जीवन नहीं मिले तो फायदा है।

गधा तो गधा ही होता है। एक बार एक गधा परमिट लेकर जा रहा था। वह एक कागज लेकर जा रहा था। रास्ते में उसे लोमड़ी मिल गई। लोमड़ी ने पूछा कि अंकल आज किधर रवानगी हो रही है? गधा कहता है कि मैं तहसील के ऑफिस जा रहा हूँ। लोमड़ी ने पूछा कि किसलिए जा रहे हो तो गधे ने उत्तर दिया कि बुढ़ापा आ रहा है। कहीं न कहीं तबादला होना है। मैं चाहता हूँ कि मेरा तबादला सही स्थान पर हो जाए। राजस्थान में सोलर बिजली का जो एरिया होता है वहाँ जब किसी की जॉब लगती है तो पहले सूरतगढ़ दो साल सर्विस करना अनिवार्य होता है। पहले तो दो साल अनिवार्य होता था, अब मेरे को पता नहीं है कि दो साल अनिवार्य है या नहीं। पहले मैंने सुना कि दो साल निकालना पड़ता है। वहाँ भयंकर गरमी होती है। सरकार उनके लिए दो साल का सेंटर फिक्स करती थी, सरकार यह दो साल सबके

लिए अनिवार्य करती थी। सरकार कहती है तो आँख बंद करके दो साल निकाल देते हैं कि चलो दो साल ही तो है आँख बंद करके निकाल देंगे। वैसे ही गर्दभराज अपनी बात के लिए जाता है। वहाँ जाकर गधा बोलता है कि मेरा तबादला होना है तो मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि मेरा तबादला जहाँ कहीं भी कर देना पर एक निवेदन है कि मनुष्य गति में मुझे मत भेजना। अन्यत्र कहीं भी मेरा तबादला कर दो, बिल्ली, कुत्ता, लोमड़ी, चूहा, मक्खी-मच्छर इत्यादि कुछ भी बना दो किंतु मनुष्य गति में नहीं भेजना।

कहाँ नहीं भेजना?

मनुष्य गति में नहीं भेजना। हमने ऐसा सुना है कि देवलोक के देव भी तरसते हैं कि मुझे मनुष्य गति का मौका मिले। किसी जमाने में, किसी युग में तरसते रहे होंगे लेकिन अब तो जाने से पहले ही दरवाजा बंद हो जाता है। कहा जाता है 'यू कैन गो।' जाओ। हमारे यहाँ आपके लिए कोई जगह नहीं है। अब इनसान वह इनसान कहाँ!

गधे ने कहा कि मुझे मनुष्य जीवन मत देना क्योंकि मनुष्य बहुत खतरनाक है।

आप बताओ मनुष्य समझदार है या खतरनाक? बताओ अब बोलते क्यों नहीं? बोलना मत, क्योंकि अपनी इज्जत अपने हाथ में है। बोलेंगे तो इज्जत चली जाएगी, लेकिन आपकी इज्जत है कहाँ! आपकी इज्जत हो तब तो बिगड़ेगी। नहीं है तो क्या बिगड़ना। सबसे खतनाक मनुष्य ही है। हकीकत में जितना नुकसान आप लोगों ने किया, उतना नुकसान इस सृष्टि पर कहीं किसी ने नहीं किया होगा। आप कहोगे कि मनुष्य ने विकास किया, किंतु मनुष्य ने विकास किया या विनाश किया! आपके विकास में कितने प्राणियों की घात हुई? कितने प्राणियों का हनन किया गया? लोगों की सुख-शांति को छीन लिया। स्वयं की नींद हराम हो रही है फिर भी आप इसको विकास कहोगे!

कितने लोग टेंशन में है और कितने लोग टेंशन फ्री हैं? हजारों, लाखों में दो-चार लोग मुश्किल से टेंशन फ्री मिल पाएंगे। हर सौ के पीछे टेंशनमुक्त मिलना मुश्किल है, इसलिए सबसे खतरनाक इनसान ही है।

जब मेरा पहला चातुर्मास जयपुर में हुआ गुरुदेव के बाद में तो एक

व्यक्ति ने कहा कि दिल्ली में रहने वाले प्रति दस में से एक प्राणी सिंथेटिक दूध पीने वाले हैं। सिंथेटिक दूध का मतलब नकली दूध। यूरिया का दूध। प्राप्त जानकारी के अनुसार उस दूध में 90 प्रतिशत कुछ और होता है और 10 प्रतिशत दूध होता है। यह 20 साल पहले की बात है जब उसने मुझे जयपुर में बताई। 200 साल पहले सौ में से एक आदमी नकली दूध पीने वाला होता भी था या नहीं कहना कठिन है। आचार्य भगवन् जवाहरलाल जी म.सा. के प्रवचनों की पुस्तकें जवाहर किरणावली के रूप में हैं। उसमें सातवीं किरण में बात आई है कि–

**''कलकत्ता मत जाना यारों, कलकत्ता मत जाना**
**जहर खाय मर जाना यारों, कलकत्ता मत जाना''**

शंकराचार्य के युग की बात कही जाती रही है कि हाथी के पाँव के नीचे आकर मर जाना, किंतु जैन मंदिर में नहीं जाना। जैसे शंकराचार्य के युग में कहा जा रहा था कि जैन मंदिर में नहीं जाना, वैसे ही आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. का एक उद्घोष था कि–

**कलकत्ता मत जाना यारों, कलकत्ता मत जाना,**
**जहर खाय मर जाना यारों कलकत्ता मत जाना।**
**कल का आटा नल का पानी, चर्बी का घी खाना**
**यारों कलकत्ता मत जाना।।**

किसलिए नहीं जाना कलकत्ता? कल का आटा, नल का पानी, चरबी का घी खाना पड़ेगा इसलिए कलकत्ता नहीं जाना। आज ब्यावर में कितने ऐसे घर हैं जिनके घर की चक्की का आटा पीसा हुआ है? मशीन से नहीं, घटी से कितनों के घर में आटा पीसा जाता है। बिना मशीन से चलने वाली घटी होती है और मशीन से चलने वाली चक्की होती है। कितने घरों में चक्की का आटा नहीं चल रहा है ब्यावर में? हमारे ईश्वरचंद जी म. सा. ने प्रतिज्ञा ले रखी थी कि वे चक्की के आटे की रोटी नहीं खाएंगे। घटी के आटे की रोटी नहीं मिलती तो भात, रंधीण, दलिया अथवा भुगड़ा पीस के खा लेते पर चक्की के आटे की रोटी नहीं खाते थे। कलकत्ता में कुएं का पानी नहीं मिलेगा इसलिए नल का पानी पीना पड़ेगा। यहाँ पर नल का पानी पी रहे हैं या कुएं का पानी आ रहा है? इसके साथ ही आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा.

ने कहा कि कलकत्ता जाओगे तो वहाँ चरबी का घी खाना पड़ेगा इसलिए वहाँ मत जाना।

आप कौन सा घी खा रहे हो पता नहीं। पर आप सब कहते हैं कि बावजी, एकदम शुद्ध घी खाते हैं। 700 रुपये में एक किलो मिलता है। सरस डेयरी का घी खाते हैं। डेयरी भले ही सरस हो या नीरस, कोई फर्क नहीं पड़ता है। घी तो 500 रुपये में भी मिलता है और 1500 रुपये में भी मिलता है। 2500 में भी घी आता है।

(सभा में उपस्थित लोगों की तरफ से आवाज आती है– बावजी, 400 रुपये में असली घी मिलता है। उसको खाते हैं। एकदम शुद्ध, प्योर डेयरी का मिलता है फिर 2500 रुपये क्यों देंगे)

400 रुपये में शुद्ध घी मिलता है! अच्छा बताओ कि दूध का भाव क्या है?

(सभा में उपस्थित लोगों की तरफ से आवाज आती है– बावजी 60 रुपये लीटर मिलता है)

60 रुपये लीटर वाले दूध में घी कितना निकलता है? यदि गाय का दूध है तो उसमें सौ ग्राम घी निकलने वाला नहीं है। यदि भैंस का दूध है तो उसमें से सौ–डेढ़ सौ ग्राम घी निकल सकता है। यदि आपको 60 रुपये लीटर वाले दूध में से एक किलो घी निकालना हो तो कितना पैसा लगेगा?

(लोग बताते हैं– छह सौ रुपया लगेगा)

आप कह रहे हो कि छह सौ रुपये लगेंगे। वैसे वे दही जमाते हैं फिर बिलोना करते हैं। ये सारी मेहनत लगेगी दूध से घी बनाने में। मक्खन को गर्म करना पड़ेगा, तो गैस भी खर्च होगी। ये सारे खर्चे कौन भरेगा? उसको घी बनाने में इतना समय लगा। फिर आप कह रहे रहे हैं कि बावजी चार सौ रुपये में शुद्ध घी मिल रहा है। यदि गाय के एक लीटर दूध में से घी निकालना चाहें तो साठ या पैंसठ ग्राम ही घी निकलेगा। इससे ज्यादा घी नहीं निकलेगा। मैंने निकाला तो नहीं है, पर किसी से सुना हुआ है कि एक लीटर दूध से साठ या पैंसठ ग्राम घी निकलता है। हम गणित के आधार पर कह रहे हैं कि गाय के एक लीटर दूध में साठ या पैंसठ ग्राम के हिसाब से घी का भाव क्या बनेगा? यदि गाय का एक लीटर दूध साठ रुपये में मिलता है तो घी का भाव क्या होगा?

(लोग बताते हैं- लगभग एक हजार रुपये होंगे बावजी)

और आप कह रहे हो कि चार सौ रुपये में शुद्ध घी मिल रहा है! घी के डिब्बे या पाउच पर गाय का शुद्ध घी लिखा हुआ है इसलिए हम मान रहे हैं, किंतु हमने गणित नहीं लगाया। सरस डेयरी वाला इतनी सारी मेहनत करके घी इतना सस्ता क्यों बेचेगा? वो साठ रुपये प्रति लीटर दूध बेचता है तो गणित के हिसाब से लगभग एक हजार रुपये प्रति लीटर घी बनता है। उस पर भी वह पहले दूध को जमायेगा, फिर बिलोना करेगा, फिर गैस पर गर्म करेगा। इतनी सारी प्रक्रिया करके वह चार सौ रुपये में घी क्यों बेचेगा? चार सौ रुपयों में बेचने के लिए वह घी बनाने की मेहनत क्यों उठाएगा? ऐसा व्यापार कौन करेगा जिसमें पैसा कम मिले। हमारे मन में संतोष है कि हम असली घी खाते हैं तो अच्छी बात है, किंतु पचीस सौ रुपये प्रति किलो गाय का शुद्ध घी मिलता है। लोग उसको ले जाते हैं और खाते हैं। जो भी हो अपनी-अपनी मर्जी है। अपनी-अपनी धारणा है।

मेरा कहने का आशय यह है कि आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. ने कहा था कि कलकत्ता मत जाना यारों कलकत्ता मत जाना चाहे जहर खाकर मर जाना। इसलिए नहीं जाना, क्योंकि वहाँ कल का आटा, नल का पानी और चरबी का घी खाना पड़ेगा। एक बार बिना घी खाये तो रहा जा सकता है पर भोजन और पानी के बिना कैसे रह सकते हैं?

पॉवर से चलने वाली चक्की के आटे में इतनी गरमी होती है कि सारे तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। जो कुछ भी हो हमें तो सुविधा चाहिए। सारे तत्त्व नष्ट हो भी रहे हैं तो क्या हमको सुविधा मिलनी चाहिए। सुविधा तो होटल में भी मिलती है। केवल ऑर्डर दिया और खाना घर तक पहुँचा देगा। ऑनलाइन मँगाना चाहते हो तो एक ही बटन में खाना आपके घर पर आ जाएगा। घर में कुछ करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। जितना आप मँगाना चाहते हो उतना मिल जाएगा। तत्काल आपके घर तक पहुँच जाएगा। आपको खाली पैसा चुकाना होगा।

आप वह सुविधा क्यों नहीं चाहते? होटल का खाना होटल सारु होगा। घर में बने खाने को उससे नहीं तौला जा सकता। कई घरों के सदस्य सप्ताह में, पन्द्रह दिन में या महीने में एक बार होटल में जाते हैं। कुछ

अभिभावक ऐसे भी होते हैं जिनकी होटलों में जाने की इच्छा खुद से भी होती है और कहते हैं कि टाबर मानते नहीं हैं। वो थारो केणो नी माने तो कांई काम रा। माताएं अपने बच्चों को अच्छे संस्कार दे सकती हैं। उनको अच्छा गढ़ सकती हैं। माताएं अपनी संतान को जैसा चाहें वैसा बना सकती हैं। जैसे मदालसा माता ने अपनी संतानों को गढ़ा था वैसे ही आप भी गढ़ सकती हैं। माताओं के स्वयं के मुँह में लारे पड़े तो टाबर बेचारा कांई करे! यह तो बड़े-बड़े शहरों में होता है। यहाँ पर शायद होटलें कम हैं। हम लोग विहार कर शहरों-गाँवों में जाते हैं, तो वहाँ सड़कों पर होटलें बहुत होती हैं। लगता है अब होटलें ही घर न बन जाय। बड़े शहरों में तो इतने होटल हो गये हैं कि सड़क के दोनों तरफ होटल ही होटल दिखते हैं। कई सोचते हैं कि घर पर खाना खाकर क्या करेंगे। होटल में कितनी सुविधा है। वहाँ जाते ही स्वागत करते हैं। कहते हैं आओ सा, पधारो सा, बैठो। तत्काल पानी की गिलास लो सा। पानी पीओ। तुरंत आपकी मनचाही चाय-कॉफी लाकर देगा। एक आदेश करते ही सब चीज आपके लिए हाजिर है। इतनी सुविधा घर पर कहाँ मिलेगी। घर पर तो बार-बार बोलना पड़े कि यह लाओ, वो लाओ। कभी-कभी तो घर पर चाय भी स्वयं को बनानी पड़ जाती है।

क्या करें, श्रीमती जी का ऑर्डर है। बात तो माननी ही पड़ेगी। चाय बनानी आती है या नहीं पर पीना है तो बनानी ही पड़ेगी। लेकिन होटल में एक आदेश किया और चाय हाजिर हो जाती है। होटल में इतनी सुविधाएं हैं कि आने वाले जमाने में शायद घर में रसोई (खाना) बनेगी ही नहीं। इस तरह होने पर घर में म.सा. गोचरी के लिए जाएंगे तो गोचरी कहाँ से लाएंगे। वह खाली हाथ वापस लौटेंगे। आने वाले साधु को सोचना पड़ेगा कि अब क्या करना है। पता नहीं होटलों में क्या-क्या पकता है? कौन पकाता है?

साथियो! मनुष्य जन्म मिला है भूलना मत। समझने की बात है। हमारे कदम छठे आरे की ओर बड़े रफ्तार से जा रहे हैं। रफ्तार इतनी है कि जुलाई महीना तो निकल गया। अगस्त महीने के पाँच दिन बाकी बचे हैं।

**घटते-घटते घट जाएगी तेरी रे उमरिया।**

हमारा जीवन घट रहा है कि बढ़ रहा है?

(लोग कहते हैं- घट रहा है बावजी)

और हम नजदीक किसके हो रहे हैं? हम मौत के नजदीक हो रहे हैं। छठे आरे के नजदीक हो रहे हैं। हमारी रफ्तार जितनी तेज होगी हम उतनी ही जल्दी पहुँचेंगे।

छठे आरे में क्या होगा?

भगवती सूत्र में चर्चा आई है। गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा कि भगवन्! छठे आरे का काल, भाव और उसका वातावरण कैसा रहेगा? कैसे लोग होंगे? क्या घटनाएं होंगी और लोग मरकर कहाँ जाएंगे?

यह प्रश्न गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा तो भगवान ने कहा कि जिस समय छठा आरा आएगा उसके पहले भयंकर आँधियाँ चलेंगी। तूफान आएंगे। इतनी आँधियाँ चलेंगी कि चारों तरफ अँधेरा छा जायेगा। उस अँधेरे में कुछ दिखेगा नहीं। जैसे बीकानेर की तरफ जब आँधी आती है तो कुछ भी नहीं दिखता। हवा के साथ धूल ऊपर चली जाती है। वहाँ चारों तरफ अँधेरा छा जाता है। ऐसा अँधेरा छा जाता है कि कभी-कभी हाथ से हाथ दिखना मुश्किल हो जाता है। उलटे मुँह घर में जाना पड़ता है। उससे भी भयंकर आँधी चलेगी। छठे आरे के पूर्व चारों तरफ अँधेरा छा जायेगा और बादल एकदम तवे की तरह काले हो जाएंगे। हवा के साथ धूल उड़ती हुई नजर आएगी। जोरदार पानी बरसेगा। मटमैला पानी बरसेगा। खारा पानी बरसेगा जो प्यास बुझाने के लायक नहीं रहेगा। पानी इतनी तेजी से बरसेगा कि मनुष्य के लिए उसकी चोट सहन करनी मुश्किल हो जाएगी। त्राहि माम्-त्राहि माम् करते हुए मनुष्य इधर से उधर भागेंगे। घर-मकान गिर जाएंगे। सारी बिल्डिंगें भी ध्वस्त हो जाएंगी। बड़ी-बड़ी बिल्डिगें भी हमारे काम नहीं आएंगी। ये सारी सुविधा छूट जाने वाली है। यह जिंदगी है तब तक मौज मजा है। आज जहाँ पर इतनी वनस्पति है, पेड़-पौधे हैं, छठे आरे में ऐसा नहीं रहेगा। प्राय: सपाट हो जाएगा। मेवाड़ के छापरड़ा (बंजर भूमि) में कोई रोएगा तो आवाज सुनने वाला भी कोई नहीं होगा। ऐसी हालत हो जाएगी कि न पहाड़ रहेगा, न नदियाँ रहेंगी। नदी गंदे पानी के नाले के समान हो जाएगी। कहते हैं कि रथ की धुरी के छेद जितना नदी का आकार हो जाएगा। उन नदियों में पानी कम होगा और कीचड़ ज्यादा। मछलियों (जलचरों) की भरमार होगी। सारे पानी में मछलियाँ ही होंगी। मोटे-मोटे पहाड़ भी नष्ट हो जाएंगे। समतल मैदान हो जाएंगे। एकदम सपाट हो

जाएंगे। गरमी इतनी भयंकर पड़ेगी कि सूर्य निकलने के समय बाहर निकलना और रहना मुश्किल हो जाएगा। ठंड इतनी होगी कि उसे सहा नहीं जा सकेगा। 20 वर्ष की उम्र में पोता-पोती की लाइन लग जाएगी।

छठे आरे में खाने को क्या गुलाबजामुन, रसमलाई, घेवर और रबड़ी मिलेंगे? मच्छ-कच्छ, जलचर जीव नदी में होंगे। सूर्योदय से कुछ समय पहले बाहर निकालकर उनको जमीन में गाड़ देंगे। उनके शरीरों से शाम को हनीमून पार्टी होगी। शाम को उन्हें बाहर निकालेंगे और खा लेंगे। शाम को जिन मच्छ-कच्छ को जमीन में गाड़ेंगे, रात की ठंड से सुबह तक वे पक जाएंगे। उनको सुबह खा लेंगे। इस प्रकार दो तरह का खाना होगा। एक तो सूर्य ताप से और दूसरा रात की ठंड से पका हुआ। सूर्य की गरमी से पका हुआ भोजन होगा। जिसको न गैस की जरूरत पड़ेगी न ईंधन की। अपने आप सारे काम हो जाएंगे। चाहे आप सुबह मेहमानगीरी करें या शाम दावत करें, खाना वही पड़ेगा। छठे आरे में जन्म लेने वाले अधिकांश लोग मरकर नरक और तिर्यंच में जाएंगे।

कहाँ जाएंगे?

नरक और तिर्यंच में जायेंगे। आप लोग सोच लेना कि हमको कहाँ जाना है? निर्णय कर लेना। यदि आज ही टिकट लेना है तो ले लेना। आज ही आपको टिकट मिल जाएगा। सोच लेना कि कहाँ का टिकट लेना है? आप लोगों को छठे आरे का टिकट लेना है या मनुष्य गति का टिकट लेना है? आप मेरे सामने हो तो कह दोगे कि हमको तो आपकी टिकट लेनी है। यह चापलूसी करने की बात नहीं है, मैंने आपसे कल पूछा था कि किसको समाधि पानी है तो एक भी बंदा खड़ा नहीं हुआ और कहने में कहते हैं कि हमें मोक्ष चाहिए। जब मोक्ष के लिए टिकट लेने की बात आती है तो एक भी तैयार नहीं हैं।

आनंद ने अपने गुरु बुद्ध से कहा कि भंते! आपके रहते हुए दुनिया में लोग इतने दुखी हैं, वे कब सुखी होंगे? भगवन् आप कोई एक उपाय बतायें जिससे लोग सुखी हो जाएं। आनंद के गुरुदेव बुद्ध ने कहा कि तुम उन सभी से जानकारी लाओ कि वे लोग चाहते क्या हैं? वे जो चाहते हैं उसकी एक लिस्ट बना लो।

महात्मा बुद्ध का आदेश था तो आनंद गया। उसने एक-एक घर में जाकर पूछा कि आपको क्या जरूरत है? आपको भी पूछने आ जाए कि आप

लोगों को क्या चाहिए तो आपका उत्तर क्या होगा? कौन कहेगा हमें तेला करना है? कौन कहेगा हमें अठाई करनी है?

आनंद, नगर में घूमकर आ गया। सबकी अपनी-अपनी चाह थी। अपनी-अपनी पसंद थी कि हमको यह चाहिए, वह चाहिए। आनंद सोचता है कि मैंने इतनी लिस्ट बनाई किंतु एक भी आदमी ऐसा नहीं मिला जिसे शांति चाहिए। सबको भौतिक सुख-सुविधाओं की पड़ी है। आनंद ने देखा कि एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो कहे कि मुझे समाधि चाहिए। जो कहे कि मुझे शांति चाहिए। मुझे सुख चाहिए। मोक्ष चाहिए। तृप्ति चाहिए।

अब आप सोच लो। हम कहते जरूर हैं कि हमको मोक्ष चाहिए, पर ध्यान रखना सड़क छाप को कभी भी मोक्ष नहीं मिलता। संयम छाप वाले को मोक्ष मिलेगा। सड़क छाप या इधर-उधर भटकने वालों को मुक्ति में जगह नहीं मिलती है। पहले आपको तैयारी करनी पड़ेगी। आपको प्रवेश द्वार से घुसते ही देखा जाएगा। यदि आपकी तैयारी अच्छी होगी, पूरी होगी तो आपको जाने देंगे अन्यथा आपको वापस रवाना कर दिया जाएगा। अंदर घुसने नहीं देंगे। यदि थोड़ा सा भी कषाय होगा तो अंदर घुसने नहीं दिया जाएगा। 'यू कैन गो' कह देंगे। कहेंगे कि आपकी यहाँ पर कोई जरूरत नहीं है। आप हमारे किसी काम के नहीं हो। वहीं से वापस लौटना पड़ेगा। इसलिए मोक्ष की बात करने वालों से पूछना है कितने लोग हैं जिन्हें मोह बढ़ाने की इच्छा नहीं हैं? यदि मोह नहीं छूट रहा है तो उसे मोक्ष कैसे मिलेगा।

साधुओं को ममत्व से हटने के लिए भगवान ने बताया कि साधु को अपने सेवार्थ या अपने स्वार्थ के लिए किसी को दीक्षित नहीं करना है। वह यह नहीं सोचे कि मेरा ग्रुप बढ़ जाएगा। वह मेरी सेवा करेगा। वह मेरा सहयोगी बन जाएगा। बुढ़ापे में मेरा सहारा बनेगा। ऐसी भावना से गुरु किसी को दीक्षा नहीं देता है। दीक्षा के पीछे उसका मकसद यह है कि वह सही रास्ते पर चले। वह अपना कल्याण कर सके। गुरु अपने सहयोग या सेवा के लिए किसी को दीक्षा नहीं दे। उसका कल्याण हो और वह समाधि एवं शांति को प्राप्त करे। इस उद्देश्य से दीक्षा देना मना नहीं है।

**जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर जय जय जयकार**

साध्वी सुव्रता ने कहा राजन, प्रसंग ऐसा था कि जब मैंने गर्भ धारण

किया तो बहुत सावधानी रखी। तीसरे महीने मुझे दोहद पैदा हुआ। मैं उस बात को प्रकट करने में शर्मिंदगी महसूस कर रही थी पर डर रही थी कहीं उसका प्रभाव मेरे शरीर पर व गर्भ में पल रहे बच्चे पर न पड़े। पति युगबाहु ने पूछा कि प्रिय क्या बात है तो मैंने अपने मन की बात, दोहद की बात उनको सुनाई। मैंने बताया कि स्वामी मेरी इच्छा हो रही है कि मैं साधुओं के दर्शन करूं, वंदन करूँ, नमस्कार करूँ। उनसे ज्ञान-चर्चा करूँ। आगम पाठ सुनकर अपने हृदय में धारण करूँ और अभय दान, अनुकम्पा दान दूँ। साधुओं की सेवा-शुश्रूषा करते हुए उनके आशीर्वाद को प्राप्त करूँ।

दोहद का अर्थ क्या होता है?

दोहद का अर्थ होता है- दो हृदय की बात। एक माँ का हृदय और दूसरा उसके गर्भ में पल रही संतान का हृदय। माँ और उसके संतान की विचारधारा एक रूप बनती है, उसे दोहद कहते हैं।

कई गर्भवती माताओं को कोयला, राखोड़ा या मेट खाने का दोहद पैदा होता है। ऐसा माना जाता है कि दोहद से ज्ञात हो जाता है कि उसकी संतान का लेवल कैसा होगा। दोहद से उसके लेवल की जानकारी मिल जाती है। जैसा दोहद होगा वैसी संतान प्राप्त होगी। उसके दोहद की इच्छा थी कि साधुओं से चर्चा करना। चर्चा सुनकर हृदय में धारण करना और सुपात्र दान देना। वृद्धजनों की सेवा करना। इसका मतलब बहुत सारे सद्गुण उसकी संतान में होंगे।

युगबाहु ने मयणरया के दोहद को पूर्ण किया। उसने उसकी इच्छा पूरी करवाई। उसको साधुओं के दर्शन करवाए। वंदन-नमस्कार कराया। सुपात्र दान का योग बनाया। उसको सेवा शुश्रूषा का आशीर्वाद मिला। ये सारे प्रसंग बने। महारानी का हृदय प्रफुल्लित हुआ। जब नौ महीने गर्भ के पूरे हुए तो चंद्रमा के समान उज्ज्वल छवि और गोल चेहरे वाले पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम रखा चन्द्रयश।

जीवन में कई घटनाएं घटती हैं। कई बार कुछ दुर्घटना भी हो जाती है। जो घटना सामान्य होती है उसका नाम घटना है। जिसमें कुछ बुरी घटना होती है उसको कहते हैं दुर्घटना। यदि आप यात्रा कर रहे हो और गाड़ी अचानक रुक गई, कोई टायर पंचर हो जाता है या गाड़ी खराब हो गई, बिगड़

गई तो यह घटना है। दुर्घटना यह है कि गाड़ी पलटी खाई और हम बाल-बाल बचे। गाड़ी को देखकर नहीं लगता कि उसमें बैठी एक भी सवारी बची होगी किंतु सभी लोग बच गये। एक का भी बाल बांका नहीं हुआ। सारे बच गये। लोग कहते हैं कि धर्म और गुरु कृपा का फल है।

यदि वस्तुत: धर्म व गुरु की कृपा से बच गए तो अब अधर्म में क्यों जीना? अब जिंदगी अधर्म में क्यों लगाना? कहते हैं कि धर्म की कृपा से बच गये, फलाना हो गया, वह हो गया, किंतु धर्म पर श्रद्धा कहाँ होती है?

अनाथी मुनि की धर्म पर श्रद्धा थी। उन्होंने जैसे ही संकल्प लिया बीमारी ठीक हो गई। उन्होंने कहा कि अब मुझे इस संसार में नहीं रहना है। धर्म से मेरी जिंदगी सँवर गई तो अब मुझे संसार में नहीं रहना। उन्होंने कहा कि मैं यह संसार त्याग रहा हूं।

अगर आपको बोलेंगे की संसार में क्या है, धर्म में जीना सीखो तो आप कहोगे कि वैराग नहीं आवे तो क्या करें। किस-किस को जरूरत है वैराग की? यहाँ पर तत्काल ट्रीटमेंट होता है। कोई वैक्सीन लगाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। कौन तैयार है? किस-किस को वैराग की आवश्यकता है? सोचे और मन से बोले? जिसको मोक्ष चाहिए वह ये सारे डिवाइडर पार करके आ जाएगा। राग का शोधन कर लो तो अनुराग हो जाएगा और आगे बढ़ेंगे तो वैराग हो जाएगा और उसके भी आगे बढ़ेंगे तो वीतराग हो जाएंगे।

राग संसार में अटकाता है, अनुराग धर्म की ओर आगे बढ़ाता है। धम्मानुराग, पेमामुरागस्ता अर्थात् धर्म के प्रति अनुराग, धर्म का प्रेम अस्थि के मध्य रहने वाली मज्जा तक पहुँच जाना चाहिए। धर्म का अनुराग होता क्या? शरीर के खून प्रवाह में व शरीर के रोम-रोम से यही आवाज निकले 'धम्मो मंगलमुक्कट्ठं...' इसके अलावा कुछ निकले ही नहीं।

मरने के समय कौन-सी आवाज निकलनी चाहिए? आपकी आवाज कैसी निकलती है? ऐसी आवाज निकलती है कि ओइ रे... मरूँ रे... बचाओ रे... अब तो लाभ है कि पहले ही बेहोश हो जाते हैं। आवाज कहाँ से आए। अब तो बेहोशी में मरते हैं। यदि सच्चे मन से आवाज आती है, मरते हुए अरिहंत भगवान याद आ जाते हैं, धर्म याद आ जाता है तो हमारा काम बन जाता है। जैसे यहाँ भावना सार्थक हो जाती है वैसे दोहद भी भावना रूप है।

जिस प्रकार का दोहद होता है, उसी के अनुसार संतान होती है। कोणिक को माता को दोहद के अनुसार वह संतान मिली और मदनरेखा ने जैसा दोहद देखा वैसी उसको संतान की प्राप्ति हुई। उसी बीच एक दुर्घटना घटी। सुव्रत आर्या उस दुर्घटना के विषय में कहने जा रही है नमिराज ऋषि से।

**जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर...**

आगे क्या दुर्घटना घटी यह समय के साथ सुनने में आ सकता है। श्रद्धा से हमें यह विचार करना है कि आने वाले पाँच साल में आध्यात्मिक विकास किस प्रकार से करना है। किसी को याद नहीं रहता है तो लिख लो। आने वाले पाँच सालों का प्लान बनाना। अपनी जिंदगी का प्लान बनाना और हर तीन महीने पर अपनी परीक्षा लेना। सोचना कि हर तीन महीने के अनुसार मेरा काम हो रहा है या नहीं! मैंने जिस प्लान को बनाया है वह क्रियान्वित हो रहा है या नहीं?

पहले तीन महीने में जमीन खरीदनी है, रजिस्ट्री कराना है और नींव भरना है। दूसरे तीन महीने में फैक्ट्री खड़ी करनी है। दुकानें बनानी हैं। जैसे ये प्लान बनाते हो वैसे ही तीन महीनों का प्लान बनाना है कि हमें आध्यात्मिक क्षेत्र में क्या करना है। मुझे राग कितना कम करना है। क्रोध कितना कम करना है। द्वेष कितना कम करना है।

तीन महीनों का फॉर्मूला आपके पास बनना चाहिए। मनुष्य जन्म को सार्थक व सफल बनाना चाहते हो तो आज से अपना प्लान बना लो। आज घर जाकर शांति से प्लान बनाना। प्लान चाहे पाँच दिन में बने या सात दिन में पर बनना ऐसा चाहिए कि उसमें कुछ भी पीछे ना रह जाए। जो प्लानिंग बनाने में जितना समय लेता है, उसकी प्लानिंग उतनी ही सार्थक हो पाती है, टिक पाती है, चाहे एक सप्ताह लग जाए तो लगने देना। पर प्लानिंग ठोस होनी चाहिए। प्लानिंग सफल होने वाली होनी चाहिए। मैंने सुना है आरएसएस के पद संचलन में जितना मिनट और सेकेंड दिया जाता है वह उतने ही समय में वहाँ पहुँचता है। आपने आरएसएस के कार्यों में कभी भाग लिया होगा। मैं देखना चाहूँगा कि आप प्लानिंग कैसे करते हो।

एक रजिस्टर लेना और उसमें पाँच साल की प्लानिंग करना। उस रजिस्टर को मुझे दिखाना ताकि मुझे भी ज्ञात हो कि आपका प्लान क्या है।

आपने प्लानिंग सही तरीके से नहीं की तो मेरे दिमाग में एक प्लान आया कि कल से नौ बजे दरवाजा बंद। वीआईपी होना नहीं।

मेरा इस सप्ताह का प्लान बना है कि मैं कल से नौ बजे आ जाऊँ। नौ बजकर पाँच मिनट तक मांगलिक हो जाए। उसके बाद दरवाजा बंद हो जाए। जिसको आना है वह नौ बजे से पहले आ जाएं नहीं तो अगले दिन आ जाएं। व्याख्यान के बाद मांगलिक नहीं होगी। एक बार ही होगी नौ बज कर पाँच मिनट पर। अब मैं देखता हूँ कि आप ब्यावर वाले समय के कितने पक्के हो। आप समय को कैसे फॉलो करते हो। समय को साधने का प्रयत्न करें, जो समय को साधेगा, वह समाधि प्राप्त कर सकेगा। इतना ही कहते हुए विराम।

25 अगस्त, 2021

# 15

# साधना का सौरभ

**सुमति चरण कज आतम अर्पणा...**

सुमतिनाथ भगवान इस अवसर्पिणी काल के पाँचवें तीर्थंकर हुए। वे जब माता के गर्भ में थे तो एक ऐसा वाद सामने आया जिसका निपटारा उनकी माता के द्वारा हुआ। उस वाद के समाधान के आधार पर यह विचार आया कि संतान गर्भ में थी तो महारानी की मति सुमति हो गई। सुमति के कारण वह गंभीर मसले का निर्णय करने में समर्थ हो पाई। मसला था दो महिलाओं के बीच एक संतान का। दो महिलाएं एक संतान को लेकर उपस्थित हुईं। दोनों कह रही हैं कि यह संतान मेरी है।

इसका निर्णय कैसे हो कि संतान किसकी है?

ऐसा मामला सामने आने पर सम्राट भी चिंतित हो गए कि इसका निर्णय कैसे दें कि संतान किसकी हो सकती है।

अब तो डीएनए जाँच होती है। पहले ऐसा कुछ नहीं होता था। सम्राट सोच रहे हैं कि कैसे इसका निर्णय हो, इस समस्या का निर्णय कैसे करूँ। महारानी ने इस समस्या को जानकर कहा कि नाथ, आप निश्चिंत होकर भोजन करें, मैं इसका निपटारा करती हूँ।

महारानी ने न्याय सिंहासन पर बैठकर निर्णय दिया कि संतान के दो टुकड़े किए जाएं। दो टुकड़े करके एक-एक टुकड़ा दोनों महिलाओं को दे दिया जाए। महारानी ने जैसे ही ये बात कही तो उन दोनों महिलाओं में से एक ने कहा कि नहीं-नहीं! ऐसा नहीं हो सकता। ये संतान मेरी सौतन के पास ही रहने दो। सौतन के पास रहेगी तो भी कोई बात नहीं। कम-से-कम मैं अपनी संतान का मुख तो देख सकूंगी। उस महिला ने कहा कि मैं उसके दो टुकड़े

नहीं होने दूंगी। उधर दूसरी महिला के मन में कोई क्रिया-प्रतिक्रिया नहीं हो रही थी। बल्कि उसके मन में खुशी हो रही थी कि 'न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।

यह सुनकर महारानी ने निर्णय सुनाया कि संतान उस महिला को सौंप दी जाये जिसने यह कहा कि संतान मेरी सौतन के पास ही रहने दो। महारानी जानती थी कि जिस माता ने प्रसव-पीड़ा सहन की, उसका ही ममत्व भाव ऐसा हो सकता है। जिसने प्रसव पीड़ा नहीं सही, वह ममत्व भाव क्या जाने! किंतु मूल माता कभी ऐसा नहीं कर सकती कि उसकी संतान के दो फाड़ हो जाय।

यह एक घटना थी। यह एक प्रसंग था। यह एक बड़ा विवाद था, जिसका समाधान सुमतिनाथ के माता के द्वारा उस समय हुआ, जब सुमतिनाथ गर्भ में थे। उस प्रसंग के आधार पर उनका नाम सुमतिनाथ रखा गया। इस पर हम अलग-अलग तरीके से विचार कर सकते हैं।

**'सुमति चरण कज आतम अर्पणा...'**

हम कहते हैं कि सुमतिनाथ के चरण में, सुमतिनाथ भगवान के चरण कमल में अपनी आत्मा को अर्पित करो। अपना ध्यान, अपना अर्पण सुमति के अधीन कर दो। जब हमारी मति, सुमति होगी तो हमारे जीवन के निर्णय सही रूप में होंगे। जब तक दुर्मति छाई रहती है, तब तक निर्णय सही नहीं हो पाते। आज सबसे बड़ी दुविधा यही है कि व्यक्ति अपने जीवन का सही निर्णय नहीं कर पा रहे हैं।

व्यक्ति ने बहुत धन कमाया होगा, बहुत नाम कमाया होगा, बहुत सारे पदों पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराई होगी, उसके बावजूद उसको तृप्ति नहीं मिली। उसको संतुष्टि नहीं मिली। उसके जीवन में आज भी तनाव है। उसके जीवन में द्वंद्व है। आज भी उसका मन उसे खाली-खाली लग रहा है। वह अशांतिमय जीवन जी रहा है।

जो जीवन अशांति में जीया जा रहा है, वह जीवन भी कैसा जीवन?

हम कहते हैं कि मनुष्य जीवन राजा जीवन है। मनुष्य जीवन को उत्तम जीवन कहते हैं। कई प्राणियों को शरीर मिला है। गाय, पशु आदि को भी कान, मुँह, आँख मिले हैं। देवताओं को भी दिव्य शरीर मिला। उन्हें भी

पाँचों इंद्रियां मिलीं। कुछ बातों में देवता मनुष्य से विशिष्ट हो सकते हैं। फिर भी देव भव को दुर्लभ नहीं बताया गया। मनुष्य भव को ही दुर्लभ बताया गया है।

**''दुल्लहे खलु माणुसे भवे''**

अपन विचार करें कि दुर्लभता का अर्थ क्या है?

दुर्लभता का अर्थ इस मायने में है कि मनुष्य जीवन में, मनुष्यपन में यह संभावना रही हुई है कि वह सिद्ध बन सकता है। यदि सिद्ध बनने की किसी में क्षमता है तो उसमें, अन्य किसी गति में कोई चांस नहीं है। मनुष्य जन्म की विशेषता इसी में है कि वह मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। वह मुक्ति पा सकता है। ये सुविधा, ये विशेषता एकमात्र मनुष्य को ही मिली हुई है। हमें विचार करना चाहिए कि इस मायने में हम कितने सौभाग्यशाली हैं! किंतु दुर्मति के आश्रय से वह अपने मनमानी तरीके से निर्णय करा रही है। ऐसी स्थिति में हम अपने जीवन के रहस्य को समझने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं।

इसलिए आज व्यक्ति तनाव में है, क्योंकि वह आपाधापी में लगा हुआ है। जितना उसके पास है, उससे वह संतुष्ट नहीं है। जितना हो जाएगा, उससे भी वह संतुष्ट नहीं होने वाला। आज यदि उसके पास अरबों की संपत्ति है तो भी वह संतुष्ट नहीं है। यदि उसकी अरबों की संपत्ति खरबों में बदल जाए तो क्या उसको संतुष्टि हो जाएगी?

नहीं होगी। न उसको संतुष्टि हुई, न होगी। मेरे खयाल से उसकी तृष्णा और भड़केगी। उसकी भूख और भड़क जाएगी। वह चाहेगा कि अब तो मैं 'टॉप टेन' बन जाऊं। पूरे विश्व में नहीं सही, भारत के बड़े-बड़े, धनाढ्य लोगों में मेरा नाम आए। उसके मन में लालसा जागृत होगी। ये लालसा उसे बार-बार भटकाती रहेगी। उसको तनाव देती रहेगी। उसके भीतर द्वंद्व पैदा करती रहेगी। इसलिए पिछले कुछ दिनों से एक चर्चा चल रही है कि अपन जीवन का कुछ निर्णायक मोड़ लें। निर्णायक मोड़ लेने का यह समय है। ऐसे समय में हम निर्णायक मोड़ ले सकते हैं। निर्णायक मोड़ लेंगे तो निश्चित रूप से हमारा जीवन सुखमय बनेगा।

परसों मैंने एक बात कही थी कि पाँच वर्ष का एक प्लान बने। प्लान बने कि पाँच वर्ष में हम अपने जीवन के विकास को कहाँ तक ले जाना चाहते

हैं! अपने जीवन का विकास रथ कहाँ जाकर विराम लेगा। पाँच साल का विराम देने की बात नहीं है। हम आगे से आगे बढ़ते रहेंगे, किंतु पहले पाँच वर्ष की एक संयोजना करनी चाहिए। कल इस संदर्भ में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की बातें बताई थी।

प्लान बनाते समय देखना होगा कि मेरे पास विकास के लिए साधन क्या हैं? कितने साधन मेरे पास हैं, मेरे पास कौनसा क्षेत्र है? उस क्षेत्र का निर्णय करना है। उसका निश्चय करना है। तीसरा है काल। मेरे पास समय कौनसा है। मैं अपने 24 घंटों में से किस समय फ्री हूँ, फ्री समय कब निकाल सकता हूँ। समय ऐसा हो, जिस समय मुझे साधना, सामायिक, स्वाध्याय और श्रम से पीछे नहीं खिसकना पड़े। ऐसे समय का चुनाव किया जाए और ठीक उस समय पर हमको अपने कार्यों में लग जाना चाहिए। ऐसा करते समय हो सकता है कुछ दिन हमारे सामने समस्याएं खड़ी हों, किंतु बाद में वह समय हमें स्वाध्याय के लिए, साधना के लिए प्रेरित करेगा।

व्यक्ति सामान्यतया जिस समय भोजन करता है, जो उसके खाने का रूटीन समय है, जैसे ही वो समय होता है, उसके भीतर माँग उठती है कि खाना लाओ। उस समय खाना नहीं मिला, वह समय चूक गया, वह समय चला गया तो उसके जाने के बाद उसको वैसी भूख नहीं रहेगी। उसको वैसी क्षुधा नहीं लगेगी। उस समय के बाद यदि उसको कोई कह दे कि आओ खाना खा लो तो उसको क्षुधा नहीं होगी। जो उसका रूटीन बना था, उससे वह चूक गया तो अब क्षुधा के बिना कैसे खा सकेगा! मन के भूख की बात अलग है। वैसे ही तपस्वी यदि अपने आप को आगे बढ़ा ले तो फिर उसको भूख नहीं सतायेगी।

जैसे ठीक समय पर भूख लगती है, वैसे ही साधना या स्वाध्याय का समय निर्धारित होगा तो उस निर्धारित समय में हमारे भीतर चाह जगेगी। हमारे भीतर अभिलाषा जगेगी कि अब मैं साधना की ओर अग्रसर होऊं।

कल मैंने श्रम के विषय में, स्वाध्याय के विषय में बोला था। अब तीसरा विषय हमारे सामने आता है साधना का। मैंने इसे दो भागों में विभक्त करने का बताया था, उसमें एक भाग है क्रिया का और दूसरा भाग है भीतर का। एक बाह्य, दूसरा आभ्यंतर। बाह्य साधना में पौषध, सामायिक,

प्रतिक्रमण, उपवास, बेला, तेला आदि अनुष्ठानों का समावेश किया जाए। आभ्यंतर साधना का अर्थ है कि मैं अपने क्रोध, मान, मोया, लोभ पर निगाह रखूं। मेरा प्रयत्न हो कि आज मेरे भीतर जितना क्रोध है, उसका शमन हो। क्रोध का शमन करना है। उसे छोड़ना है, उसको खुली छूट नहीं देनी है कि जा आज तेरी मान ली। उसे छूट देंगे तो फिर अफगानिस्तान-तालिबान जैसी हालत हो जाएगी। हमारे भीतर तालिबान-अफगानिस्तान जागृत हो जाएगा। फिर उसको कंट्रोल करने में हम अक्षम होंगे। इसलिए इस पर नियंत्रण होना जरूरी है। ऐसी बात नहीं है कि नियंत्रण नहीं हो सकता। नियंत्रण हो सकता है। बस, इसके लिए जागृत रहना बहुत आवश्यक है। इसके लिए सावधान रहना जरूरी है।

नियंत्रण करने से पहले यह विचार करना होगा कि किन-किन प्रसंगों पर मुझे क्रोध आता है! हमें यह भी विचार करना होगा कि मेरे भीतर क्या कमी है कि मैं संयम नहीं रख पाता! किन कारणों से मैं मौन नहीं रख पाता हूँ। ध्यान रहे! गुस्सा अपने आप नहीं आता। उसके लिए कोई-न-कोई कारण बनता है। ऐसे कारणों का चयन करना पड़ेगा। निमित्तों की पहचान करनी होगी। वैसे क्रोध आने के बहुतायात कारण हैं। कारण हो सकता है कि मेरी बात को स्वीकार नहीं किया गया। मेरी बात को माना नहीं गया। मैं अपने आपको समर्थ मानता हूँ। मैं समर्थ हूँ तो मेरी बात को मानें। एक बात और ध्यान दें कि खासकर अपने लोगों पर गुस्सा आता है। जो अपने नजदीक हैं, उन पर गुस्सा आता है। पराए पर गुस्सा नहीं आएगा। जो हमसे समर्थ है, उसके प्रति भी गुस्सा नहीं आएगा। आएगा भी तो निकल नहीं पाएगा। जैसे पानी ढलान में बहता है, वैसे ही क्रोध भी नीचे की ओर बहता है। जो हमसे कमजोर है, उस पर क्रोध आएगा या उस पर क्रोध निकलेगा। समर्थ के प्रति क्रोध आएगा भी तो निकल नहीं पाएगा। उसे अपने भीतर ही दबाना पड़ता है, किंतु यदि कोई हमसे शक्ति में कम है तो उस पर क्रोध बरस जाएगा, बह जाएगा। कोई बात मेरे मन के अनुसार नहीं हो रही, मेरे अनुरूप नहीं हो रही है, जैसा मैं चाहता हूँ, वैसा नहीं हो रहा है तो गुस्सा आ जाएगा।

कभी-कभी लोग कहते हैं कि कोई गलती करता है तो मुझे गुस्सा आता है। कुछ लोग कहते हैं कि जब कोई झूठ बोलता है तो मुझे गुस्सा

आता है। गुस्सा आने के ऐसे कई कारण बताए जाते हैं। हमें यह समीक्षा करनी पड़ेगी कि मुझे किन-किन बातों पर गुस्सा आता है। मैं एक बात आपको और निश्चित रूप से बता दूँ कि गुस्सा आना हमारी कमजोरी है। मेरे सामने कोई दूसरा उपाय नहीं है तो गुस्सा आएगा। हमारे सामने यदि दूसरे विकल्प होंगे तो गुस्सा नहीं आएगा। इसलिए हमें ये शोध करना है, ये खोज करनी है कि मेरे सामने दूसरा कौनसा विकल्प है, जिसको मैं अपना सकूं और उन उपायों के माध्यम से मुझे गुस्सा नहीं करना पड़े। प्रयास करें तो कुछ भी हो सकता है। प्रयास से सब कुछ होता है।

अभी कोरोना काल में कई बार सड़कों को बंद किया गया। रास्ते अवरुद्ध किये गये। ऐसा होने पर हमने दूसरे रास्तों से जाने का उपक्रम किया या नहीं? एक रास्ते में कर्फ्यू लगा है तो दूसरे, तीसरे रास्ते से घूमकर गये। हमारे पास विकल्प होना चाहिए। घर जाने के लिए यदि एक, दो, तीन, चार मार्ग हैं, सड़कें हैं तो हम उस मार्ग को पसंद करेंगे जो सुविधायुक्त है। जिस मार्ग पर जाने से कोई खतरा नहीं है। जिधर जाने से पुलिस नहीं रोकती। हम सुविधाजनक मार्ग से गमन करना चाहते हैं। वैसे ही जब हमारे सामने विकल्प होगा तो क्रोध को मौका नहीं मिलेगा। उसे भड़कने का अवसर नहीं मिलेगा। इसलिए हम इसका विकल्प ढूँढें।

भगवान ने कहा है कि क्रोध को क्षमा से जीता जा सकता है। हम अपने मन को उदार बनाएं। उसे विशाल बनाएं। उदार बनाएंगे, विशाल बनाएंगे तो क्षमा, धर्म का भाव पैदा होगा। जब तक दिल उदार नहीं बनेगा, विशाल नहीं बनेगा तब तक हमारे भीतर क्षमा का रूप प्रकट होना बहुत मुश्किल है। क्रोध हमको संकीर्ण बनाता है, जबकि क्षमा विशाल बनाती है। क्षमा कहती है कि माफ करो और क्रोध कहता है कि बदला लो।

क्रोध की आवाज क्या है? क्रोध का नारा क्या है? और आपका नारा क्या है?

**हमें सत्य अहिंसा प्यारा है, यही एक हमारा नारा है...**

शायद हम सही नहीं बोल रहे हैं! शायद चेंज करना पड़ेगा कि सत्य हमको प्यारा है। सत्य सुंदर है। वह अच्छा लगता है, किंतु हमारी क्षमता नहीं है। हमारी शक्ति नहीं है उसको पाने की। हमारे भीतर उसको साधने की शक्ति

नहीं है। सत्य बहुत बढ़िया लगता है, वह बहुत सुंदर है, किंतु हमारी इतनी औकात नहीं है कि हम सत्य को धारण कर लें।

हमने एक मानसिकता बना ली है कि बिना झूठ के मेरा व्यापार नहीं हो सकता। बिना झूठ के कोई भी सरकारी कार्य नहीं हो सकता। झूठ के बिना मेरा वर्तमान जीवन नहीं चल सकता। ऐसी मानसिकता बना रखी है कि झूठ के बिना मेरा काम नहीं हो सकता।

आज कुछ भी काम करते हैं, कागज पर कुछ-न-कुछ रखते हैं। कागज पर वेट होना जरूरी है। वेट नहीं होगा तो हवा उसको अपने साथ उड़ाकर ले जाएगी। यदि कागज पर कुछ वेट रख दिया तो वो उड़ नहीं पाएगा। हवा उसको उड़ा नहीं सकेगी। कागज वहीं पड़ा रहेगा। इसलिए झूठ का सहारा लेना ही पड़ता है। ऐसा नहीं होना चाहिए। सत्य और ईमान की बात होनी चाहिए। आपको विश्वास होना चाहिए कि आपका काम होगा और होगा। सत्य के माध्यम से आपका काम होगा, इसके लिए कुछ धैर्य रखना होगा, लेकिन व्यक्ति धैर्य नहीं रख पाता। वह चाहता है कि उसका काम बहुत जल्दी हो जाए। लोग चाहते हैं कि उनका काम बाईपास की तरह जल्दी हो जाए। बहुत शीघ्रता से हो जाए। उन्हें बार-बार ऑफिस में आना-जाना नहीं पड़े। बार-बार चक्कर नहीं लगाने पड़े। चक्कर काटने नहीं पड़े। हमारा काम हाथों-हाथ हो जाना चाहिए। इसलिए गलत रास्ता अख्तियार करते हैं। इन कारणों से गलत रास्तों का चयन करना पड़ता है।

यदि यह मानते हैं कि सत्य की जीत होती है तो सत्य की जीत निश्चित होती है। यह मान के चलिए कि सत्य कभी हारता नहीं है। आपको अनुभव करना है तो प्रयोग करके देखिए। बिना प्रयोग किये हम कहते हैं कि झूठ के बिना हमारा व्यापार नहीं चल सकता है। उसके बिना हमारा काम रुक जाता है। फालतू में दु:ख-दर्द क्यों उठाना। सत्य में आपको कठिनाई उठानी पड़ सकती है। इंतजार करना पड़ सकता है, पर यदि सत्य है तो वह जरूर जीतेगा।

हमारी भारतीय संस्कृति का उद्घोष है 'सत्यमेव जयते।' यानी कि सत्य की हमेशा विजय होती है। सत्य की हमेशा जीत होती है। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। एक न एक दिन सत्य की जीत होगी। न्याय

मिलेगा। अंततोगत्वा जीतेगा सत्य ही। जिंदगी में हमेशा सत्य ही बोलें। कभी झूठ नहीं बोलें। झूठ कह कर हम बच्चों की तरह रेती के घर खड़े कर सकते हैं, पर वे ज्यादा समय तक टिकने वाले नहीं हैं। वर्षा के पानी से गीली हुई मिट्टी से छोटे बच्चे घर, झोंपड़ी वगैरह बना लेते हैं, किंतु थोड़ी देर के बाद वे बच्चे ही उसको लात मारकर तोड़ देते हैं। उसे बिखेर देते हैं। जैसे बच्चों द्वारा बनाया गया घर टूट जाता है, वैसे ही झूठ ज्यादा लंबे समय तक चलता नहीं है। वह जल्दी ही खत्म हो जाता है।

हम झूठ बोलकर अपनी पुरानी पुण्यवाणी को नष्ट कर रहे हैं या नया पुण्य जोड़ रहे हैं? झूठ का सहारा लेकर हम अपनी पुण्यवाणी बढ़ा रहे हैं या घटा रहे हैं?

(सभा से लोग कहते हैं कि घटा रहे हैं)

यह सोचने का विषय है कि हमें पुण्यवाणी को घटाना चाहिए या बढ़ाना चाहिए!

(सभा से लोग कहते हैं कि बढ़ाना चाहिए)

क्या करेंगे पुण्यवाणी को बढ़ाकर!

पुण्यवाणी बढ़ेगी तो संसार में रहना पड़ेगा। पुण्यवाणी घटेगी तो संसार में दुःख पाएंगे। पुण्यवाणी रहने से सुख तो मिलेगा, पर मोक्ष नहीं। किंतु जो पुण्यवाणी मिली है उसका उपयोग कहीं हम गलत रास्ते से करके अपनी पुण्यवाणी को खर्च तो नहीं कर रहे हैं? नये पापकर्मों का उपार्जन तो नहीं कर रहे हैं?

भगवती सूत्र में एक चर्चा चली कि कालोदयी अणगार ने भगवान से पूछा कि क्या जीव पापकर्म के विपाक का वेदन करता है?

भगवान ने कहा कि हाँ करता है।

उसने पूछा कि भंते कैसे?

तब भगवान ने कहा कि–

एक चोखी, सुंदर, बढ़िया हांड़ी में अच्छी तरह से भोजन पकाया जा रहा है। 18 प्रकार का भोजन पकाया गया। उस भोजन की हांड़ी में जहर का अंश मिला दिया गया। वह भोजन बहुत स्वादिष्ट था। सारे व्यंजन खाने में बड़े स्वादिष्ट थे।

मैंने रतलाम की एक चर्चा सुनी थी। वहाँ पर किसी परिवार ने अपने घर में खाना बनाने के लिए एक रसोइया रखा था। परिवार बड़ा था। परिवार के सदस्य अपने दूसरे काम करते रहे। अपनी रसोई उसको सौंप दी। उसको रसोई की सारी सामग्री सौंप दी। कुछ समय के बाद उसने देखा कि पूरे घरवाले उसके भोजन की तारीफ कर रहे हैं। कहते थे कि खाना बहुत स्वादिष्ट है। बहुत अच्छा खाना बना रहे हो। कुछ समय बाद उसने सोचा कि अब मेरा होल्ड हो गया है। मेरे द्वारा बनाया गया भोजन सबके अनुरक्ति का कारण बना है, तब उसने अपनी माँगें बढ़ानी शुरू कर दीं। माँग बढ़ाने के कारण घर के मालिक ने उसको हटा दिया। उसने दूसरे रसोइये को रख लिया। नये रसोइये को रसोई की सारी सामग्री दे दी। खाना बनाने के सभी पदार्थ उसको उपलब्ध करवा दिए।

दूसरा रसोइया खाना बनाता है, किंतु पहले जैसा स्वाद नहीं आता है। उसके बनाये खाने और इसके बनाये खाने के स्वाद में फर्क था। जो स्वाद पहले वाले खाने में आता था वह स्वाद अब नहीं आ रहा था। अब वह आनंद नहीं आ रहा था। एक दिन, दो दिन, तीन दिन भोजन का स्वाद लिया, किंतु पहले वाला स्वाद घरवालों को नहीं मिल रहा था तो एक दिन घर के मालिक ने कहा कि रसोइया भैया क्या बात है कि आपके खाने में वह स्वाद नहीं आ रहा है, जो पहले वाले रसोइया के बनाये खाने में आता था। उसके स्वाद में और आपके बनाये खाने के स्वाद में बहुत फर्क है। आपके पास भी वे ही साधन, वे ही सामग्रियां हैं जो उसके पास थी, फिर इतना फर्क क्यों है? मालिक ने कहा कि पहले जो रसोइया था, उसके हाथ में क्या कला थी पता नहीं, उसके द्वारा बनाई हुई रसोई बहुत अच्छी लगती थी। वह भोजन बहुत स्वादिष्ट लगता था। तुम्हारे भोजन में वह स्वाद नहीं आ रहा है। रसोइये ने कहा कि मालिक, मैं भोजन बनाने में और प्रयास करूंगा।

रसोइये को संयोग से एक दिन एक शीशी मिल गई। वह उस शीशी को लेकर सेठ के सामने रखता है और कहता है कि मालिक उस भोजन का टेस्टी होना, स्वादिष्ट होना, सुस्वादु होना इस शीशी के कारण से था। उसने कहा कि मालिक इस शीशी में छिपकली का अर्क है। यदि छिपकली के अर्क की एक बूँद भोजन में डाल दी जाती है तो खाने वाले के मन में यह इच्छा

रहती है कि उसको बार-बार खाऊँ। खाता ही रहूँ। और खाऊँ। और खाऊँ। उसके मन में तलब होती रहती है कि ऐसा खाना और मिले। रसोइये ने कहा कि यदि मैं इसका एक बूँद भोजन में डाल दूँ तो भोजन स्वादिष्ट हो जाएगा। तब आप कहेंगे कि ऐसा खाना और मिले। वह रसोइया भोजन में छिपकली का अर्क मिलाता था, इसलिए खाना स्वादिष्ट लगता था। उस भोजन में जहर रहता था, किंतु खाने में बहुत स्वादिष्ट लग रहा था।

बात भगवान और कालोदयी अणगार की चल रही थी। भगवान ने कहा कि कालोदयी वह खाना स्वादिष्ट तो लग रहा है पर उसका परिणाम कैसा होगा?

(सभा में उपस्थित लोग बोल पड़ते हैं कि दु:खदायी होगा)

उसका परिणाम मरणांतिक होगा। शरीर अकड़ने लगेगा। वह खाने वालों को मरण तक ले जाएगा। उससे बहुत कष्ट होगा। उससे पीड़ा होगी और अंततोगत्वा शरीर से प्राण निकल जाएंगे। उसके शरीर से प्राणों का वियोजन हो जाएगा। भगवान ने उसका यह परिणाम बताया। हम विचार करें कि हमको अभी गलत करना अच्छा लगता है। लगता है कि अभी मेरा काम हो गया, मुझे फायदा हो गया, मेरे पैसे बच गये।

कई लोग अपने लाभ के लिए झूठ का सहारा लेते हैं। इससे उनका काम तो हो जाता होगा, लेकिन समझ लें कि उसने अपने गले में जहर को उतारा है। वह बहुत भयंकर जहर है। खाने का जहर तो हमारी एक जिंदगी को खत्म करने वाला होता है किंतु बेईमानी, झूठ, अन्याय, अत्याचार कितनी जिंदगियों को कष्ट देने वाले होंगे, नष्ट करने वाले होंगे, पीड़ा देने वाले होंगे, इसका हमें कोई अनुमान नहीं है। हम इसका अनुभव नहीं कर पा रहे हैं।

मत भूलना गजसुकुमाल को। उनके सिर पर अंगारे रखे गये। कितने जन्मों के बाद उसका परिणाम मिला?

(लोग कहते हैं- 99 लाख भवों के बाद)

हम कहानी में बोलते हैं कि 99 लाख भव के बाद वो परिणाम आया। पाप कर्म का भयंकर परिणाम एक दिन सामने आया या नहीं?

(लोग कहते हैं- आया)

खंधक ऋषि की खाल वैसे खींची गई, जैसे काकड़िया-काचरा

छीला जाता है। ऐसे उसकी खाल उतारी जा रही थी। क्यों! किस कारण से? वे बड़े खुश हुए थे। उनकी आत्मा ने इतना गुमान किया कि मैंने काचरा कैसा छीला है। उसके भीतर से काचरा को निकाल लिया। भीतर से काचरा निकाल लिया गया। पर छील के ऐसा लगता था कि काचरा यथावत है। उस पर उनकी आत्मा को गुमान हुआ था। उस समय उनकी आत्मा ने जिन कर्मों का बंध किया, उसका ही वह परिणाम आया, क्या परिणाम सामने आया? उसका परिणाम सुखद था या दुःखद?

(लोग कहते हैं- दुःखद)

खंधक ऋषि आत्मा में रम गये, इसलिए उनको कोई पीड़ा नहीं हुई। इदं न मम। उन्होंने शरीर को अपने से अलग कर दिया कि यह शरीर मेरा नहीं है। मैं इस शरीर का नहीं हूँ, इसलिए उनको पीड़ा नहीं हुई। पीड़ा मिलती है कि नहीं?

(लोग कहते हैं- मिलती है)

पीड़ा होती है। कष्ट मिलता है। आज हम कहते हैं कि भगवान इतने सारे कष्ट मुझे ही क्यों दिये? दुःख क्यों दिये? कहते हैं कि भगवान ने पीड़ा दे दी, वह झूठ नहीं है, क्योंकि मेरी आत्मा ही मेरा भगवान है। उसने ही बहुत सारे दुःख-दर्द इकट्ठे किये, पापकर्म का संग्रह किया, फिर उसका परिणाम हमको भोगना ही पड़ेगा।

भगवती सूत्र के माध्यम से कालोदयी अणगार द्वारा भगवान से प्रश्न करने की चर्चा चल रही थी। उसने भगवान से दूसरा प्रश्न किया कि भगवान जीव को कल्याण, फलदायी कर्मों का फल भी मिलता है क्या? तो भगवान ने कहा- हाँ मिलता है। उसने पूछा कि कैसे? तो भगवान ने वैसा ही उदाहरण दिया कि अच्छे-स्वच्छ, गुण सम्पन्न बरतनों में अच्छे पकवान बनवाये और उसमें औषधि का मिश्रण कर दिया। वह पकवान खाने में ठीक नहीं लग रहा है, उस पकवान में स्वाद नहीं आ रहा है, किंतु जब वो औषधि भीतर जाकर पचेगी और उससे जो रस बनेगा, वह खाने वाले के रोग को मिटाने वाला बनेगा। बीमारी को नष्ट करने वाला बनेगा। औषधि के कारण भले ही उसको भोजन स्वादिष्ट नहीं लग रहा हो, कड़वा लग रहा हो, किंतु उसका परिणाम सुखद होता है। चिरायता स्वाद में कटु होता है, लेकिन बीमारी को नष्ट

करता है। वैसे ही पुण्य कर्म का कल्याण कर्म का, फल सुखद होता है।

भगवान ने कहा कि जीवन में जिस समय पुण्य कर्म करने में थोड़ी कठिनाई आती है, उस समय दिल को बड़ा उदार बनाना पड़ता है, दिल में सबको समाविष्ट करना पड़ता है। झूठ से बचना पड़ता है। असत्य से बचना पड़ता है। चोरी से बचना पड़ता है। सदा ईमानदारी और सत्य पर चलने की बात की जाती है। स्वयं कठिनाइयाँ सहकर भी दूसरों को साता पहुँचाने की बात होती है। जो दूसरों को सुख-साता पहुँचाता है, वह अपने आपमें सुख-साता पाता है। ऐसा करना कठिन जरूर होता है, किंतु उसका परिणाम बड़ा सुख देने वाला होता है। उसका फल हमेशा मीठा लगता है। कालोदयी ने कहा कि भगवान आप जो फरमा रहे हैं, वह हकीकत है।

मैं बता रहा था पेपर पर वेट रखने की बात। इस तरह कोई कार्य होने पर आप हर्ष मना लेते हैं कि काम हो गया। आप कहते हो कि बावजी, ये सब आपकी कृपा से हो गया, आपकी कृपा से हो रहा है। यदि झूठ हुआ तो भी मेरी कृपा से? क्या यह यथार्थ है?

जो कार्य सिद्ध हुआ वह मेरी कृपा से नहीं हुआ, अन्य उपायों से हुआ है। अत: कम-से-कम ईमानदारी तो रखो। इतना बोलने की क्षमता तो रखो कि भज कलदारम् से सारा काम हो गया। जिसकी बदौलत काम हुआ उसका नाम नहीं ले रहे हो। किसकी बदौलत हुआ दक साहब!

(दक[1] साहब कहते हैं- भज कलदारम्)

## रूपली पल्ले तो रोई में चले

यदि अंटी में पैसे हों, रूपली (रूपवती) हो तो कहीं भी चल जाएगी। वो अंधेरे में चल जाएगी। जंगल में चल जाएगी। रुपये-पैसे हों तो अंधेरे में भी गाड़ी चल जायेगी। चली या नहीं चली, मैं नहीं कहता हूँ। कहा जाता है कि रूपली पल्ले तो रोई में चले। अत: जिसकी बदौलत काम हुआ, उसको भुला देते हो। कम से कम सच्चाई तो बताएं कि मेरा सारा काम पैसों की बदौलत हुआ है। इतनी सच्चाई रखो। यदि आपने सच्चाई रखी तो बात चलेगी। कभी कोर्ट में केस चला गया तो वहाँ पर आपको यह बोलना होगा कि जज साहब रुपयों के बल पर मेरा काम हुआ। सच्चाई रखनी पड़ेगी। काम

1.हस्तीमल जी दक, बारडोली

पैसों से होता है लेकिन उसको भुला देते हैं। कहते हैं कि धर्म की कृपा से हुआ है। महाराज आपकी कृपा से हुआ है। ऐसे झूठे कामों में धर्म सहयोगी नहीं होता। यदि आप चार सौ बीसी करोगे तो उसका फल भोगना पड़ेगा। इसलिए क्रोध, मान, माया, लोभ, तृष्णा, नफरत, घृणा जैसी चीजों का अन्वेषण करना पड़ेगा।

यह समझ लो कि मेरा जीवन प्रयोगशाला है और मुझे प्रयोग करना है। क्रोध आने पर मेरे भीतर क्या अनुभूति हुई, इसका अनुभव करना है। माइग्रेन का दर्द उठने पर भीतर अनुभव होने लग जाता है। ऐसा लगने लग जाता है कि माइग्रेन का दर्द उठने वाला है। उसी तरह कभी वर्षा होने वाली होती है, आँधी आने वाली होती है तो लक्षण नजर आने लगते हैं। जो सावधान हो जाते हैं, वे आँधी के लक्षण देखकर खिड़कियाँ-दरवाजे बंद कर लेते हैं। जो पहले सावधान हो जाता है, उसके घर में उतना कचरा नहीं घुसता है। जो सावधान नहीं होता, जिसके घर की खिड़कियाँ खुली हैं, उसके घर ज्यादा कचरा भरेगा।

वही बात अपने जीवन पर भी लागू है। यदि हम सावधान हैं तो अपना बचाव कर सकते हैं। यदि क्रोध आए तो उसे साइड से निकाल देंगे कि अभी मुझे फुरसत नहीं है। फुरसत के समय में तुमसे बात करेंगे।

मैं पूर्वांचल की तरफ था, एक गाँव में। उस गाँव का नाम मुझे अभी याद नहीं आ रहा है। वहाँ पर एक बहिन ने कहा कि भगवन् आपके श्रावक जी को समझाओ। ये गुस्सा बहुत करते हैं। उस समय मैंने कुछ नहीं कहा। सोचा कि जब वे कभी मिलेंगे तो देखेंगे। एक बार वे मिले तो मैंने कहा कि बाईजी ने कहा है कि आप गुस्सा करते हैं। वैसे मैंने गुस्सा करते हुए आपको देखा नहीं। श्राविका जी के कहने को क्या समझूं?

उसने कहा कि बात सत्य है कि मुझे बहुत गुस्सा आता है। बच्चों पर, पत्नी पर ही ज्यादा गुस्सा आता है। मैंने उनसे पूछा कि आपको गुस्सा अच्छा लगता है क्या? उसकी फीलिंग अच्छी होती है क्या? उन्होंने कहा कि भगवन् क्या करें, जब गुस्सा आता है तो रुका नहीं जाता है। मैंने कहा कि यदि आपके घर में कुत्ता घुसे तो क्या करोगे? उसने कहा कि ऐसे कैसे घुसने दूंगा, कुत्ता बारी लगा दूंगा। मैंने कहा कि भाई आप कुत्ते के लिए कुत्ता बारी

लगा रहे हो तो अपने भीतर वैसी कुत्ता बारी क्यों नहीं लगा लेते, जिससे अपने भीतर क्रोध का कुत्ता घुस न पाये। उसको अंदर घुसने ही मत दो। जब आपको गुस्सा आए, उस समय मौन रख लें। एक सप्ताह या दो सप्ताह तक प्रयोग करें। गुस्से के लिए समय निर्धारित कर लें। निश्चित कर लें। एक प्रयोग करके देखें।

कोई मिलने के लिए आता है तो आप क्या करते हैं?

(लोग बोलते हैं कि अप्वाइंटमेंट होता है)

इसी तरह जिस समय गुस्सा आता है तो आप उसको अप्वाइंटमेंट दे दो। आप समय निर्धारित कर दो। क्रोध को समय दे दो। उस समय घरवालों से बोल देना कि मेरे पास हाजिर रहना। उस समय उत्तर दूंगा। उस समय जितना गुस्सा निकालना है, उतना गुस्सा उन पर कर लेना। लेकिन यह क्या? आपने 8 से 9 बजे गुस्से को समय दिया, फिर 8 बजे गुस्सा करना भी चाहेंगे तो गुस्सा आ ही नहीं रहा है। चाह कर भी गुस्सा नहीं आएगा। जो क्षण गुस्से का था, वह आपने चुका दिया, तो वापस जल्दी से उसका आना मुश्किल है। आयेगा भी तो उतने वेग से नहीं आएगा। शाम तक गुस्से की भड़कन नहीं रहेगी। किंतु अपन भड़के नहीं तो फिर गुस्से का क्या मजा आएगा।

मजा किस समय आता है, कब आता है?

जैसे नीबू निचोड़कर गन्ने का रस पीते हैं तो उसका मजा आता है, वैसे ही आँखें लाल हों, मुँह से बारूद विस्फोट हो, तब क्रोध का मजा आता है। हम स्वयं क्रोध से बचना चाहें तो बहुत सारे उपाय हैं। नहीं जैसी बात नहीं है। इसलिए पहले यह समीक्षा करनी पड़ेगी कि मुझे क्रोध, अहंकार किस समय आता है। मैं किस समय छल-कपट, माया का सेवन करता हूँ। किस समय ईर्ष्या करता हूँ। मैं किन-किन पापों का उपार्जन करता हूँ। हमको समीक्षा करनी पड़ेगी, फिर अपने बचाव का उपाय सोचना पड़ेगा। ऐसा कर पाएंगे।

आजकल पाँच साल के प्लान की चर्चा चल रही है। पाँच साल का प्लान बनाने की बात चल रही है। उस आधार पर हमारी क्या गति होती है, क्या प्रवृत्ति होती है, क्या परिणति होती है, यह आप समय पर जान पाएँगे।

अभी प्लानिंग बाकी रह गई। अभी प्लान पूरा नहीं हुआ। प्लान को

धीरे-धीरे करें, किंतु पूरा करें। प्लान बनाने में समय भले लगे, बाद में चलना आसान हो जाता है। सोच लें कि मुझे उसी प्लान के अनुसार काम करना है।

**जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर जय...**

युगबाहु युद्ध भूमि के लिए प्रस्थित हुए। कहते हैं कि कभी-कभी बिल्ली के भाग्य से छींका टूट जाता है। किसके भाग्य से छींका टूट जाता है? बिल्ली के भाग्य से। एक तरफ से बिल्ली आई। वह छींके पर रखे दूध, दही, मलाई वगैरह को ताक रही है। बिल्ली सोच रही है कि कैसे छींके से प्राप्त करूँ। उसको प्राप्त करना मुश्किल है। तब तक चूहे के कुतरने से या किसी और वजह से छींका टूट कर नीचे गिर गया। छींके में रखे सारे बरतन नीचे गिर गये। दही, दूध और मलाई के बरतन फूट गये। सारा दूध, दही बह गया। बिल्ली की मौज हो गई। अत: कहा जाता है कि बिल्ली के भाग्य से छींका टूट गया।

युगबाहु युद्ध करने की दिशा में गये और भूपति प्लान करने लगा कि मुझे क्या-क्या और कैसे करना चाहिए। राजा सोचने लगा कि मेरे पास समय ज्यादा नहीं है। यदि मैंने समय यूँ ही गँवा दिया तो बाजी मेरे हाथ से निकल जाएगी। वह सोच ही रहा था कि मैं क्या करूँ, इतने में एक दूती सम्राट के सामने आ गई। उसे देखते ही उन्हें लगा कि दूतियां काम बनाने में माहिर होती हैं। सम्राट की आँखों में चमक आ गई। उन्होंने उस दूती को अपने पास बुलाया। एकांत में उससे बात की। कहा कि देख मेरा यह काम है। यह काम कर देने पर तुम्हें सोने से लाद दिया जाएगा। तू सोने से तौल दी जाएगी। तुम्हारे शरीर पर इतने आभूषण होंगे कि शायद शरीर की चमड़ी ही नहीं दिखे, किंतु बात एकदम गोपनीय रखनी है। किसी को कानों-कान खबर नहीं होनी चाहिए।

उसने कहा कि राजन्! मैंने आपका नमक खाया है। जैसा आप कहेंगे वैसा ही होगा। राजा ने उससे कहा कि मदनरेखा को मेरी तरफ आकर्षित करना है। दूती ने कहा कि अरे स्वामी! ये कौन-सी बड़ी बात है। यह तो हमारे बाएं हाथ का खेल है। बाएं हाथ का मतलब काम आसान है। आराम से काम हो जाएगा। दाहिना हाथ प्राय: सक्रिय होता है। दायें में शक्ति ज्यादा होती है। जब कुछ लिखते हैं तो दाएं हाथ से लिखते हैं। दायां हिस्सा

ज्यादा काम करता है। दायां हाथ लगभग आगे जाता है। हाथ मिलाते हैं तो दायां हाथ आगे जाता है। खाना खाते हैं तो दाएं हाथ से खाते हैं। किसी को आशीर्वाद देते हैं तो दाएं हाथ से देते हैं। दाएं हाथ का महत्त्व ज्यादा होता है, इसलिए दूती ने कहा कि यह बायें हाथ का खेल है। ज्यादा कुछ करने की बात नहीं है। यह सामान्य बात है। अत: उसने कहा कि यह तो बायें हाथ का खेल है। राजा ने कहा कि बस तुम अपना काम चालू कर दो। राजा ने दूती से पूछा कि इस कार्य के लिए तुमको किन-किन चीजों की जरूरत पड़ेगी? राजा ने यह भी पूछा कि तत्काल बताओ कि तुम्हें क्या साधन चाहिए? इस प्लान को पूरा करने के लिए क्या-क्या चाहिए?

दूती ने कहा कि राजन्! बहनों को खाना-पीना अच्छा लगता है, पहनना अच्छा लगता है, आभूषण अच्छे लगते हैं। आप अच्छी तैयारी करा दें। अच्छे वशन अर्थात् अच्छे वस्त्र और बढ़िया आभूषण, खाने-पीने की अच्छी-अच्छी चीजें तैयार करवा दीजिए। मैं भी तैयार होकर आती हूँ। उसके बाद अपना काम चालू करती हूँ। सम्राट उसके कहे अनुसार चीजों को तैयार करवा रहे हैं। राजमहल में भी सारी चीजें हर वक्त मौजूद थोड़ी होती हैं। राजा को भी चीजें संग्रहीत करनी पड़ती हैं कि कौनसा आभूषण ज्यादा आकर्षक है? कौनसा आभूषण उनको पसंद आ जाए, उसकी तैयारी में लगे हुए हैं। उधर दूती अपना दिमाग लगा रही है कि अब काम कैसे करना है। वह आगे कैसे काम करती है, यह समय के साथ ज्ञात हो पाएगा। हम विचार करें कि अपना काम कैसे करना है।

पारसमल जी दक परिवार मैसुरु व हुन्सुर से उपस्थित है। पारसमल जी आज शरीर से हमारे बीच नहीं हैं। शरीर किसी का भी शाश्वत नहीं रहा है और न ही रहेगा। हम सभी उसी रास्ते से जाएंगे। अभी हमारे लिए निर्वाण का रास्ता खुला नहीं है। एक ही रास्ता खुला है, 'राम नाम सत्य है।' कोई बात नहीं। व्यक्ति नहीं रहता है, किंतु उसकी अच्छाइयां सदा बनी रहती हैं। हम उन्हीं अच्छाइयों का अनुसरण करने का लक्ष्य रखेंगे तो जो रिक्तता महसूस होती है वो धीरे-धीरे अपने आप भरती हुई चली जाती है।

धार्मिक क्षेत्र में हम उत्कर्ष कैसे पाएं, कैसे हमको तृप्ति हो, इसके

लिए पाँच वर्षों का प्लान बनाएं। धर्म की आराधना करें। मुझे पूरा विश्वास है कि वैसा करने में सक्षम बनेंगे, तो हमारी जीवनचर्या निश्चित रूप से बदलेगी। कोई कारण नहीं है कि न बदले। जिस दवा का कोई असर न हो, वह दवा किस काम की! धर्म की आराधना करने का प्रयत्न करें। प्रयत्न करेंगे तो निश्चित रूप से जीवन में बदलाव आयेगा और हम धन्य होंगे।

इतना ही कहते हुए विराम।

27 अगस्त, 2021